भारतीय पुरैतिहासिक पुरातत्त्व

लेखक

धर्मपाल अग्रवाल एवं पन्नालाल अग्रवाल

प्रकाशक

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान

(हिन्दी ग्रन्थ अकादमी प्रभाग)

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन

महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ-226001

प्रकाशक

विनोद चन्द्र पाण्डेय

निदेशक

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान

लखनऊ

शिक्षा एवं समाज-कल्याण मंत्रालय,
भारत सरकार की विश्वविद्यालय स्तरीय
ग्रन्थ योजना के अन्तर्गत प्रकाशित

द्वितीय संस्करण

1982

मूल्य 20 रुपये

पुनरीक्षक

डॉ० किरण कुमार थपल्याल

लखनऊ विश्वविद्यालय,

लखनऊ

मुद्रक

सरयू प्रसाद पाण्डेय

नागरी प्रेस

अलोपीबाग, इलाहाबाद

लता

और

शशि

को

समर्पित

प्रस्तावना

शिक्षा आयोग (1964 : 66) की संस्तुतियो के आधार पर भारत सरकार ने 1968 में शिक्षा संबधी अपनी राष्ट्रीय नीति घोषित की और 18 जनवरी, 1968 को ससद के दोनो सदनो द्वारा इस सबध मे एक सकल्प पारित किया गया। उस सकल्प के अनुपालन में भारत सरकार के शिक्षा एवं युवक सेवा मत्रालय ने भारतीय भाषाओ के माध्यम से शिक्षण की व्यवस्था करने के लिए विश्वविद्यालय स्तरीय पाठ्यपुस्तको के निर्माण का एक व्यवस्थित कार्यक्रम निश्चित किया। उस कार्यक्रम के अन्तर्गत भारत सरकार की शत-प्रतिशत सहायता से प्रत्येक राज्य मे एक ग्रन्थ अकादमी की स्थापना की गयी। इस राज्य में भी विश्वविद्यालय स्तर की प्रामाणिक पाठ्य पुस्तकें तैयार करने के लिए हिन्दी ग्रन्थ अकादमी की स्थापना 7 जनवरी 1970 को की गयी।

प्रामाणिक ग्रन्थ निर्माण की योजना के अन्तर्गत यह अकादमी विश्वविद्यालय स्तरीय विदेशी भाषाओं की पाठ्यपुस्तको को हिन्दी मे अनूदित करा रही है और अनेक विषयो में मौलिक पुस्तको की भी रचना करा रही है। प्रकाश्य ग्रन्थो मे भारत सरकार द्वारा स्वीकृत पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया जा रहा है।

उपर्युक्त योजना के अन्तर्गत वे पाण्डुलिपियाँ भी अकादमी द्वारा मुद्रित करायी जा रही हैं जो भारत सरकार की मानक ग्रन्थ योजना के अन्तर्गत इस राज्य मे स्थापित विभिन्न अभिकरणो द्वारा तैयार की गयी थी।

प्रस्तुत पुस्तक इस योजना के अन्तर्गत मुद्रित एव प्रकाशित करायी गयी है। इसके लेखक धर्मपाल अग्रवाल एव पन्नालाल अग्रवाल हैं। इसका विषय सपादन

डॉ० किरण कुमार थपल्याल लखनऊ विश्वविद्यालय ने किया है। इन विद्वानों के इस बहुमूल्य सहयोग के लिए उ०प्र० हिन्दी संस्थान उनके प्रति आभारी है।

मुझे आशा है कि यह पुस्तक विश्वविद्यालय के छात्रों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगी और इस विषय के विद्यार्थियों तथा शिक्षकों द्वारा इसका स्वागत अखिल भारतीय स्तर पर किया जायगा। उच्चस्तरीय अध्ययन के लिए हिन्दी में मानक ग्रन्थों के अभाव की बात कही जाती रही है। आशा है कि इस योजना से इस अभाव की पूर्ति हो सकेगी और उच्चस्तरीय अध्यापन हेतु हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाने के क्रम में हमारा पथ प्रशस्त हो सकेगा।

विनोद चन्द्र पाण्डेय
निदेशक
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ

डॉ० शिव मंगल सिंह 'सुमन'
कार्यकारी उपाध्यक्ष
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ

प्राक्कथन

स्वतंत्रता के बाद प्रागैतिहासिक और पुरैतिहासिक पुरातत्त्व के क्षेत्र में बहुत सी खोजें हुई हैं। अनेक स्थलो का उत्खनन हुआ है। पत्र-पत्रिकाओ ने भी इन खोजो का काफी प्रचार किया है। फलस्वरूप, हिन्दी का साधारण पाठक और बुद्धिजीवी पुरातत्त्व मे विशेष रुचि लेने लगा है। दूसरी ओर, आज अधिकांश हिन्दी-भाषी क्षेत्र के विश्वविद्यालयो मे स्नातकोत्तर शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो चुका है। अधिकाश खोजें अभी हाल ही की हैं। हिन्दी मे इन सब नयी खोजो के आधार पर लिखित प्रामाणिक पुस्तको का अभी अत्यन्त अभाव है, विशेषतया पुरैतिहासिक काल के लिए। प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी मे ऐसी पुस्तको के अभाव की पूर्ति की दिशा में एक प्रयास है।

आज पुरातात्त्विक अनुसंधान अनेक भौतिक और जैविक विज्ञानो की सहायता लेता है। ये खोजें बहुमुखी व बहुआयामीय होती जा रही हैं। इसीलिए हमने इस पुस्तक मे तकनीकी, पारिस्थितिकीय और कालानुक्रमिक तथ्यो के परिवेश मे एक पुरैतिहासिक पुरातात्त्विक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इस अध्ययन का क्षेत्र सपूर्ण भारत-पाक महाद्वीप है और काल-विस्तार लगभग 3000 से 300 ई० पू० तक है। लेखक स्वयं इन क्षेत्रो मे कार्यरत शोधकर्त्ता हैं, अतः उन्हें यह विविध सामग्री और अधुनातन प्रमाण जुटाने मे सुविधा रही। इस पुस्तक मे अधुनातन खोजो और पुस्तक प्रकाशन के बीच की दूरी को मिटाने का प्रयास किया गया है। इस प्रयास मे हम कहाँ तक सफल हुए हैं इसका निर्णय पाठको को करना है।

मुख्यतया हमारा लेखन अभी तक अग्रेजी भाषा मे सीमित रहा है। परन्तु फिर भी हिन्दी भाषी होने के कारण हमे विश्वास है कि इस पुस्तक मे हमने हिन्दी के प्रति अन्याय नही किया है। हिन्दी के इस प्रथम प्रयास मे कमियाँ रहना स्वाभाविक है, हमारा पाठको से अनुरोध है कि वे अपने सुझावो से

इस पुस्तक की भाषा सुधारने में हमे सहयोग दें। विषय तकनीकी है परन्तु हमने साधारण पाठक तक पहुँचने की कोशिश की है।

इस कृति की रचना में इतने विद्वानो और मित्रो ने सहायता की है कि सब का अलग से नाम लेकर धन्यवाद देना बहुत कठिन है। हम इन सब के आभारी हैं। हम विशेषतया ऋणी हैं प्रो० एम० जी० के० मेनन और प्रो० देवेन्द्र लाल के, जिनके विशेष प्रोत्साहन से ही आज भारत मे कार्बन तिथिकरण और अनेक भौतिक तकनीको का पुरातत्त्व मे प्रयोग हो रहा है। सर मार्टिमर व्हीलर, प्रो० साकलिया, प्रो० ब्रजवासी लाल, श्री एम० एन० देशपाण्डे, प्रो० गोवर्धनराय शर्मा, प्रो० एलचिन, डा० कृष्ण कुमार सिन्हा आदि की विशद् पुरातात्विक खोजो के समावेश के बिना इस पुस्तक की सामग्री आधी भी नहीं रह जाती। भारतीय पुरातत्त्व और हम सब इन विद्वानो के आभारी हैं।

नयी पीढ़ी के मित्र-पुराविदो मे डा० स्वराज्य गुप्ता, श्री मुनीश जोशी, श्री राजेन्द्र कुमार पन्त, श्री कैलाश नाथ दीक्षित, श्री ब्रजमोहन पाण्डे, श्री रामचन्द्रन आदि ने महत्त्वपूर्ण योग दिया। हम कु० शीला कुसुमगर, श्रीमती विभा त्रिपाठी, कु० अमिता मिश्र और श्री पूरन सिंह नेगी और श्री प्रेम प्रकाश के विशेष आभारी हैं जिन्होने अनेक प्रकार से इस प्रयास में सहायता दी है। इन सब मित्र-स्वजनो का हम धन्यवाद करते हैं।

हिन्दी ग्रन्थ अकादमी के तत्कालीन निदेशक श्री ब्रह्मदत्त दीक्षित, के व्यक्तिगत प्रयत्नों के बिना इस पुस्तक का न यह रूप सँवरता और न इतना शीघ्र प्रकाशन हो पाता। उनके हम विशेष आभारी हैं।

2 अक्टूबर, 1973 धर्मपाल अग्रवाल

पी० आर० एल० क्वार्टर्स, पन्नालाल अग्रवाल

नवरंगपुरा,

अहमदाबाद-380009

विषय-सूची

अध्याय | पृष्ठ

अध्याय		पृष्ठ

अध्याय		पृष्ठ
4	IV ताम्राश्मीय संस्कृतियो का कालानुक्रम •	100
	क—उत्तर-पश्चिमी सस्कृतियां ...	101
	ख—दक्षिणी और मध्य भारत की संस्कृतियाँ ...	102
	(i) बनास (अहाड) ...	103
	(ii) मालवा और जोर्वे •	103
	(iii) नवदाटोली ...	103
	ग—अन्य तुलनात्मक विशेषक ..	106
	घ—ताम्राश्मीय सस्कृतियो का आपेक्षिक कालानुक्रम	107
	ङ—ताम्राश्मीय सस्कृतियो की कार्बन तिथिया ..	110
	च—पूर्वी ताम्राश्मीय सस्कृतियां ...	112
	V ताप-सदीप्तिका तिथियाँ •	113
5.	लौहकालीन सस्कृतियो का कालानुक्रम ...	117-145
	I उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्र ..	117
	क—स्वात घाटी •	117
	ख—बलूचिस्तान ..	120
	II उत्तरी व पूर्वी भारत •	121
	क—चित्रित धूसर मृद्भांड सस्कृति का कालानुक्रम	122
	ख—एन० बी० पी० मृद्भांड संस्कृति का कालानुक्रम	125
	ग—काले-लाल मृद्भाड संस्कृतियां ...	131
	III भारत के दक्षिणी प्रायद्वीप का लोह युग ...	132
	IV विदर्भ की महाश्मीय सस्कृति ...	135
	V महाश्मीय संस्कृति की कार्बन तिथियाँ ..	135
	VI भारत में लोह-युग ...	138
6	प्राचीन विश्व व भारत मे धातुकर्म ...	146-181
	I ताम्र-उत्पादन का प्रारभ ...	146
	II ताम्र धातुकर्म का प्रसार ..	148

अध्याय | पृष्ठ

आरेख शीर्षक

●

तालिका शीर्षक

अध्याय 1

भूमिका

कुछ वर्ष पहले तक भारतीय पुरातत्व का अर्थ केवल पुरालिपियो का एव कला-इतिहास और सिक्को का अध्ययन ही माना जाता था। परन्तु अब, विशेष रूप से स्वतन्त्रता के बाद, प्रागैतिहासिक और पुरैतिहासिक पुरातत्व पर इतना अधिक महत्व दिया जाने लगा है कि आजकल पुरातत्व प्रागैतिहासिक अध्ययन का पर्याय हो गया है। सिन्धु सभ्यता 1922 मे ज्ञात हो चुकी थी, और यह अनुमान था कि यह लगभग 1500 ई० पू० तक जीवित रही, परतु ऐतिहासिक काल केवल पाँचवी सदी के लगभग प्रारम्भ होता है। सिंधु सभ्यता के अन्त से पाचवी शताब्दी ई० पूर्व के काल की सस्कृतियो के बारे मे कोई प्रामाणिक जानकारी न थी। इसीलिए इसे अन्धयुग कहते थे। 1947 के बाद मुख्य उत्खनन प्रागैतिहासिक एव पुरैतिहासिक स्थलो पर ही हुए। फलत आज यह तथाकथित अन्धयुग काफी प्रकाशमान हो चुका है। बल्कि इससे पूर्वकालीन पाषाण-काल के बारे मे भी आज पहले की अपेक्षा कही अधिक जानकारी है। अब यह स्पष्ट हो गया है कि ऐतिहासिक और साहित्यिक स्रोतो के आधार पर बनाया गया इतिहास भारत मे मानव के भूतकाल का एक बहुत ही छोटा सा अश है। विशेषत. पिछले बीस वर्षों की खोजो से यह प्रकट हो गया कि भारतीय मानव के उस कही लम्बे इतिहास का पुनर्निर्माण करने के लिए, जो पाँचवी शती ईसा पूर्व से लाखो साल पहले तक फैला है, पुरातत्व को बहुत से दूसरे विषयो और तकनीको का सहारा लेना पडेगा। विश्व मे आज पुरातत्व एक बहुमुखी और बहुविषयक शास्त्र के रूप मे विकसित हो रहा है।

पिछले दस साल मे रेडियो कार्बन तिथिकरण प्रयोगशाला के प्रसविदा के घनिष्ठ सपर्क में आने से भौतिकी तथा अन्य विज्ञान भारतीय पुरातत्व के बहुत नजदीक आये हैं। प्रागैतिहासिक काल के पुनर्निर्माण के लिए केवल भौतिक अवशेषों और उपकरणों का सहारा लेना पडता है। ये अवशेष पुरालेखों की

तरह बोलते नही हैं । इनकी चुप्पी तोड़ने के लिए विज्ञान का सहारा लेना पड़ता है । इन बहुमुखी अध्ययनो की तीन मुख्य दिशाएँ हैं । सर्वप्रथम, एक निरपेक्ष कालानुक्रम की आवश्यकता है, जिसके चौखटे मे ही बिखरे हुए अपार पुरातात्विक प्रमाणो को सजोया और समझा जा सकता है । आज अनेक वैज्ञानिक विधियाँ काल निर्धारण के लिए प्राप्त हैं । दूसरी आवश्यकता है विभिन्न सस्कृतियो के तकनीकी ज्ञान के अध्ययन की । बिना तकनीकी अध्ययन के हम उन लुप्त सस्कृतियो के सगठन, आर्थिक ढाचे, धर्म, सामाजिक व्यवस्था, युद्ध शैलियो आदि के विषय मे कुछ भी जानकारी प्राप्त नही कर सकते । इस प्रकार के अध्ययनो के लिए अनेक भौतिक और रासायनिक तकनीको का प्रयोग करना पड़ता है । तीसरी दिशा है पारिस्थितिकी के अध्ययन की । पारिस्थितिकी का बहुत गहरा प्रभाव सस्कृतियो के जन्म, विकास और ह्रास मे होता है । वस्तुत सस्कृति किसी जनसमूह के तकनीकी ज्ञान और शिल्प की और तत्कालीन पारिस्थितिकी के बीच पारस्परिक क्रिया का फल है । पारिस्थितिकी के अध्ययन मे भी अनेक जीव और भौतिक शास्त्र अपना योगदान करते हैं ।

आज भारतवर्ष मे अनेक उच्च वैज्ञानिक सस्थाएँ, उदाहरणार्थ भाभा अणुकेन्द्र, बम्बई, टाटा इस्टीट्यूट आफ फडामेटल रिसर्च, बम्बई, फिजीकल रिसर्च लेबोरेटरी, अहमदाबाद, आदि भारतीय पुरातत्व के क्षेत्र मे भी बहुत महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं । पिछले दस-बारह साल मे टाटा इस्टीट्यूट और फिजीकल रिसर्च लैब ने सैकडो रेडियो कार्बन तिथियाँ निर्धारित करके अनेक प्राचीन संस्कृतियो (आरेख 1) का कालविस्तार निश्चित किया है । भाभा अणुकेन्द्र मे प्राचीन धातुकर्म के अध्ययन के लिए अनेक वैज्ञानिक सुविधाए प्राप्त हैं, जिनका प्रयोग हमने व दूसरे अनुसधानकर्ताओ ने किया है । अनेक पुरावनस्पति-वैज्ञानिको ने भी पराग एव अन्य वानस्पतिक अवशेषों के आधार पर भूतकाल की वनस्पति, जलवायु, कृषि एव भोजन सम्बन्धी अनेक तथ्यो पर प्रकाश डाला है । अगले अध्यायो मे हमने भारतीय पुरैतिहासिक काल का एक बहुमुखी एव बहु-आयामिक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है ।

दूसरे अध्याय मे हमने पूरे भारत-पाक उपमहाद्वीप की पुरैतिहासिक सस्कृतियों की पारिस्थितिकी के परिवेश का अध्ययन किया है । उत्तर-पश्चिम के ईरानी क्षेत्र से लेकर दक्कन के पठारी प्रदेश की पारिस्थितिकी एव उसके भौगोलिक तथ्यों का विवेचन इस अध्याय मे किया गया है । इसमे सस्कृतियो की विभिन्नता और विशिष्टताओ पर पारिस्थितिकी के प्रभाव का अध्ययन किया

गया है। इस अध्याय मे सिंधु-सभ्यता के उद्‌भव और अन्त पर विभिन्न मतो का विशद विवेचन भी किया गया है।
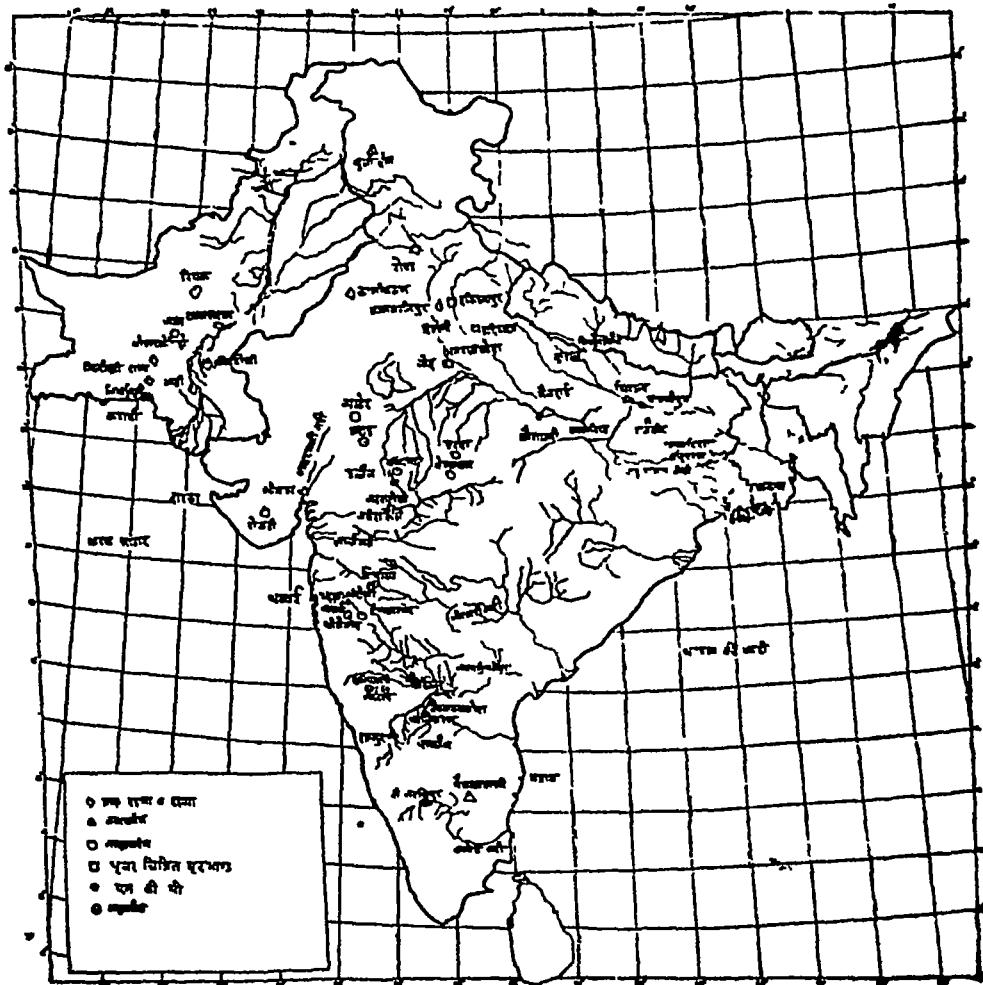
आरेख 1

मुख्य पुरैतिहासिक स्थल जिनका कार्बन तिथिकरण हो चुका है।

तीसरे अध्याय मे ताम्राश्मीय सस्कृतियो की पुरातात्विक सामग्री का अध्ययन किया गया है। इसके अन्तर्गत विभिन्न सस्कृतियो के स्थलो के उत्खननो का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है। अन्त मे इस पुरातात्विक सामग्री के अध्ययन से जो समस्याएँ उभरती हैं उन पर विचार किया गया है।

कालानुक्रम और तिथि निर्धारण पर चौथे अध्याय मे विचार किया गया है। इस अध्याय मे प्राग्हड़प्पा से लेकर ताम्राश्मीय एव ताम्र सचय सस्कृतियो के कालानुक्रम का विवेचन पुरातात्विक एव कार्बन तिथियो के आधार पर किया गया है। हाल मे प्राप्त दोआब के गेरुए भाण्ड की तापसंदीप्तिक तिथियाँ भी इस अध्याय मे दी गयी हैं।

अध्याय पांच मे लौहकालीन सस्कृतियो की पुरातात्विक सामग्री एव कालानुक्रम का अध्ययन साथ-साथ किया गया है। इस अध्याय मे पश्चिम मे स्वात घाटी से लेकर दक्षिण की महाश्मीय सस्कृतियो तक का विवेचन किया गया है।

छठे अध्याय मे धातु-कर्म का विवेचन प्रस्तुत है। इस अध्याय मे धातु-कर्म के उद्भव, विकास और सचरण का, पूरे विश्व की पृष्ठभूमि मे, विशद वर्णन किया गया है। इसमे विभिन्न सस्कृतियो के तकनीकी ज्ञान और उनके द्वारा विभिन्न अयस्क भडारो के सम्भावित प्रयोग पर भी विचार किया गया है। इस अध्ययन का विशेष लाभ यह है कि उनके तकनीकी ज्ञान के वैभिन्य के आधार पर पुरैतिहासिक सस्कृतियो के सपर्क एव अलगाव को समझा जा सकता है। ताम्र बाहुल्य का नगरीकरण पर प्रभाव भी दर्शाया गया है।

सातवें और अन्तिम अध्याय मे पिछले छह अध्यायो के प्रमाणो का साराश दिया गया है और पिछले अध्यायो मे विवेचित सामग्री का सश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। अन्ततोगत्वा इन सब अध्ययनो का लक्ष्य पुरैतिहासिक काल की सस्कृतियो की पुनर्रचना करना है। इसीलिए इन सब पुरातात्विक सामग्री पर आधारित पुनर्रचनाएँ भी प्रस्तुत की गई हैं।

❀

अध्याय 2

पारिस्थितिकी, भूगोल तथा संस्कृतियां

पुरैतिहासिक सस्कृतियो के प्रादुर्भाव, विकास व परस्पर वैभिन्य मे उनके तकनीकी स्तर का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। पर किसी सस्कृति मे उसकी तकनीकी क्षमता के प्रभाव को उसकी पारिस्थितिकी से अलग करके नही समझा जा सकता। कार्नवाल के कथनानुसार प्रारम्भिक मानव समाजों का अध्ययन हम उनकी सास्कृतिक सज्जा तक सीमित नही रख सकते। वे एक ऐसे वातावरण में रहते थे जिसमे प्राकृतिक सम्पदा के बुद्धिमत्तापूर्ण और परिश्रम-युक्त उपयोग के करने पर उनको भोजन, कपडा, आश्रय व दैनिक जीवन की वस्तुएँ उपलब्ध होती थीं। प्राचीन जीवन के कार्य-कलापो को समझने के लिए हमे उनकी पारिस्थितिकी को दृष्टि मे रखना होगा। ह्वाइट और रैना के अनुसार कोई भी महत्वपूर्ण मानवीय कार्यकलाप पारिस्थितिकी की सहायता अथवा विघ्न या निदेश से अछूना नही। हमारे देश मे पूर्व-पश्चिम दिशाओ की ओर बहने वाली नदियो ने उत्तर व दक्षिण वासियो के अबाध आदान-प्रदान को अवरुद्ध कर दिया, जिसके फलस्वरूप पूरे इतिहास मे राष्ट्रीय एकता की भावना नही पनप पायी।

यद्यपि पारिस्थितिकी ने मानव के भाग्य निर्माण मे मुख्य भूमिका निभायी पर तकनीकी विकास ने ही मानव को उसके वातावरण की अनेक बंदिशों से मुक्त किया। रिचर्ड, के० एम० पान्निकर, एम० बी० पीठावाला, ओ० एच० के० स्पेट आदि विद्वानो ने भारतीय संस्कृति के प्रारूप व विकास मे पारिस्थितिकी की गहरी छाप देखी। पर सर्वप्रथम कोसवी ने ही एक निश्चित पारिस्थितिकी के परिवेश मे तकनीकी क्षमता की भूमिका के महत्व पर जोर दिया। सुब्बाराव ने भी पारिस्थितिकी के आधार पर समवेत भारतीय व्यक्तित्व की व्याख्या की। उन्होने भारत-पाकिस्तान उपमहाद्वीप को तीन क्षेत्रो में विभाजित किया है—

1—शाश्वत आकर्षण के केन्द्र, जिनके अतर्गत मालवा, पंजाब, दोआब और दक्षिणी पठार शामिल हैं।

2—अलगाव के क्षेत्र—छोटा नागपुर का जगली पठार, विंध्याचल और अरावली की पहाड़ियाँ इस क्षेत्र के अतर्गत है।

3—आपेक्षित अलगाव के क्षेत्र गुजरात व सिंध माने गये हैं।

1958 तक प्राप्त प्रामाणिक सामग्री के आधार पर यह एक सुसगत विवेचना थी। पर सुब्बाराव की पुस्तक की प्रस्तावना मे ह्वीलर ने शका व्यक्त की कि अब से कुछ वर्ष बाद ही इसे पुन लिखना होगा, अच्छा हो कि डा० सुब्बाराव स्वय ही इसे फिर लिखें। दुर्भाग्यवश डा० सुब्बाराव नही रहे। अन्य पुराविदो ने सस्कृति पर पारिस्थितिकी के प्रभाव पर विशेष ध्यान नहीं दिया। सुब्बाराव ने मत व्यक्त किया था कि आरम्भ मे समुचित वर्षा वाले क्षेत्र ही खेती के लिए साफ किये गये थे। इस प्रकार उन्होने पारिस्थितिकी व मानव प्रयत्नो के बीच सबध स्थापित करने का प्रयत्न किया। पर पारिस्थितिकी स्वय मानव प्रयत्नो द्वारा कैसे बदल दी जाती है, इसका मूल्याकन वे नहीं कर पाये। उदाहरणार्थं दोआब को उन्होने शाश्वत आकर्षण केन्द्र के अतर्गत रखा जो उचित नही, क्योकि आदिकाल से ताम्रयुग तक यह क्षेत्र मानसूनी घने जगल होने के कारण आकर्षण का केन्द्र नही था। कालातर मे लोहे की तकनीक के आविष्कार के फलस्वरूप मानव ने प्रचुर मात्रा में लोहे के उपकरण बनाये और वह इन घने जगलो को साफ कर नयी बस्तियो को बसाने में समर्थ हुआ और इस प्रकार यह क्षेत्र कालातर मे आकर्षण केन्द्र मे बदल गया।

सुब्बाराव ने सदानीरा सिंधु नदी के क्षेत्र को, जिसने महान् हडप्पा सभ्यता को जन्म दिया, आपेक्षिक अलगाव के क्षेत्र मे रखा। सिंधु जैसी पारिस्थितिकी के क्षेत्रो मे ही संसार की महान् सभ्यताओं का प्रादुर्भाव हुआ और वे विकसित हुईं। सदियो से नील, दजला फरात व सिंधु नदियाँ प्रतिवर्ष बाढ़ द्वारा लायी हुई उपजाऊ मिट्टी अपने तटवर्ती प्रदेशो मे बिछाती रही और उन्हे सींचती रहीं। ऐसी घाटियो मे कृषि उत्पादन बढा, जिसके फलस्वरूप अतिरिक्त उत्पादन सभव हुआ। इस उत्पादन मे जनसख्या और साधनों का भी विशेष योगदान है।

इसी प्रकार नर्मदा नदी की सँकरी व जगलो से आच्छादित ऊँची घाटियो को शाश्वत आकर्षण केन्द्र नही कहा जा सकता। ऐसी पारिस्थितिकी मे विस्तृत खेतिहर बस्तियाँ सभव न थी।

पुरैतिहासिक सस्कृतियो की पारिस्थितिकी को समझे बिना सभ्यताओ के जन्म व विकास मे पारिस्थितिकी व तकनीकी ज्ञान के परस्पर योग का मूल्यांकन हम नही कर सकते। परन्तु अब तक प्राप्त प्राचीन वानस्पतिक प्रमाण उस पारिस्थितिकी के अध्ययनार्थं नगण्य ही हैं।

पारिस्थितिकी की दृष्टि से तत्कालीन क्षेत्रो को निम्न भागो मे विभाजित किया जा सकता है —

I —पाकिस्तानी-ईरानी सीमा क्षेत्र ।

II —सिंध-पंजाब व राजस्थानी क्षेत्र ।

III—दोआब ।

IV—मध्यवर्ती पठार ।

I पाकिस्तानी ईरानी सीमा क्षेत्र

भौतिक रचना की दृष्टि से अफगानिस्तान व बलूचिस्तान समान है। पश्चिमी मध्य एशिया से आने वाली हवा उत्तर से दक्षिण मे फैली पर्वतमालाओ के कारण, इन घाटियो मे पहुँच जाती है और दक्षिण पर्वतमालाएँ दक्षिणी पूर्वी हवाओ को रोक देती हैं। बलूचिस्तान मानसूनी हवाओ के प्रभाव क्षेत्रो से बाहर पश्चिम मे पडता है। यहाँ वर्षा शीत ऋतु मे भूमध्य सागरी ठडी हवाओ से होती है, औसत वार्षिक वर्षा 10″ है। अत इस क्षेत्र की जलवायु सिंध व पंजाब की अपेक्षा ईरान जैसी है। अर्ध-शुष्क जलवायु के कारण लोगो का मुख्य उद्यम खेती बारी व पशुपालन रहा है। बस्तियाँ पूर्वी व उत्तरी भागो मे केन्द्रित हैं। क्वेटा व पिशिन क्षेत्र मे पैदावार के लिए पानी कठिनाई से ही पूरा हो पाता है। शुष्क जलवायु के कारण व समुद्री हवाओ से अछूता रहने से इस क्षेत्र का अधिकाश भाग रेगिस्तानी है।

नदियो के तट सकरे व ऊँचे हैं। अत बाढ़ निर्मित मैदान कुछ ही क्षेत्रो मे सीमित हैं और बहुत सकरे हैं। नदियो से सिंचाई पठारी क्षेत्र मे अधिक होती है। कही-कही कुओ का भी प्रयोग होता है पर अधिकाशत शुष्क खेती (खुश्काब) पर निर्भर है। दुर्गम व शुष्क पहाडो ने मानव सपर्क को कठिन व यातायात को असभव बना दिया था, फलस्वरूप यहाँ की पारिस्थितिकी ने विविध सस्कृतियो को जन्म दिया। दूसरी ओर हडप्पा सभ्यता की एकरूपता का कारण सभवत· उस क्षेत्र की पारिस्थितिकी ही थी।

इस क्षेत्र मे आज की अपेक्षा बडी सख्या मे प्राचीन टीले व बाँध मिले हैं। अत स्टाईन ने वर्तमान काल की अपेक्षा पुरैतिहासिक काल मे अधिक आर्द्रता की परिकल्पना की थी। राइक्स, डाइसन व फेयरसर्विस के अनुसार जहाँ भी आज भूमि उपजाऊ है और पानी है वहाँ इन घाटियों मे प्राचीन स्थल मिलते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान क्वेटा की जलवायु व पारिस्थितिकी पुरैतिहासिक काल से अब तक बदली नही है।

ऋतु-प्रवास आज भी अनेक क्षेत्रो मे सामान्य जीवन का एक अंग है, जिस पर स्टाईन ने अधिक ध्यान नही दिया । अल्प वर्षा व शीत ऋतु की कठोर ठंड यहाँ के जन जीवन को मौसमी स्थानान्तर के लिए विवश कर देती थी । शुष्क खेती पर आधारित अनिश्चित जीवन यापन, मानव को यायावर जीवन की शरण में डाल देता था । इस प्रकार प्राकृतिक शुष्कता व कठोरता के कारण अनेक वस्तियो व टीलो का जन्म हुआ, न कि आबादी की अधिकता के कारण।

स्टाईन के मतानुसार प्रचुर मात्रा मे पानी रोकने के लिए विशाल शिला-खण्डो से निर्मित बाधो को बनाने के लिए अपार जन-शक्ति का प्रयोग किया गया होगा । परतु राइक्स ने हिसाब लगाया कि एक शिलाखण्ड 60 × 100 × 150 सेन्टीमीटर के आकार का, दो टन भार का होगा, जिसे एक साथ एक बार उठाने के लिए लगभग साठ व्यक्ति लगेंगे । कैसे केवल एक घन मीटर पत्थर को उठाने के लिए इतने हाथ लग सकते थे ? अत· स्पष्ट है कि उत्तोलक का प्रयोग किया गया होगा । इतने भारी पत्थरों का उपयोग उनकी कार्यपटुता व निपुणता का द्योतक है न कि अपार जनसख्या का । राइक्स के मतानुसार ये निर्माण कार्य बाँध नही थे क्योकि बाँध की किसी भी कसौटी पर ये ठीक नही उतरते । ये खेतिहर भूमि को बाँधने के लिए पार्श्वतल थे । "इस प्रकार के पार्श्वतल सभी शुष्क क्षेत्रो की विशेषताए हैं । इस विशेष प्रकार के पार्श्वतलों की उत्पत्ति आकस्मिक बाढो अथवा पहाडो की नगी पीठो से स्थानीय बाढ़ो के कारण होती थी ।"

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि इस क्षेत्र की जलवायु भूतकाल मे अधिक शुष्क नही थी । वस्तुत एक विशिष्ट प्रकार की पारिस्थितिकी ने जहाँ एक ओर विविध सस्कृतियो को जन्म दिया वहाँ दूसरी ओर विशाल बस्तियो के प्रादुर्भाव मे सहायता नही की । यह उल्लेखनीय है कि मुन्डीगाक काल III मे मृद्भाड रचना मे बहुरगी व द्विरगी परम्परा एकसाथ मिलती है । कालातर मे यह परंपरा विभाजित हो गयी । उच्च प्रदेश के निवासी नाल लोगो ने बहुरगी मृद्भाड परपरा को अपनाया लेकिन पहाडो की उपत्यकाओ व सिंध के मैदान मे उतरने वाले आम्री लोगो ने द्विरगी मृद्भाड परपरा प्रारभ की और अन्ततोगत्वा सिंध के नगरीकरण और सभ्यता की उत्पत्ति मे अपना अशदान किया ।

II. सिंध, पजाब व राजस्थान क्षेत्र

पारिस्थितिकी जहाँ विकास का मार्ग खोल सकती है वहाँ उसे अवरुद्ध भी

विना उसके प्रादुर्भाव व विकास को समझना कठिन है। इस प्रकार हडप्पा सस्कृति के प्रादुर्भाव, व्यापक विस्तार व विकास को भी उसके पारिस्थितिकीय परिवेश के अन्तर्गत ही समझना होगा।

हडप्पाकालीन पारिस्थितिकी के सबध मे विभिन्न मत है जिनकी हम नीचे विवेचना करेंगे—

क—निरन्तर बढ़ती हुई शुष्कता का सिद्धान्त और सिंध सभ्यता का अन्त।

काश्कोर्ई, झालावान, सारावान आदि स्थानो मे प्रचुर सख्या मे पाये गये बाँधो के आधार पर स्टाईन इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि पुरैतिहासिक काल मे जलवायु उस समय के मानव के अधिक अनुकूल थी और भूमि की उर्वरता अधिक जनसख्या का परिपालन कर सकती थी। उन्हे लगा कि इस प्रदेश से प्राप्त अनेक बाँध, टीले व अन्य सामग्री तत्कालीन सास्कृतिक स्थिरता की द्योतक हैं और निरन्तर बढ़ती हुई शुष्कता की भी।

पिगट और व्हीलर के मतानुसार शुष्कता सिंधु की घाटी मे भी निरतर बढती गयी। पिगट ने कहा कि पशुजीवन, लाखो ईंटो को पकाने के लिए लकडी व उन्नत और व्यापक कृषि वर्तमान काल से भिन्न जलवायु दर्शाती है। जबकि मोहनजोदडो मे आजकल वार्षिक सीमाकन ग्रीष्म काल मे 120°F व शीत ऋतु में पाले के बिन्दु के मध्य हैं और वार्षिक वर्षा औसतन 6″ है।

पक्की ईंटो का प्रयोग अधिक वर्षा के कारण अधिक टिकाऊ सामग्री की आवश्यकतावश ही हो सकता है। इसी प्रकार शहर की विस्तृत जल-निकास व्यवस्था, व्यापक वर्षा के पानी के प्रसग मे ही समझी जा सकती है। पिगट के मतानुसार सिंध की मोहरो मे अकित गेंडा, हाथी, दरियाई घोडा आदि जानवर, जो अब विलुप्त हो गये हैं, भूतकाल मे अधिक आर्द्रता के द्योतक हैं। व्हीलर ने भी कहा है कि विस्तृत जगल व बीच-बीच मे फैले दल-दल हाथी, शेर, गैंडो व मगरमच्छ से भरे पडे थे, जिनका अकन विशिष्ट रूप से सिंध की मोहरों मे मिलता है।

प्राप्त प्रमाणो के आधार पर हम नीचे उपयुक्त मतो की विवेचना करेंगे।

(1) जलवायु सम्बन्धी प्रमाण

निरन्तर बढ़ती शुष्कता के सिद्धात की सर्वप्रथम फेयरसर्विस ने आलोचना करते हुए स्पष्ट किया था कि सिंधुतटीय जगल बबूल, झाऊ, कडी, शीशम और बेहन के वृक्षो के थे। इनमें से झाऊ, कडी, बबूल व अन्य दूसरे पेड आज भी ईंधन मे प्रयोग किये जाते हैं। पीठावाला के कथनानुसार सिंधुतटीय जगल

बाढ़ के पानी से सिंचित और विकसित हुए, न कि वर्षा के कारण । उन्होंने यह भी बताया कि मोहनजोदडो के नये संग्रहालय व डाक-बँगलो की ईंटें स्थानीय मिट्टी की बनी हैं जिन्हें कडी की लकडी की आँच में खूब आसानी से पकाया गया है । इसी प्रकार भूतकाल में भी किया गया होगा । कडी की लकडी वहाँ बहुतायत से होती है जो कि अन्य ईंधनो से अधिक ताप देती है । राइक्स और डाइसन के मतानुसार हडप्पा काल मे भी आज की भाँति ईंटो को पकाने के लिए स्थानीय लकडी का प्रयोग किया जाता था । 1908 ई० तक लकडी यहाँ से निर्यात तक होती रही । मोहनजोदडो के शहर में प्रयुक्त ईंटो को पकाने के लिए लकडी की आवश्यकता के विषय मे उन्होने कहा है कि प्रत्येक बार शहर के पुन. निर्माणार्थ ईंधन 400 एकड के तटीय जगल से पर्याप्त होता रहा होगा । 140 वर्ष के औसतन अतर से पुनःनिर्माण होने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि 400 एकड का क्षेत्र आवश्यकतानुसार प्रत्येक बार उपयोग होता रहा होगा ।

हडप्पा में मिले वानस्पतिक अवशेषों का विश्लेषण कर घोष और चौधरी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि लकडी के अवशेष इस सिद्धान्त की पुष्टि नहीं करते कि आर्द्र-उष्ण कटिबधी जगल हडप्पा के आसपास फैले थे । यहाँ तक कि देवदारु व चीड़ की इमारती लकडी भी उत्तरी पर्वतो से प्राप्त की गयी थी । अन्य प्रमाणो से भी यह स्पष्ट होता है कि सभी घास वाली और झाडियो वाले जगल व कहीं-कही दलदली क्षेत्र हडप्पा में या उसके निकट थे । इस प्रदेश में उगायी जाने वाली कपास इस बात का प्रमाण है कि पुरैतिहासिक जलवायु भी वर्तमान जैसी ही थी ।

पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि व्हीलर व पिगट ने पुरैतिहासिक काल के हडप्पा सस्कृति मे पाये जाने वाले पशुओ के आधार पर निरन्तर बढ़ती हुई शुष्कता के सिद्धान्त की पुष्टि की थी । इसके विपरीत फेयरसर्विस का कथन है कि बिना किसी अपवाद के कहा जा सकता है कि हडप्पा सस्कृति से सबधित जीव-जगत् चरागाह व खुले जगलो पर निर्भर था । ऐसे क्षेत्र-कृषि व पालतू जानवर दोनो के लिए बहुत उपयुक्त थे । इनकी सफाई जगली जानवरो के विनाश का कारण हो सकी ।

सिंधु नदी के ऊपरी क्षेत्र में बांध पाये जाते हैं । नदी किनारे की ऊँची-ऊँची घास व घनी झाडियाँ सँधवो के लिए शिकार, छाया व पानी तीनों की आवश्यकता पूरी करती थी । 300 वर्ष पूर्व तक गैंडा इस क्षेत्र में मिलता था जो घनी घास व दलदल मे रहना पसद करता है । ऐसे ही नेवला और भैंसा

भी घनी घासो मे रहने वाले जीव हैं। भैंसा घने वृक्षो के जगल मे बहुत कम प्रवेश करता है। मोहनजोदडो से पाया गया एक घोंघा (Zootecus insularis) शुष्क प्रदेश का जीव है। हाथी मध्य प्रदेश के पश्चिम मे कभी नही पाया गया। अत प्रतीत होता है कि यहाँ पर बाहर से लाया गया था।

उपर्युक्त प्रमाणो से स्पष्ट होता है कि जगली जानवरो के सर्वनाश का कारण मनुष्य था, न कि जलवायु।

पिगट के मतानुसार हडप्पा की विकसित जल-निकास व्यवस्था वर्षा के अतिरिक्त पानी के निकास के लिए थी। राइक्स और डाईसन ने हडप्पा की जल निकास व्यवस्था की जल विकास-शक्ति का मोटा अनुमान लगाते हुए बताया कि ये वर्तमान काल के औसत तूफानी वर्षा के पानी को भी बहाने के लिए पर्याप्त नही हैं।

राइक्स और डाईसन के निष्कर्ष महत्वपूर्ण लगते हैं। उनके तर्क अकाट्य नहीं हैं। प्रथम, वे प्रतिवर्ष बडी सख्या मे भारी वर्षा का होना मानते हैं जब कि इस मत की पुष्टि का कोई प्रमाण नही है। दूसरे, बहुत अच्छी जल-निकास व्यवस्था भी भारी तूफानी वर्षा मे असफल हो जाती है। साधारणतया जल-निकास व्यवस्था मौसमी भारी वर्षा के पानी के निकास को ध्यान मे रखकर नही बनायी जाती।

पक्की ईंटों के उपयोग की बात भी उपर्युक्त सिद्धान्त को सिद्ध करने के लिए की गयी है जो तर्कसगत नही है। प्रथमत धूप मे सुखाई गयी ईंट भी हडप्पा शहर में प्रयोग की गयी थी। कभी-कभी ईंटें पक्की ईंटो क साथ क्रम से एक सतह के बाद दूसरी सतह पर प्रयोग की गयी हैं। द्वितीय, कई भवनो मे धूप से सुखायी ईंटें ही केवल प्रयोग की गयी है। तृतीय, पक्की ईंटो की इमारतो पर भी मिट्टी का पलस्तर किया गया है। अन्नागार जैसी महत्वपूर्ण इमारत मे पक्की ईंटो का प्रयोग, बाढ के सुरक्षित करने के लिए ही किया गया होगा। सिंधु की वर्तमान वर्षा से पाँच गुनी अधिक (अर्थात् 20″ वार्षिक) वर्षा के क्षेत्र मे भी कच्ची ईंटो का प्रयोग आज किया जाता है। अत उपर्युक्त प्रमाण पुरैतिहासिक काल मे अधिक आर्द्रता सिद्ध नही करते।

इस प्रकार स्थापत्य, पशु व वनस्पति पर आधारित तथा अन्य प्रमाण यह स्पष्ट करते हैं कि पुरैतिहासिक से वर्तमान काल तक सिंध व पजाब की जलवायु मे कोई विशेष परिवर्तन नही आया। व्हीलर के मतानुसार बडी सख्या में जगल काटने से हुए भूमि स्खलन, मुख्य रूप से हडप्पा के अत के

लिए उत्तरदायी थे। यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि ये मानसूनी वन न होकर केवल तटीय जगल थे, जो कि बिना व्यापक वन विनाश के, उनकी ईंटो के भट्टो की आवश्यकता पूरी करने के लिए पर्याप्त थे।

अत हड़प्पा के अन्त के लिए जलवायु दोषी नही ठहरायी जा सकती। वस्तुत: पारिस्थितिकी ने ही हड़प्पा के नगरीकरण मे सहायता की थी तो क्या प्रकृति ने ही किसी अन्य ढग से इस सभ्यता के नाश का षडयंत्र भी रचा था?

यहाँ पर पराग-प्रमाणों के आधार पर की गयी सिंह की हाल की खोजों का उल्लेख करना आवश्यक है। उन्होने राजस्थान की कई झीलो की तलछट से पराग का अध्ययन (आरेख) करके पता किया कि लगभग 3000-1800 ई० पू० तक राजस्थान अधिक आर्द्र और हरा-भरा था। 1800 ई० पू० के बाद शुष्क जलवायु आरम हो गयी। कालीबगन की हड़प्पाकालीन बस्ती भी लगभग 1800 ई० पू० में उजडने लगती है। इस प्रकार एक बार फिर जलवायु के परिवर्तन के पक्ष मे नयी सामग्री प्राप्त हुई है। आशा है कि इस क्षेत्र मे भविष्य में किये जाने वाले कार्यों से यह स्पष्ट हो जायगा कि सिंध और पजाब मे जलवायु मे परिवर्तन, यदि हुए तो, कैसे हुए।

(ii) क्या बाढ़ हड़प्पा सस्कृति के अन्त का कारण थी?

जब एम० आर० साहनी ने सिंधु की बाढ़ से मोहनजोदडो के अत की बात कही तो किसी भी पुरातत्ववेत्ता ने उनकी बात गभीरता से नहीं सुनी लेकिन जब राइक्स ने इसी सिद्धान्त को जोर देकर पुनर्जीवित किया तो पुराविदो में सनसनी फैल गयी। लगता था कि यह सिद्धान्त सर्वमान्य हो गया, परतु धीरे-धीरे आपत्तियो व शंकाओ ने गभीर रूप धारण करके इसे फिर सदिग्ध बना दिया है।

राइक्स ने प्रारम्भ मे ही हड़प्पा सस्कृति के सहस्र वर्ष के काल-विस्तार पर शका व्यक्त की थी। मोहनजोदडो मे पाये गये बाढ़ के प्रमाणो के आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सम्भवत हड़प्पा का अत किसी आकस्मिक प्राकृतिक प्रकोप, जैसे सिंधु की बाढ़ का पानी फैलने, से हुआ।

डेल्स के मतानुसार सोत्काकोह और सुत्कगनडोर मूल रूप से बदरगाह थे लेकिन अब ये समुद्रतट से सैकडो मील दूर हैं। मकरान तटीय विवर्तनिक उठान ही सभवत इसका कारण हो सकती है। सिंधु के दक्षिणी क्षेत्र मे आम्री से चाहुदडो तक नदी के मुहाने तक कोई भी हड़प्पाकालीन बस्तिया विस्तृत खोज के उपरान्त भी नहीं मिलीं। इन्हीं कारणो से राइक्स इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि हड़प्पा काल मे ये क्षेत्र पानी के अदर थे। पर हम देखेंगे कि कम से
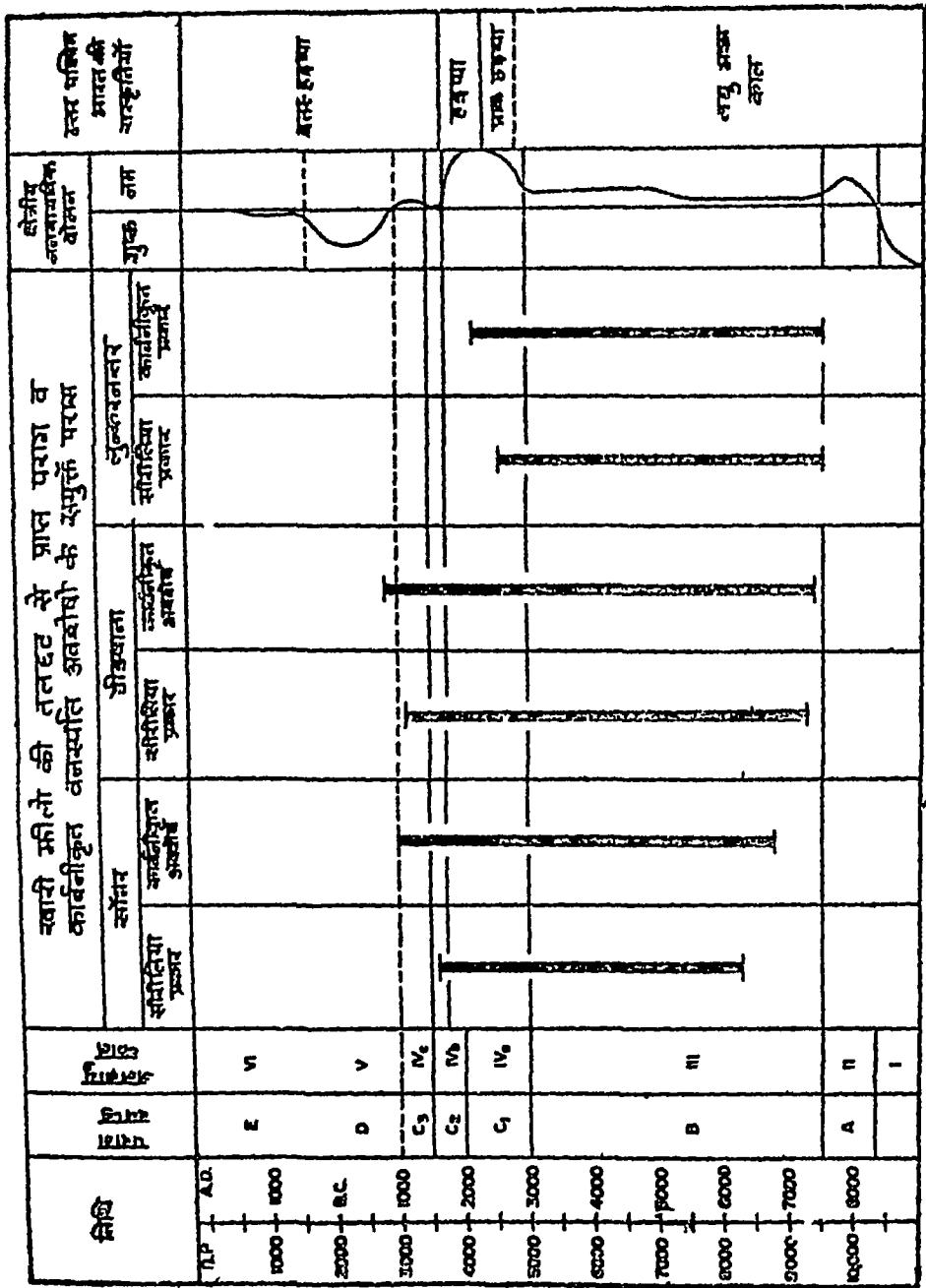
आरेख 2—राजस्थान की झीलों के तलछट से प्राप्त वानस्पतिक अवशेषों के आधार पर निर्मित तात्कालीन जलवायु की पुनर्रचना

कम भारतीय भाग मे जो स्थल राइक्स ने समुद्र के अदर दर्शाये थे, वे ऊपर थे। जगतपति जोशी ने उत्तरी कच्छ मे तत्कालीन हड़प्पा संस्कृति के बहुत से स्थल खोज निकाले हैं।

मकरान के समुद्र-तटीय प्रदेश मे हवाई फोटोग्राफी द्वारा बहुत से ऊँचे उठे पुलिन देखे गये हैं, यद्यपि इनका काल निर्धारण नही हो पाया है। असरार उल्लाह ने अभी हाल मे कुछ पुलिनो का तालमेल कुछ घाटियो के पार्श्वतलो से बैठाया है क्योकि अभी तक किसी भी पार्श्वतल ने क्षरण-चक्र पूरा नही किया। स्पष्ट है कि वे बहुत प्राचीन नही हैं। राइक्स के मतानुसार निंदोवारी का अत विवर्तनिक भू-उठान के परिणामस्वरूप उसके जल पूर्ति के साधनो के क्षतिग्रस्त हो जाने से हुआ होगा। प्रारभ मे राइक्स ने हड़प्पा सस्कृति का अत विवर्तनीय उत्थानो द्वारा माना था लेकिन बाद मे उन्होने एक नया सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि बाढ़ ने हड़प्पा सस्कृति का विनाश किया। पर उनके अनुसार अतत परोक्ष रूप से विवर्तनीय उत्थान ही इस विनाश का कारण रहा है।

1964-65 मे डेल्स और राइक्स ने मोहनजोदडो की प्राचीन बाढ़ो का अध्ययन किया और पाया कि जल निक्षेपित सामग्री व कच्ची ईंटो के भराव बाढ के फैलाव के स्तर से 29 फीट की ऊँचाई तक विभिन्न स्तरो पर पाये गये हैं। उन्होने तीन विभिन्न क्षेत्रो (H R. क्षेत्र और महल के क्षेत्र) मे बर्मे से अन्वेषणात्मक छेद किये। उनके अनुसार बाढ के फैलाव के स्तर से 8 फुट की गहराई तक गाद मिट्टी और बस्ती के मलवे के साथ क्रमहीन रूप से मिलती है। H. R और महल के क्षेत्र मे यही सामग्री बाढ के मैदान से 50 फुट नीचे गहराई तक मिली। उन्होने मचार झील, झूकड और आम्री के क्षेत्रो का भी अध्ययन किया था।

उन्होने बाढ से निक्षेपित सामग्री का विश्लेषण किया लेकिन पिगट के स्तरीकरण में दर्शाये गये बाढ़ के स्तर कही नजर नही आये। उनके अध्ययन और कुछ नवीन खोजो से प्राप्त तथ्यो ने सिद्ध कर दिया कि वहाँ केवल तीन मुख्य स्तर+155 5 और+158 5,+168 5 और + 170, और+175 2 और+176 7 फुट के बीच थे। जहाँ पर 1 5 फुट या अधिक अंतर पर बाढ़ स्तर का कोई चिह्न नहीं है। राइक्स के मतानुसार उपर्युक्त प्रमाण उनके मौलिक अनुमानो के विपरीत नही जाते क्योकि यह अवस्था सिंधु के विवर्तनीय उत्थानो के कारण अवरुद्ध हो जाने से पानी झील की तरह फैल गया होगा। इसलिए ऐसे ही निक्षेपण की ही अपेक्षा थी।

राइक्स के मतानुसार भूमि के उत्थान से निर्मित बाँध कई मील लम्बा होगा जिसमे से नदी का पानी छनकर आता होगा। पानी के लगातार रिसते रहने से पानी का स्तर गाद स्तर से अधिक ऊँचा नही होता होगा। इस प्रकार आप्लावन तभी होता होगा जब गाद स्तर बाँध की ऊँचाई तक पहुँच जाता होगा। इतनी ऊँचाई तक पहुँचने के लिए उनके अनुमान से 100 साल या अधिक लग जाते होगे। स्पष्ट है कि इस प्रक्रिया के पूर्ण होने तक मोहनजोदडो व अन्य स्थल गहरे पानी मे डूबे रहे होगे।

बाढ या अन्य कारणो से एक बार आप्लावन शुरू हो गया तो सिंधु के जल प्रवाह का पुनर्युवन शुरू हो जाता होगा। केवल 100 वर्ष काल की गादीकरण प्रक्रिया हडप्पा संस्कृति के काल-विस्तार के लिए छोटी है। अत. राइक्स ने एक से अधिक उत्थानो की सभावनाओ को माना।

मोहनजोदडो के उत्खनन के प्रमाणो के आधार पर डेल्स इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ऐसे पाँच या इससे अधिक प्रक्रिया-क्रम हुए होगे। उनके मतानुसार कच्ची ईंटो के विशाल चबूतरो व दीवारों पर पक्की ईंटो के आवरण बाढ की रोक के लिए बनाये गये होगे।

अब विवर्तनीय उत्थान की विवेचना करें। जिस प्रकार के कीचड के प्रवाहो ने सिंधु को अवरुद्ध किया, उसी प्रकार के प्रवाहो से हाला और हारो पहाडो जैसी चोटियाँ जो रेखिक कीचड प्रवाहो से बनी हैं, अतिनूतन-मध्यनूतन चट्टानो के नति लबी सर्पण भ्रशो (Strike slip fault) से सबधित हैं। स्नीड ने बलूचिस्तान मे इन प्रवाहो के भूवैज्ञानिक कारण खोज निकाले हैं। राइक्स ने सेहवान क्षेत्र मे भी अतिनूतन और मध्यनूतन चट्टानो की इसी प्रकार की प्रक्रियाओ के प्रमाण पाये।

राइक्स, स्नीड की स्थापनाओं के आधार पर, इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इसी प्रकार के भूवैज्ञानिक कारण सिंधु-क्षेत्र मे भी वर्तमान थे और इन कीचड प्रवाहो ने ही सिंधु को अवरुद्ध किया।

आम्री मे भूमि उत्थान के कोई आसार नही हैं, यह सभवत वर्तमान स्तर +112 0 फुट पर स्थित है। वहाँ गादीकरण का भी कोई चिह्न नही पाया जाता, मिले घोंघो मे 90% समुद्री हैं। अत राइक्स इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि पूर्व हडप्पा काल मे आम्री ज्वारनद मुख (estuary) रहा होगा। हडप्पा के प्रारभिक काल मे इन नदी घोंघो की सख्या बढ़ती गयी और इस काल के अत तक उनकी और समुद्री जातियों के घोंघो की सख्या बराबर हो गयी।

राइक्स ने अपने सिद्धान्त का समापन इन शब्दो मे किया, "बाढ के प्रमाणो की यह व्याख्या भूतत्वीय व जलवैज्ञानिक सिद्धान्तो के आधार पर की गयी है और पुरातात्त्विक तथ्यो से मेल खाती है। सेहवान के पास सिंधु उपत्यका के एक या अनेक उत्थानो ने एक ऐसा पारगम्य अवरोध खडा कर दिया जिसमे से अधिकांश पानी तो रिस सकता था, परतु पिड रुक जाते थे। इस प्रकार मोहनजोदडो व सिंध के दूसरे स्थल धीरे-धीरे इस कीचड़ में डूबते चले गये।"

राइक्स और डाइसन ने हडप्पा सस्कृति के अत के सबध मे एक मौलिक सिद्धान्त प्रस्तुत किया जो कि इस समय पुराविदो मे गभीर विवाद का विषय बन गया है। अत इस सिद्धान्त का उपर्युक्त विश्लेषण अनिवार्य था और इसलिए भी कि इतनी विशाल झील यदि बनी होती तो उसने इस क्षेत्र की पारिस्थितिकी पर भी गहरा प्रभाव डाला होता।

कजाल के प्रश्न पर कि यह सर्वव्यापी गाद मोहनजोदड़ो के तथाकथित विभिन्न स्तरो मे समान रूप से क्यो नही एकत्र हुई, राइक्स ने उत्तर दिया कि इस गाद के उठने की दर लगभग 2 9 इच प्रतिवर्ष औसत की रही होगी। इन परिस्थितियो मे वहाँ ठहरने वाले दृढप्रतिज्ञ लोगो को कई वर्षों मे अपने मकानो के स्तरो को ऊँचा उठाने की आवश्यकता पडी होगी। जो निराश हो गये वे अपनी सपत्ति छोडकर अन्यत्र चले गये। अत मोहनजोदडो मे वही भाग धीरे धीरे कीचड में डूबते रहे जिनके स्वामियो ने कच्ची ईंटों के चबूतरे नहीं बनाये।

लैम्ब्रिक ने राइक्स के सिद्धान्त पर गभीर शकाएँ उठायी हैं। उन्होने कहा कि गादीकरण का मुख्य क्षेत्र उस स्थल से कही ऊपर रहा होगा, जहाँ प्रवेश करती हुई सिंधु, पहले से ही पानी से भरी झील से मिलने पर धीमी पडती होगी। विचारणीय है कि सघन निक्षेप का क्षेत्र इस प्रकार निरतर घाटी के ऊपर की ओर बढता गया होगा। तब गाद का स्तर इतने ऊँचे बाँध के शिखर स्तर तक कैसे पहुँच सका होगा जब कि इसके पूर्व ही नदी के ऊपरी भाग मे मीलो तक गाद-निक्षेप मुख्यत पूरा हो चुका होगा।

ऐसा पारगम्य मिट्टी का बाध एक तग अग्र से 50,0000 घन फुट प्रति सेकेंड की दर से प्रवाहित होने वाले पानी के सामने टिक नहीं सकता था। इस सदर्भ मे यह उल्लेखनीय है कि नारा मे 1819 के भूकम्प से बना अल्लाह बद नामक बांध 1826 की जरा सी बाढ़ आ जाने से बह गया।

इन तर्कों से स्पष्ट होता है कि राइक्स का बांध 100 फुट के स्तर तक सरोवरी गाद-निक्षेप की प्रक्रिया से भर नही सकता था। इस प्रकार मोहनजोदडो

मे ऊँचाई पर पायी गयी गाद इस रीति से प्रक्षेपित नही हुई होगी। यदि इतनी ऊँचाई पर गादीकरण मान भी लिया जाय तो ऐसी पारगम्यता मे बाँध का नामोनिशान भी कैसे समाप्त हो गया होगा ? लैंम्रिक बाँध के बार बार के कटाव को वास्तविक नही मानते। सभवत कोलोइडल मिट्टी ने बाँध को बन्द कर इसके कटाव को रोक दिया होगा।

लैंम्रिक इस तर्क से सहमत नही हैं कि सिंधु ऐसे खडे ढाल में (1 मे 3500) वह सकती थी। यदि उस जलोढक का सघटन वर्तमान काल के समान था तो सिंधु को 1 मे 10500 जैसे विकट ढाल मे वहने के लिए सर्वनाशी दोलनो (Oscillation) मे पडना पडता। लैंम्रिक ने सिंधु के वर्तमान जलोढक और वहने के ढलान का अध्ययन किया है, उनके अनुसार राइक्स के अनुमान और सिंधु का प्रवाह-व्यवहार एक दूसरे से मेल नही खाते।

लैंम्रिक के विचार मे मोहनजोदडो मे तथाकथित गाद-निक्षेप वस्तुत कच्ची ईंटो या वायूढ मिट्टी के वर्षा मे चूर-चूर हुई—सपिंडन के तदनतर इमारतो के दवाव से हुआ होगा।

पोस्सेहूल के मतानुसार राइक्स के द्वारा अनुमानित 150 मील लवे बाँध के अवशेष अवश्य मिलने चाहिए। सेहूवान पर स्थित ऐसे बाँध ने मचार झील तक को (अपने समान स्तर तक) भर दिया होगा। पर इस क्षेत्र से प्राप्त वहुत से हडप्पाकालीन स्थलो के मिलने से इस तर्क की पुष्टि नही होती। अग्रवाल ने भी निम्न शकाएँ व्यक्त की थी। राइक्स ने स्वय स्वीकार किया है कि सिंधु तटीय जगल गादीकरण काल मे नष्ट होकर नदी के तदनतर पुनर्यौवन काल मे पुन न पनप सके होंगे। उनके अनुसार मोहनजोदडो का पूर्व व मध्यकाल गादीकरण के दौर से गुजरा होगा। डेल्स ने पाँच या अधिक गादीकरण-पुनर्यौवन की प्रक्रियाओ को माना है और प्रत्येक प्रक्रिया के लिए 100 वर्ष की अवधि मानी है जो केवल अटकल मात्र है।

यह असभव लगता है कि मोहनजोदडो के कुछ दृढ़प्रतिज्ञ लोग हमेशा चारो ओर फैले पानी के बीच घरो को ऊँचा करके रहते थे। यदि ऐसा हुआ होता तो सडको का क्या हुआ होता ? क्या वे भी ऊँची उठायी गयी ? या हडप्पा-वासी सदैव कीचड और पानी मे ही चलते रहे ? ऐसी स्थिति मे क्या यातायात सभव था ? आवागमन के लिए क्या कोई बैलगाडी चलायी जा सकती थी ?

ऐसी स्थिति मे जगल हमेशा के लिए नष्ट हो जाते। फलस्वरूप जगली पशु भी नष्ट हो जाते या दूसरे स्थानो को कूच कर देते। शिकार की सभावनाएँ

ही समाप्त हो जाती और न छिछले पानी मे मछलियो ही की आशा की जा सकती थी। इस प्रकार खाद्य व मांस की उपलब्धि पूर्णत' असभव हो गई होती।

30 से 150 मील लंबी झील मे न तो कोई फसल उग सकती थी और न यातायात ही सभव था। ऐसी स्थिति मे गदे पानी का निकास कैसे हो पाता ? अत' थोडे दिन भी मानव का रहना कठिन हो जाता। क्या एक महान् सभ्यता उपर्युक्त विकट व विषम परिस्थितियो मे जीवित व विकसित हो सकती थी ? जो लोग सुनियोजित शहरो को जन्म दे सकते थे क्या ऐसे पारगम्य मिट्टी के बाँध को तोडकर अपनी सारी समस्याओं का हल सदैव के लिए नही ढूँढ सकते थे ? इस प्रकार राइक्स का सिद्धांत हडप्पा के विनाश की व्याख्या करने के प्रयास मे इस सभ्यता के प्रादुर्भाव व अस्तित्व को ही असभव बना देता है।

ख—अतिरिक्त पैदावार और नागरीकरण

बाढ की उपजाऊ मिट्टी ने शहर के विकास मे महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। कुछ वर्ष पूर्व तक लरकाना जिला (मोहनजोदडो के आसपास का क्षेत्र) बहुत उर्वर माना जाता था, वस्तुत. हडप्पाकाल में स्थिति और भी अच्छी रही होगी। हिम के द्रवीकरण से सिंधु की बाढ़ के पानी में अंतर नहीं आया होगा। पर वनस्पति के कारण जल-वाह के घटने से मानसूनी बाढ पर असर पडा होगा। फलस्वरूप तत्कालीन बाढ प्रवृत्ति आज की अपेक्षा कम परिवर्तनशील रही होगी। यहाँ की उपजाऊ मिट्टी खूब गहराई तक पानी को सोख रखने की क्षमता के कारण अन्न उत्पादन के लिए बहुत उपयोगी हो गयी। इस प्रकार मैदान अन्न के भडार बन गये।

सिंधु घाटी की बढ़िया, उपजाऊ नर्म मिट्टी के लिए भारी फलो वाले हलो की आवश्यकता न थी। खुदाई में अब तक हल का ऐसा फल मिला भी नही। संभवत पतली लम्बी कुल्हाडी और कुदाली (लकडी की मूठ लगाकर) हल के स्थान पर प्रयोग की जाती थी। पतले लबे चर्ट फलक अक्सर बडी चमक लिए हुए पाये गये हैं। कोई आश्चर्य नही यदि इनका प्रयोग भी लकडी की नोक पर लगाकर हल-फलक की तरह किया जाता रहा हो। अनाज की ढुलाई के लिए बैलगाडियाँ व एकत्र करने के लिए विशाल अन्नागार थे।

अतिरिक्त कृषि उत्पादन ने विभिन्न दस्तकारियो को जन्म दिया। अब पूरा समय दस्तकारी को देने के फलस्वरूप शिल्पकार अपने कार्य के विशेषज्ञ बन गये। उनकी खाद्य पूर्ति अतिरिक्त कृषि उपज से होने लगी। अधिक औजारों के कारण व्यापक कृषि-कर्म व इसके फलस्वरूप अधिक अतिरिक्त कृषि उत्पादन

सभव हुआ। इस अतिरिक्त उत्पादन ने धातु उद्योग को और प्रोत्साहन दिया। विकास की इस प्रक्रिया के फलस्वरूप इतना अधिक उत्पादन हुआ कि उसने नागरीकरण और सभ्यता को जन्म दिया।

तटीय जगलो व घास के मैदानो से वन्य जन्तु व नदियो से प्रचुर मात्रा मे मछलियाँ उपलब्ध हुई होगी। ईंटो को पकाने के लिए कडी और झाऊ के वृक्षो का प्रयोग किया गया। तावूत और अन्य महत्वपूर्ण वस्तुएँ बनाने के लिए चीड व देवदार की लकडी सभवत नदियो द्वारा हिमालय से लायी जाती थी।

सभ्यता का विकास और उसका निर्वाह मुख्य रूप से शक्ति उत्पादन के साधनो के सघन उपयोग पर निर्भर करता है। प्राप्त प्रमाणो के अनुसार हडप्पावासी वायु शक्ति का उपयोग पालदार नावो को चलाने के लिए करते थे। उन्होने पशुधन की भी व्यापक उपयोग किया, सभवत भारत मे पशुओ को पवित्र मनाने की प्रथा का जन्म भी हडप्पा काल मे हुआ। चौपाये कृषि व यातातात दोनो के लिए अति आवश्यक थे। घास के विस्तृत मैदानो के कारण गाय-बैलो की संख्या मे वृद्धि हुई। सभवत. यह वृद्धि पश्चिमी व भारतीय नस्लो के चौपायो के सकरण से हुई। फेयरसर्विस द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त के अनुसार हडप्पा काल मे मानव व पशु के बीच इष्टतम सहजीवन सभव हो गया था, जिसके कारण कृषि व व्यापार का तेजी से व्यापक विकास हुआ, पशुओ के प्रचुर उपयोग से नगरीकरण की गति को उल्लेखनीय तीव्रता प्रदान की।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इष्टतम पारिस्थितिकी विकसित तकनीकी ज्ञान, पहिए का शीघ्रगामी परिवहन के लिए उपयोग, प्राकृतिक शक्ति स्रोतो का सदुपयोग आदि कारणो ने मिलकर हडप्पा सभ्यता को जन्म दिया।

हडप्पा सस्कृति के विकास के सही कारणो का अब तक ठीक से ज्ञान नही हो पाया है। लेकिन यह स्पष्ट है कि वह एक विशेष पारिस्थितिकी मे फली फूली। हडप्पा सस्कृति का विस्तार सिंध, पजाब, राजस्थान, दोआब, कच्छ व गुजरात के अधिकाश भाग की पारिस्थितिकी के अनुरूप था। कुछ अज्ञात कारणो से हडप्पा सस्कृति के लोग इस विशेष पारिस्थितिकीय क्षेत्र के अधिकेन्द्र से निकल कर बाहरी परिधि की ओर जाने के लिए मजबूर हुए। जब तक पारिस्थितिकी वही रही, वे फले-फूले परतु दोआब के घने जगलो और भारी वर्षा के नये क्षेत्र में पहुँचते ही इस सस्कृति का विलय हो गया।

III राजस्थान

थार सहित राजपूताना का रेगिस्तान करीब 4-5 लाख वर्गमील मे फैला

था। यहा कुओ के पानी मे नमक की अधिकता से गोडबोले इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यह क्षेत्र हडप्पा काल मे समुद्र के अन्दर था। पर अमलानद घोष ने राजस्थान मे हडप्पाकालीन स्थल ढूँढ़ निकाले, जो उपर्युक्त मत के विरुद्ध पडते हैं।

अमलानन्द घोष ने प्राचीन दृपद्वती (वर्तमान चोटाग) व सरस्वती (वर्तमान घग्गर) नदियो के किनारे ढूँढ़ निकाले। आजकल ये नदियाँ लगभग विलुप्त हो चुकी हैं। सरस्वती मे नैवाला नाला मिलता है जो कि प्राचीन काल मे सतलज नदी की सहायक थी। दृपद्वती भी सूरतगढ़ के पास सरस्वती से मिलती है। सभवत सरस्वती व इसकी सहायक नदिया अपने जीवन काल मे स्वतत्र रूप से या सिंधु की सहायक के रूप मे अरब सागर मे गिरती थी।

घोष ने बताया कि हडप्पा स्थल, घाटियो के बीच की अपेक्षा, कछार मे मिलते हैं। लेकिन कालातर मे पानी उत्तरोत्तर कम होता गया और बस्तिया तदनुसार उनके निकट बसती गयी ताकि उन्हे जल आसानी से उपलब्ध हो सके।

हडप्पा व पूर्व हडप्पाकालीन बस्तिया दृपद्वती नदी के किनारे पायी गयी। तत्पश्चात् एक सहस्र वर्ष के लम्बे विराम के बाद सरस्वती घाटी मे चित्रित धूसर भाड* सस्कृति के लोगो का अभ्युदय हुआ। पुन एक सहस्र वर्ष के पश्चात् रगमहल संस्कृति की उत्पत्ति इस क्षेत्र मे हुई। इस प्रकार हम देखते हैं कि हडप्पा सस्कृति का अंत 1700 ई० पूर्व हुआ—लगभग एक सहस्र वर्ष पश्चात् 700-800 ई० पू० चि० धू० भाड सस्कृति का और तत्पश्चात् एक सहस्र वर्ष बाद 300 400 ई० के लगभग रगमहल सस्कृति का प्रादुर्भाव। इन सस्कृतियो के बीच के काल की अन्य किसी संस्कृति की बस्तिया इस क्षेत्र मे नही मिलती। मानव जीवन के लिए पानी की पूर्ति अनिवार्य है। एक सहस्र वर्ष के विराम के पश्चात् इन बस्तियो का पुन प्रादुर्भाव क्या किसी जलवायु के चक्र को दर्शाता है, जिसके फलस्वरूप वे हर एक सहस्र वर्ष बाद मानव के अनुकूल हो जाती थीं?

अब प्रश्न है कि राजस्थान का रेगिस्तान कितना पुराना है? घोष ने महाभारत से प्रमाण उद्धरित करके बताया कि यह 200 ई० मे रेगिस्तान हो चुका था। किन्तु तीसरी और चौथी शती के रगमहल सस्कृति के भग्नावशेष यहा पर विस्तृत पैमाने पर मिलते हैं जिससे हम अनुमान लगा सकते हैं कि उस काल में यह क्षेत्र मानव के अधिक अनुकूल था। ब्राईसन और बैरीज के

*चित्रित धूसर मृद् भाड के लिए आगे चि० धू० भांड प्रयोग किया जायगा।
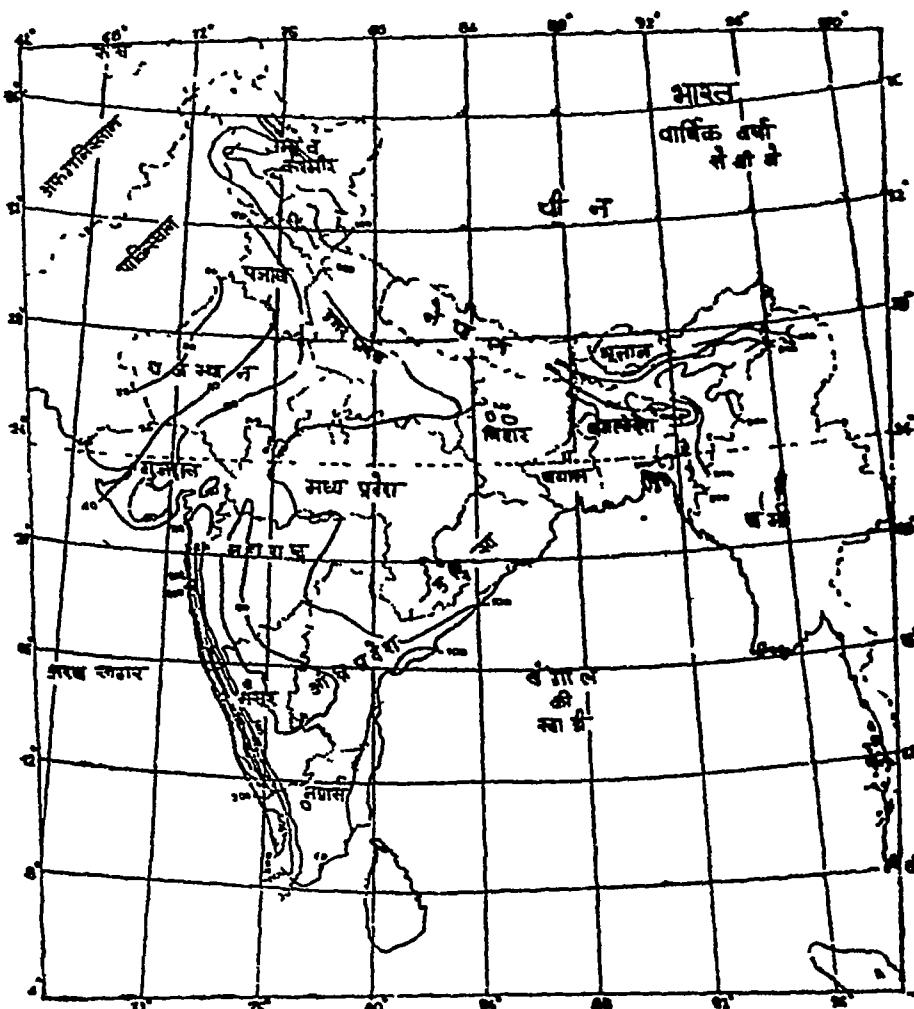
आरेख 3
भारत मे वार्षिक वर्षा का वितरण

मतानुसार यह रेगिस्तान थार तक 1000 ई० पू० फैला। राजस्थान के रेगिस्तान की जलवायु परिवर्तन पर सिंह का मत पहले दिया जा चुका है।

उपर्युक्त विश्लेषणो से यह स्पष्ट हो जाता है कि हड़प्पा व चि० धू० भांड काल मे यहाँ की जलवायु मानव जीवन के अधिक अनुकूल रही होगी, और यहाँ की नदियाँ सदानीरा। हड़प्पा काल मे सिंधु व इस क्षेत्र की पारिस्थितिकी एक सी ही रही होगी। सरस्वती सिंधु की ही सहायक थी। अत. हड़प्पा

संस्कृति इस क्षेत्र मे भी फैल सकी। कालातर मे सतलज, जो सरस्वती की सहायक थी, व्यास से जा मिली और सिंधु मे प्रवाहित होने लगी। अत्यधिक आबादी और चरागाहो की अत्यधिक चराई के कारण सम्भवत मानव, पशु व वनस्पति जगत के बीच पारिस्थितिकीय असतुलन पैदा होने से उर्वर भूमि व वनस्पति आवरण कम होते गये। धूल की परतें उनका स्थान लेती गयी और वर्षा निरतर कम होती गयी। यह निर्विवाद है कि राजस्थान का रेगिस्तान मानव कृत है। हीरा ने कहा था, "राजस्थान रगिस्तान प्रधानत मानव कृत है, मानव द्वारा जगलो को काटने व जलाने से जमीन का क्षय हो गया"।

सतलज के मार्ग परिवर्तन करने, चरागाहो के उजडने, जगलो के काटने व जलाने आदि के फलस्वरूप वर्षा कम होती गयी। सरस्वती स्वय सूखती गयी। दूसरी ओर सिंध के अर्द्धशुष्क क्षेत्र मे सिंधु नदी उपजाऊ मिट्टी फैलाती रही और सीचती रही।

IV दोआब

गगा और उसकी सहायक नदियो का जलोढक मैदान दोआब कहलाता है। इसकी गहरायी 15000 फुट है जो कि हिमयुग की देन है। सहस्रो वर्षों से इन घने मानसूनी जगलो को काटकर ये मैदान बने। यह क्षेत्र 25″-40″ वार्षिक वर्षा के क्षेत्र मे आता है (आरेख 3)। पुरानी जलोढ भूमि ककरीली थी अत बिना लोहे के भारी हलके फलो से जोतना असभव था। प्रारभ मे यह सारा क्षेत्र साल के जगलो मे आच्छादित था जो कि अब केवल पहाडी ढालो व तराई मे बचे हैं। स्टेबिंग ने भी इस क्षेत्र मे प्राचीन घने जगल होने का वर्णन अपने प्रामाणिक ग्रथ 'भारत के जगल' मे किया। सिंह के मतानुसार 4000-2000 ई० पू० के बीच दोआब के किनारे मानसूनी जगल और दलदल फैले थे। के० एम० पणिकर का मत है कि रामायण काल मे इन मैदानो का उपनिवेशन पूर्ण रूप से नही हुआ था। दोआब के घने जगलो मे महाऋषि मुनियों के आश्रम थे। बाशम के कथनानुसार आर्यों का प्रवेश मार्ग नदियो से न होकर (जिनके तट पर सभवत घने जगल व दलदल थे) हिमालय की तलहटियो से होकर था। यहाँ तक कि मुगल काल मे भी विशाल जगलो का वर्णन शिकार के सिलसिले मे आया है। कौसंबी के मतानुसार भी गगा की घाटी की अत्यधिक उपजाऊ मिट्टी, अधिक वर्षा के कारण जगलो से आच्छादित थी।

प्राप्त अवशेषो मे जंगली शीशम (Dalbergia sissoo) और कुर्ची (Holarhena antidysentrica) के प्रमाण दर्शाते हैं कि जलवायु मे तब से

अब तक विशेष परिवर्तन नही आया। जगली नेवाल व चावल का भी पता लगा है। वृजवासी लाल द्वारा प्राप्त हस्तिनापुर के छह मिट्टी के नमूनो मे से चार परागपूर्ण थे, परतु चीड के अलावा अन्य कोई नमूने पहचाने नही गये। यद्यपि दोआब मे प्राचीन काल मे घने जगल होने के विभिन्न प्रमाण निर्णयात्मक हैं, तो भी पराग विश्लेषण मे ही तत्कालीन वनस्पति वैभिन्य का पूर्ण ज्ञान हो सकता है। हस्तिनापुर मे प्राप्त काटी व पकाई हुई हड्डियो से स्पष्ट होता है कि वे लोग गाय, भैंस, हिरन व सुअर का मांस खाते थे।

चावल हस्तिनापुर मे चि० धू० भाड कला से, नवदाटोली मे काल II-IV के स्तर से व रंगपुर व लोथला से भी प्राप्त हुआ है। जगली चावल मध्य भारत व राजपूताना आदि मे होता था। अत सम्भवत. सौराष्ट्र के हड़प्पा सस्कृति के लोगो व नवदाटोली वासियो ने इसके प्रयोग की शुरुआत कर दी थी।

हस्तिनापुर से प्राप्त घोडे के अवशेषो से उसे गायो से सबधित माना गया था। पर मोहनजोदडो के ऊपरी स्तर से घोडे की हड्डियाँ व घोडे के सिर की मृण्मूर्ति मिलीं। रॉस ने राना घुण्डई के निम्नतम स्तर से घोडे के चार दाँत खोज निकाले थे। अत. स्पष्ट है कि पूर्व हड़प्पा व हड़प्पा-काल मे घोडा प्रयोग होता था। अत घोडे अथवा चावल की खेती के आधार पर आर्यों का किसी सस्कृति से संबध जोडना गलत है।

उपर्युक्त प्रमाण स्पष्ट करते हैं कि मूलत दोआब का मैदान घने जगलो व ककडी मिट्टी का क्षेत्र था। केवल अतरजी खेडा व हस्तिनापुर से चि० धू० भाड के स्तरो से लौह उपकरण मिले हैं। इसमे सदेह नही कि चि० धू० भांड कालीन मानव ने ही लौह उपकरणो से दोआब को आबाद करना प्रारभ किया होगा। लेकिन बडे पैमाने पर कृषि उत्पादन बिहार से बहुतायत से प्राप्त लौह उपकरणो द्वारा एन० बी० पी० युग मे ही सभव था। इस क्षेत्र में 500 ई०पू० से पहले नगरो का अस्तित्व सभव न था। लौह प्रचुरता ने ही नागरीकरण को इस युग मे सभव बनाया।

दोआब की आर्द्र घने वनो वाली पारिस्थितिकी मे हड़प्पा संस्कृति वाले पनप न पाये। अत वे दोआब के पश्चिमी क्षेत्र तक ही सीमित रह गये। अब तक प्राप्त ताम्र सचय स्थल चौरस मैदानो मे मिले हैं न कि टीलो पर। यह ताम्र सचय युगीन मानव का घुमक्कड जीवन का ही द्योतक है। उनके केवल मिट्टी के वर्तन भी इसी मत की पुष्टि करते हैं। लकडी काटने के लिए कुल्हाडी, मछली व बडे शिकार के लिए बर्छी, पक्षियो को मारने के लिए मानव कृत-अस्त्र व बडे शिकार को पकड़ने के लिए दुसिगी तलवार आदि उनके घुमक्कड जीवन

के अनुरूप थे। लेकिन केवल ताम्र अस्त्रो से (तक्नीक से) इन विशाल घने वनो को साफ कर कृषि योग्य बनाना, सभव न था। यह तभी सभव हुआ जब लोहे की खोज हुई और उसके उपकरण बनने लगे।

व्हीलर ने दोआब के विषय मे एक बार कहा था, "हिन्दुस्तान का कोई भी क्षेत्र इतनी पूर्णता से परिवर्तित नही हुआ जितना कि यह क्षेत्र जिसमे कृषि-भूमि जगलों को हडपती चली गयी। इसलिए इतिहासकारो को पहले उस सघन महावनो की परिकल्पना करनी चाहिए जिसमे ये सस्कृतियाँ पनपीं।"

V मध्य देश और दक्षिणी पठार

इस क्षेत्र के अतर्गत सतपुडा की पहाडियाँ, मालवा, बघेलखड और छोटा नागपुर आते हैं। जहाँ अभी भी आदिवासी रहते हैं। पहाडियो की ऊँचाई समुद्र से 300 से 400 मीटर तक है। सुब्बाराव ने इस क्षेत्र को शाश्वत मानवी आकर्षण केन्द्र के अतर्गत रखा है। वर्तमान काल मे काली मिट्टी की उपजाऊ शक्ति से प्रभाति होकर ही उन्होने उपर्युक्त विचार बनाये होंगे। कपासी काली मिट्टी की परतो के साथ अधिकाश भाग चट्टानी है। यह मिट्टी सभवत वनस्पति क्षय से बनी हो। मजूमदार के मतानुसार जिस भूमि पर नवदाटोली वासी बसे थे वह भूरी गाद के अपक्षय से बनी है। यद्यपि काली मिट्टी काफी उपजाऊ है पर इसकी तुलना दोआब की उपजाऊ भूमि से नही हो सकती। नर्मदा, ताप्ती गोदावरी आदि बडी नदियो के होते हुए भी यह क्षेत्र घना आबाद नही है, क्योकि नदियाँ पठारो से गुजरती हैं। लेकिन गोदावरी के उपजाऊ डेल्टा मे घनी आबादी है।

ताम्राश्मीय युगीन मानव अपने अल्प ताम्र प्राप्ति व तकनीकी ज्ञान से कठोर काली कपासी धरती को नही जोत सकता था। इस कार्य के लिए भारी व तीखे लौह उपकरणो की आवश्यकता थी। कृषि नर्मदा और बेतवा के तग जलोढ पट्टियाँ तक ही सीमित रही। इन भौतिक परिस्थितियो मे बहुत बडे पैमाने पर कृषि सभव न थी अत अतिरिक्त उत्पादन का प्रश्न ही नही उठता। पारिस्थितिकी सीमित कृषि-कर्म के अनुकूल थी पर नागरीकरण के लिए नही। यही कारण है कि ताम्राश्मीय सस्कृतियाँ ग्रामीण स्तर से ऊपर नही उठ पायी। सकालिया के मतानुसार नवदाटोली की प्रारभिक बस्ती की आबादी लगभग 150 तक थी।

ताम्राश्मीय कालीन मानव ने कई प्रकार के पौधे उगाये—जैसे गेहूँ और चावल। नवदाटोली के II-IV स्तर से मसूर, उडद, मूँग, अलसी, जौ और

आँवला आदि प्राप्त हुए। यह विचित्र बात है कि इस वनस्पति में शीत देशी जातियाँ अन्य जातियों से अधिक हैं। क्या यह उस काल की ठण्डी जलवायु का द्योतक है?

इस क्षेत्र की चट्टानें पत्थरों के हथियार बनाने के लिए उपयुक्त थीं। दक्षिणी लावा में घिसी कुल्हाड़ी बनाने के लिए डोलराइट बहुतायत में मिलता है। यह क्षेत्र करनेतन व बादनी पत्थर आदि के खनिजों से भरपूर था। ये पत्थर औजार बनाने के काम में लाये जाते थे। सकालिया को नर्मदा तट पर भी करकेतन के गुल्म मिले। सामग्री की कमी या विभिन्न परम्पराओं के कारण बनास संस्कृति वालों ने लघु-अश्म अस्त्रों का प्रयोग नहीं किया, जबकि नवदा-टोली में ऐसा लगता है कि प्रत्येक परिवार ने अपने प्रयोग के लिए स्वयं पत्थर के हथियार बनाये थे।

VI निष्कर्ष

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि पारिस्थितिकी पूर्णरूप से सामाजिक विकास को नियन्त्रित नहीं करती। पारिस्थितिकी विकास में सहायक भी हो सकती है तो उसके मार्ग को अवरुद्ध भी कर सकती है। तकनीकी ज्ञान मानव को उसकी पारिस्थितिकी के नियन्त्रण से मुक्त कर देता है। पर किसी एक निश्चित पारिस्थितिकी के परिवेश में तकनीकी ज्ञान कहाँ तक विकास कर सकता है इसकी भी सीमा है। सिंध में ताम्र तकनीक ने एक महान् सभ्यता को जन्म दिया तो दूसरी ओर दोआब के नागरीकरण में यह असफल रही। हड़प्पा संस्कृति के शरणार्थी दोआब के आर्द्र मानसूनी जंगलों में उलझ कर विलीन हो गये। हड़प्पा संस्कृति के 2000 वर्ष पश्चात्, बिहार से प्राप्त लौह से ही दोआब का नागरीकरण सम्भव हो सका।

अध्याय—२ सदर्भिका

इस अध्याय विषयक मुख्य ग्रन्थ

D P Agrawal : The Copper Bronze Age in India, 1971 (New Delhi)

D. D Kosambi : The Culture and Civilisation of Ancient India in Historic Outline, 1965 (London)

M B Pithawala : A Physical and Economic Geography of Sind, 1959 (Karachi)

S. Piggott	:	Prehistoric India, 1961 (Harmondsworth).
R L Raikes	:	Water, Weather & Prehistory, 1967 (London)
O H K Spate		India and Pakistan, 1963 (London)
E P. Stebbing	·	The Forests of India, 1922 (London)
B. Subba Rao	:	The Personality of India, 1959 (Baroda)
R. E. M. Wheeler		Early India and Pakistan, 1959 (London)

भूतकालीन जलवायु परिवर्तन संबंधी लेख

G F Dales		Antiquity, Vol 34, P. 86, 1962.
W A. Fairservis	:	Amer. Museum Novitates No 2055, 1961
H T Lambrick	.	Antiquity, Vol 41, p 228, 1967
R L. Raikes and R H Dyson Jr	:	American Anthropologist, Vol 63, p 265, 1961
R. L Raikes	:	American Anthropologist, Vol. 66, p 284, 1964
R. L. Raikes	.	Antiquity, Vol 39. p. 196, 1965,
R. L. Raikes		Antiquity, Vol 42, No. 168, 1968
C Ramaswamy	·	Nature, Vol. 217, No 5129, p 628-629, 1968
Gurdeep Singh	·	Archaeology and Physical Anthropology in Oceania, Vol 6, No. 2, July 1971.
Gurdeep Singh	:	The Paleobotanist, Vol. 12, No 1, 1963.
B. B Lal	:	American Anthropologist, Vol 70, No 5, p. 857-863, 1968

काकर और सुलेमान पर्वत शृखला और झोब और बेजी के जालायित विन्यास (Trellis-pattern) की घाटिया इस क्षेत्र का विभाजन करती हैं। ऐसे प्रदेश मे मरुद्यान पार्थक्य को प्रेरणा देते हैं। इस प्रकार का प्रदेश निकट सबध तथा आदान-प्रदान व आवागमन के लिए अनुकूल न था। विभा त्रिपाठी के अनुसार इस प्रदेश की विभिन्न आदिवासी सस्कृतियो को यहाँ के भौगोलिक वातावरण ने आदर्श प्रतिवेश प्रदान किया है। इन्ही मरुद्यानो मे आरभिक कृषि-सस्कृतिया पनपी जिन्होने ईरानी सस्कृतियो से बहुत कुछ आत्मसात किया।

(क) अफगानिस्तान

(1) मु डीगाक

दक्षिणी अफगानिस्तान मे मु डीगाक से अत्यत महत्वपूर्ण सास्कृतिक क्रम प्राप्त हुआ है। वहाँ सबसे पहले बसे लोगो की बस्ती (काल I_1) से हस्तनिर्मित गुलाबी मृद्भाड प्राप्त हुए हैं, जिसके थोडे समय पश्चात् ही काल I_2 मे मृद्भाड चाकनिर्मित बनने लगे जिनका पश्चिमी सस्कृतियो से साम्य था। इस काल (I_2) मे ताँबा भी इस्तेमाल होने लगा। काल I_3 मे मृद्भाडो तथा वास्तु-कला मे आम्री का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। कूबड साडो की चित्रित लघु मूर्तिया भी मिलती हैं। मुडीगाक के II व III मे पत्थर के सकेन्द्री डिजाइन वाली मोहरो का प्रादुर्भाव हुआ।

काल II मे न केवल पाश्चात्य सस्कृतियो से, अनुपात मे, अलगाव स्पष्ट है बल्कि ताबे की बनी वस्तुओ के सग्रह मे नाकेदार सुइया, रीढदार कटार तथा मरगोल युग्म प्राप्त हुए हैं। काल III मे अकस्मात् ईरान, आम्री और हडप्पा के प्रभाव के फलस्वरूप मृद्भाडो तथा उपकरणो के प्रकार मे विविधता दृष्टिगोचर होती है। ताँबे व टीन के समिश्रण का प्रमाण तथा हत्थे के लिए छेदवाली कुल्हाडी और बसूलो का प्रयोग सर्वप्रथम काल III_6 मे हुआ। काल IV मे परकोटे, दुर्ग तथा मन्दिर के ध्वसावशेष पहचाने जा सके हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस काल मे नगर विकास आरभ हुआ। काल IV मे सूसा के स्कारलेट मृद्भांड तथा कुछ ईरानी डिजाइन (आडी तिरछी रेखाएँ, प्राकृतिक रूप मे दर्शाये गये तीतर तथा साकिन (Ibex) इत्यादि) से सामान्य समानताएँ अन्य कालो के समान निरतर देखी जा सकती हैं। काल V मे शतरजी पट्टवाले हस्तनिर्मित मृद्भाड पुन मिलते हैं। इस काल मे मृद्भाडो और धातु विज्ञान मे पश्चिमी एशिया के

बलूचिस्तान के हड़प्पा संस्कृति से स्थल (डूकी, डाबर कोट) अन्तर्वर्ती क्षेत्र में स्थित हैं जिनका सिंधु घाटी से पारिस्थितिकीय सबंध है। बलूची पुरैतिहासिक स्थलो की स्थिति बलूचिस्तान के उच्च प्रदेश में परिसीमित रहने की है।

हाल ही में बलूचिस्तान क्षेत्र में फेयरसर्विस और डी कार्डी ने व्यापक रूप में अन्वेषण किया। इसी के फलस्वरूप आज हमें इन बलूची पुरैतिहासिक सस्कृतियो के विषय में विस्तृत ज्ञान हो गया है, लेकिन उसकी (दम्ब सदात को छोड़कर) पुरानी कार्यप्रणाली के कारण उसके कार्य का महत्व कम हो गया है। डी कार्डी का कथन है कि कच्ची ईंटो को न पहचान सकने के कारण उत्खनको ने 25 से०मी० की इकाइयो में खोदा। इसलिए क्वेटा की घाटी से प्राप्त विविध प्रकार के अलकृत तथा अनलकृत मृद्भाडो का सहसबध कठिन है।

(1) नाल

सन् 1925 में हार्ग्रीव्स ने कलात में नाल का उत्खनन किया। वहाँ के मकानो की दीवारो में नीवें खोदकर बनायी गयी थीं। चिनाई तीन प्रकार की थीं—पहले प्रकार की चिनाई में खदान से निकाले गये सीधी दरार वाले पत्थर प्रयोग किये गये थे। दूसरे प्रकार की चिनाई में नदी के पत्थर, और तीसरे प्रकार की चिनाई में दोनो किस्म के पत्थरों का प्रयोग किया गया था। आम्री में भी कजाल ने ऐसी इमारतें देखीं। उसके विचार से नरभक्षी पशुओ से रक्षा के हेतु इमारतो को ऊँचा बनाया गया था।

हार्ग्रीव्स ने मुख्य रूप से कब्रिस्तान क्षेत्र का उत्खनन किया जहा उसे विभिन्न प्रकार की कब्रें मिली। अस्थि भग कब्रों में बर्तनो के आस पास बच्चो और वयस्को की हड्डियाँ छितरी पडी थी। एक अन्य प्रकार की कब्रो में बिना किसी सुनिर्मित कब्र के ही सपूर्ण शरीर को दफन किया गया था।

आवासीय क्षेत्र D में अनियमित ढग के कक्ष थे जिनमे लकडी की कडियाँ तथा दीवारें काली हो गयी थी। चकमक के चाकू और क्रोड सर्वथा अप्राप्य थे। मनके, बादली पत्थर (Agate), तामडे पत्थर (Carnelion), लाजवर्द (Lapis Lazuli), शख (Shell), पेस्ट (Paste), चूने के पत्थर और ताँबे के थे। मृण्मूर्तियो में मेढ़ा, कूबड वाला साँड तथा मानवाकार मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं।

नाल के मृद्भाडो की मिट्टी हरिताभ और गुलाबी रग के बीच की है जिस पर दूधिये रग की स्लिप है, गहरी लाल स्लिप कम ही है। इसमे मुख्य आकृतियाँ हैं--अतनंत किनारे वाली कटोरियाँ, बेलनाकार पेटिका, पेंदेदार भाड। काले डिजाइन, लाल, पीले, नीले और हरे रगो से भरे गये थे, जिनमे से

केवल लाल रंग ही वर्तनो को पकाने के पूर्व लगाया गया था। डिजाइन खडो मे बने थे। पशु डिजाइनो मे साँड, चीते और मछलियाँ बनाये गये थे। ज्यामितीय डिजाइन थे—सिग्मा, अग्रेजी के W अक्षर, कघी के प्रतिरूप तथा प्रतिच्छेदी वृत। आवासीय क्षेत्र D के मृद्भाड बहुरगी नही हैं। क्या यह कहना उचित होगा कि केवल शवाधानो से सबधित मिट्टी के वर्तन ही अलकृत किये गये थे तथा दैनिक इस्तेमाल मे आने वाले वर्तन अनलकृत थे? नाल के कब्रिस्तान तथा आवास क्षेत्र के सबधात्मक विवाद के बारे मे अध्याय 4 मे विचार करेंगे। इस समय इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि पिगट और गार्डन के विपरीत डेल्स ने मुंडीगाक III के सादृश्य के आधार पर नाल के कब्रिस्तान को आवास क्षेत्र (D और F क्षेत्र के ऊपरी स्तर) के पहले का निर्धारित किया है।

D क्षेत्र से सेरुसाईट (Cerrusite) तथा सीसे का मल प्राप्त हुए हैं, जो सीसा प्रद्रावण (प्रगलन) की ओर इगित करते हैं। नाल से प्राप्त हुए ताँबे की वस्तुओ मे वसूला, आरी, कुल्हाडी, छेनी, छुरा और मोहर का उल्लेख किया जा सकता है। इनमे से कुछ औजार (उपकरण) कुवाल के समान हैं।

(ii) किलीगुल मोहम्मद

किलीगुल मोहम्मद काल I सस्कृति मे प्राग्-मृद्भाड (वल्कि निर्मृद्भाड) स्तरो से हड्डी और पत्थर के औजार और उपकरण मिलते हैं। काल II मे चाक से बने काले रग से चित्रित लाल रग के मृद्भाडो का प्रादुर्भाव हुआ। कुछ अलकृत डिजाइन हलफ शैली का स्मरण कराते हैं। इस काल मे तावा भी उपलब्ध हुआ। काल III में यद्यपि ईंटें, तथा अन्य सिंधु-सभ्यता के डिजाइन जैसे साड और पीपल का पत्ता का आरभ हुआ, फिर भी ईरानी प्रभाव निरतर रहा।

फेयरसर्विस द्वारा दी गयी आधार-सामग्री का विश्लेषण करने पर डेल्स ने उसके वर्गीकरण को दोषपूर्ण पाया क्योकि काल II के मृद्भाडो के बारह प्रकारो में से दस चाकनिर्मित थे। डेल्स ने किलीगुल मोहम्मद के काल II या काल III को एक विशिष्ट सस्कृति इकाई के रूप मे लिया जो उसके द्वारा वर्गीकरण किये गये प्रकाल C के अन्तर्गत हैं।

क्वेटा पिशन जिले के दवसदात से विभिन्न प्रकार के भाड प्राप्त हुए हैं। दवसदात के काल I से निम्नलिखित चाकनिर्मित भाड प्राप्त हुए हैं सरदार खुरदरा पाडु, केचिवेग आक्सीकृत, मुस्तफा मृदुकृत (Tempered), क्वेटा अभ्रकी, मलिक गहरीस्लिप, केची बेग पाडु पर काली स्लिप, केची बेग काली

पर सफेद स्लिप, केची बेग बहुरंगी, क्वेटा सतह पर काला, केची बेग लाल चित्रित इत्यादि। वली रेतीला तथा ककर मृदुकृत भाड हस्तनिर्मित है। दब सदात के काल II मे हमे निम्नलिखित प्रकार प्राप्त हुए हैं मिया गु डई पाडु अनलकृत लाल, पाडु स्लिप, परिष्कृत स्लिप, मलिक गहरी स्लिप, क्वेटा पाडु पर काला, काली स्लिप पर लाल भूरा, फैज मोहम्मद सलैटी तथा क्वेटा आर्द्र भाड। सदात एक-रेखा भाड दबसदात के तीसरे काल मे ही सीमित है।

(iii) दबसदात

दबसदात के झोब के समान मातृदेवी की (केवल काल III से) गरुडीय नाक और गोल व बाहर निकली आँख वाली तथा काल (II तथा III में) निलबी स्तन तथा समकोण मे मुडी मृण्मूर्तिया प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त मकानो के खिलौने भी मिलते हैं। खानेदार मोहर, पकी मिट्टी की चूडिया, हड्डी, हाथी दाँत, करकेतन, लाजवर्द, सेलखडी के मनके भी मिलते हैं।

यहाँ सीसे की कुछ कच्ची धातु भी मिली। दबसदात के दूसरे और तीसरे काल से तावे के कुछ टुकडे तथा छुरे भी मिले। दबसदात के पत्थर के चाकू समानातर किनारे के हैं तथा एक सिरे से दूसरे सिरे तक उनकी मोटाई समान है।

केचीबेग भाडो की समान रूप से उपस्थिति के आधार पर दबसदात के काल I को किली गुल मोहम्मद के काल IV के बराबर माना गया है। आम्री के राना घु डई IIIB तथा उनके कैचीबेग भाड के साम्य के फलस्वरूप इन्हें दबसदात I के साथ रखा जा सकता है। यदि फैज मोहम्मद सलेटी भांड की सूर जगाल स्लेटी से तुलना की जा सकती है तो दबसदात II को रानी घु डई काल III के बराबर माना जा सकता है। रेखा छायाकित साड, कघी पैटर्न तथा पक्षी मूर्ति के समान प्रतिरूपो के आधार पर दबसदात II और III की कुल्ली से भी तुलना की जा सकती है। दबसदात II और III के हड़प्पा से सामजस्य के आधार हैं—अगूठे के नख से उत्कीर्ण मृद्भाड, छिद्रित वर्तन तथा पक्षी मृण्मूर्तिया। मोहनजोदडो के नीचे के स्तरो से क्वेटा आर्द्रभाड (Quetta Wet Ware) भी मिले हैं।

(iv) अंजीरा और स्याह दब

बलूचिस्तान के कलात क्षेत्र मे डी कार्डी ने उत्खनन किया। सुराब क्षेत्र मे (अंजीरा तथा स्याह दब स्थलो मे) उसने पाँच कालो का अनुक्रम प्रस्तुत किया।

काल I मे उपकरण अल्प मात्रा मे प्राप्त हुए हैं। इस काल मे चाकू-शल्क (Flake-blades) जो स्याल्क I-III से साम्य रखते है तथा लाल स्लिप वाले मृद्भाड मिलते हैं। अजीरा मे अर्ध-यायावर वस्ती के अवशेष मिले जो किलीगुल मोहम्मद II के तुल्य हैं। दूसरे काल की कच्ची ईंटो की इमारतो की स्थायी वस्ती का प्रमाण है। सास्कृतिक सामग्री किलीगुल मोहम्मद II-III के अनुरूप थी तथा लाल स्लिप वाले चमकीले मृद्भाड, जो वलूचिस्तान मे अज्ञात हैं, तथा टोकरी के फ्रेम मे बनाये गये अनगढ़ वर्तन भी मिले। दो सीग, जो सभवत. किसी छोटे वृषभ-मृण्मूर्तियो के भाग रहे होगे, अद्वितीय हैं, क्योकि अभी तक किलीगुल मोहम्मद सस्कृति मे यह प्राप्त नही हुए हैं। तीसरा काल अतर्वर्ती है जिसमे नयी वस्तु शैली तथा मृद्भाडो का प्रादुर्भाव हुआ। सियाह् II मे टोकरी के निशान वाले तथा किलीगुल मोहम्मद भाड सामान्यत मिलते हैं। द्वितीय प्रकाल मे एक अतिविशाल मच का निर्माण किया गया जो वाद मे ध्वस्त हो गया तथा तीसरे प्रकाल मे पुनर्निर्मित किया गया। जरी भाड तथा परिष्कृत दूधिया स्लिप मृद्भाड काल III की विशिष्टता है। B अवस्था से प्रारभ होकर, टोगाउ चित्रवल्लरी मे अनरण की पहले से तीसरे प्रकाल तक स्तरविन्यासात्मक दृष्टि से तीन अवस्थाएँ देखी जा सकती है। इस काल की किलीगुल IV, तथा आम्री-केची वेग भाडो के आधार पर दवसदात I से तुलना की जा सकती है। काल IV कुछ अश तक दवसदात II के क्वेटा सस्कृति के आधिपत्य के साथ पडता है। अजीरा मे विस्तार तथा पुनर्निर्माण इसकी विशेषता है। नाल के उत्कृष्ट भाड मुख्यतया दूधिया स्लिप वाले थे तथा विविध द्विरगी तथा वहुरगी डिजाइन इनमे वने थे। चित्र प्राकृतिक तथा ज्यामितिक शैलियो के थे। अजीरा भाड प्रकार भारी वरतनो के लिए ही था। अजीरा भाड कुल्ली सस्कृति से कडी स्थापित करता है क्योकि यह शाहीटूप के कुल्ली स्तरो मे प्राप्त है। शाही टूप मे इस प्रकार का एक कटी-माडल प्राप्त हुआ था। काल V के निक्षेप काफी हद तक अपरदित (croded) हैं। तथापि वहाँ पेरिआनो वेट रिजर्व स्लिप भाड तथा रानी घुडई III C के डिजाइन प्राप्त हुए हैं। यद्यपि वहाँ से कोई भी धातु की वस्तुएँ प्राप्त नही हुई तथापि अजीरा III और IV काल से प्राप्त सान धातु के प्रयोग की ओर इगित करते हैं।

(v) एडिथ साहीर

दक्षिण-पूर्व मे लास वेला जिले मे एडिथ साहीर समूह है जहाँ पक्तिवद्ध शिलाखडो मे निर्मित इमारतें तथा सडकें मिली। पत्थर की वीथियाँ क्रमश.

ऊपर का ओर घटती हुई जिग्गुरात की योजना की याद दिलाती है। मृद्‌भाडो के आधार पर यहाँ की दो काल पहचाने गये हैं जिनमे काल II मे हड़प्पा संस्कृति का प्रभाव देखा गया।

(vi) बामपुर

सुदूर पश्चिम मे ईरानी बलूचिस्तान मे डी कार्डी ने बामपुर मे उत्खनन से छह काल पाये। वहाँ के प्रथम तथा द्वितीय प्रकाल मे चाक से बने मृद्‌भाड प्राप्त हुए हैं जो दूधिया स्लिप वाले हैं। उन पर काले अथवा गहरे भूरे रग से विभिन्न प्रकार के ज्यामितिक व पशु-चित्र डिजाइन बनाये गये हैं। इनका सूसा से सादृश्य है। बामपुर के काल III तथा IV का मुडीगाक से सपर्क था किन्तु कुल्ली सस्कृति से सपर्क के कोई प्रमाण नही मिलते। बामपुर के काल IV-V मे उत्कीर्ण डिजाइन वाले सेलखडी के भाड प्रचलित थे। सूसा से प्राप्त ऐसा एक उदाहरण नरमसिन के काल (2291-2295 ई० पूर्व) का माना गया है। काल I से IV के मृद्‌भाडो की शैली मे निरतरता है। काल V मे निश्चित रूप से अतराल है। इस काल के मृद्‌भाड मिश्रित प्रकार के हैं जिसमे कुल्ली कलात, परवर्ती सुषा सस्कृति के तत्व देखे जा सकते हैं। काल VI मे निश्चित स्थानीय शैली का प्रादुर्भाव हुआ। पुरातात्विक तर्कों के आधार पर डी कार्डी ने प्रथम काल को ईसापूर्व तीसरी सहस्राब्दी अथवा उससे थोडा पहले का कहा है।

(vii) कुल्ली

दक्षिणी बलूचिस्तान के कोलवा प्रदेश मे कुल्ली सस्कृति के अनेक स्थल है। अनगढ पत्थरो की इमारतें तथा एशलर (Ashlar) चिनाई, पटिया वाली पटरियाँ, विविध शव-सस्कार (अत्येष्टि सस्कार), विशिष्ट मृद्‌भाड, उत्कीर्ण खानेदार पत्थर के भाड, विचित्र स्त्री-मृण्मूर्तियाँ तथा कूबड वाले साड इस सस्कृति की मुख्य विशेषताएँ हैं। तोजी और मजैना दबसदात मे जो सभवत कुल्ली सस्कृति से ही सबधित हैं, प्राचीर के अवशेष देखे गये। यही कब्रिस्तान से ताम्र-कास्य उपकरणो के प्रचुर उदाहरण मिले हैं। वहाँ से प्राप्त एक ताम्र दर्पण, एक स्त्री के रूप मे बना मूठ वहाँ के विशिष्ट उदाहरण हैं।

यहाँ के भाडो पर गुलाबी जैसी अथवा पाडु तथा सफेद अथवा सफेद जैसी स्लिप लगायी जाती थी। यहाँ के विशिष्ट चित्रित अलकरण निम्न हैं। मडलो में विभाजित असादृश्यमूलक डिजाइन जिनके बीच यदा-कदा पूरे भाड के चारो

ओर बनायी गयी चित्रवल्लरी है जिसमे पशुओ और वनस्पति का स्वाभाविक चित्रण किया गया है। अनोखे रूप मे दीर्घकाय पशु (साधारणत: कूबड वाले साड), साकेतिक भू दृश्य, विशाल गोल आँखें, रूढी कृत बकरियाँ तथा अतराल को भरने के लिए कई अन्य डिजाइन (रिक्ततामय या Horror Vacui) मुख्य हैं। "पशुओ के साथ भू-दृश्य," सूसा तथा दियाला क्षेत्र के "स्कालेट वेयर" से सबद्ध हैं। टोकरी तथा अन्य प्रकार वाले पत्थर के भाडो के समरूप उदाहरण मेसोपोटामिया मे प्राप्त हुए हैं। कुल्ली के हड़प्पा से सास्कृतिक तथा कालगत सबध स्पष्ट नहीं हैं, किंतु ऐसा लगता है कि कुछ महत्वपूर्ण सबध रहे होंगे। हाल ही मे फारस की खाडी मे अबूढावी से पहली बार महत्वपूर्ण सबध के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। डेल्स के अनुसार कुल्ली के निवासी हड़प्पा और मेसोपोटामिया के व्यापारिक तथा सास्कृतिक सबधो मे मध्यस्थता का काम करते रहे होंगे। सगीरा शवाधानो से प्राप्त चित्रित भाड ही इसका मुख्य प्रमाण है। यह अलकरण कुल्ली प्रकार का है। कुल्ली सदृश लघु-मूर्तियाँ दक्षिणी बलूचिस्तान से प्राप्त प्राचीनतम स्त्री मूर्तियाँ है।

दक्षिणी ईरान तथा मेसोपोटामिया से महत्वपूर्ण समानताओ के कारण यह संभव है कि कुल्ली सस्कृति का मौलिक विकास नाल सस्कृति समूह से ही हुआ हो। यद्यपि क्षेत्रीय विस्तार की दृष्टि से नाल (बहुरगीय) तथा कुल्ली सस्कृति के स्थल परस्पर व्यापी हैं किंतु इन दोनो क्षेत्र का विस्तार स्पष्ट रूप से भूतल की ऊँचाई की दृष्टि से समझा जा सकता है। नाल सस्कृति की बस्तियाँ 1000 से 1300 मीटर के मध्य ऊँचाई वाले इलाके मे मिलती हैं (सक्षेप मे पहले वर्णन किया जा चुका है), जबकि कुल्ली सस्कृति की बस्तियाँ निचली ऊँचाई वाले मडलो में 700 मीटर तक स्थित हैं। नाल तथा आम्री के भाड सग्रहो मे आकार तथा चित्रित डिजाइनो की दृष्टि मे कई समानताएँ देखी जा सकती हैं। नाल, कुल्ली तथा आम्री सस्कृतियो के इस सापेक्षिक कालगत सबधो की कुछ हद तक पुष्टि निंदोवरी के उत्खनन के विवरण से होती है। निंदोवरी से नाल कब्रगाह के बाद के मृद्भाड, जिन पर विशिष्ट वानस्पतिक अथवा बुक्रेनियम "सदात" डिजाइन बने हैं, ठेठ कुल्ली मृद्भाडों के साथ मिले हैं। निंदोवरी के पहले दो उत्खननो मे केवल एक नाल ठीकरा (तथा आम्री का कोई भी नहीं) प्राप्त हुआ।

(viii) पीराक दब

बलूचिस्तान मे कच्ची मैदान के इलाके में पीराक दब से एक दुरगा भांड-

प्रकार प्राप्त हुआ । जिसका राइक्स के अनुसार ईराक के स्तरो निनेवेह III तथा अर्पाचियाह से घनिष्ठ सबध है । उनके अनुसार वास्तव मे इसके आधार पर पीराक का काल काफी पहले का (लगभग 5000 ई० पूर्व) माना जा सकता है । इसी कारण पीराक से बलूचिस्तान की उत्तरकालीन ताम्राश्मीय सस्कृतियो का सीधा सास्कृतिक विकास ज्ञात करना सभव नही । पीराक भाड के कालानुक्रम के विवाद मे पडने के बजाय हम केवल इतना ही कहेगे, कि डेल्स ने इसे अपने केवल D प्रकाल मे ही सम्मिलित किया है ।

पिराक दब के मुख्य मृद्भाडो की विशेषता निम्नलिखित है

दूधिया अथवा पाडु स्लिप पर काले अथवा भूरे जैसे रगो का प्रयोग, तिरछे डिजाइनो के प्रति स्पष्ट अभिरुचि, स्लिप तथा अन्य रग द्वारा बनाया गया जटिल जाली का काम, बहुत से त्रिकोण, सरल रेखीय (Rectilinear) प्रतिरूप, खडी रेखाओ द्वारा विभाजित विभिन्न बनतखडो (Design-panel) के डिजाइन इत्यादि । अधिकतर सादे भाड हस्त-निर्मित हैं । अलकृत भाड मन्द गति के चाक मे बनाये गये हैं । पूरे दब मे चाक पर बने भारी, अनलकृत सलेटी रग के भाड के टुकडे छितरे पडे मिलते हैं । इन भाडो के साथ खाँचेदार फलक (Notched blades) भी प्राप्त होते हैं जो विशिष्ट प्रकार हैं ।

यह क्षेत्र सामान्यत गिरिपाद तथा सिंधु के मैदानी इलाके के द्विरगी भाडो की परपरा का ही एक हिस्सा माना जा सकता है ।

(ix) राना घुडई

फोब घाटी मे राना घुडई से पूरा सास्कृतिक अनुक्रम प्राप्त हुआ है। प्रथम काल में किसी भी प्रकार की इमारतें नही थी तथा हस्तनिर्मित अचित्रित मृद्भाड, पिलंट के बिना चमक के चाकू, हड्डी की नुकीली सुई, नाकेदार सूई आदि इस काल की विशेषता है । साड (Bos indicus), भेड (Ovis vignei), गधे (Equus asinus) जानवरो की हड्डियो के अलावा घोडे (Equus caballus) के चार दाँत भी यहाँ से प्राप्त हुए । पहले काल के अवशेषो से आभास होता है कि इस काल मे यह स्थल यायावर घुडसवारो का पडाव शिविर था ।

दूसरे काल की विशेषता उत्कृष्ट चित्रयुक्त चाक-निर्मित मृद्भाड हैं । कूबड वाले साड तथा काले मृग पाडु-पर-काले रग के बनाये गये हैं तथा इसका हिस्सार काल I से साम्य है । कुल्ली के विपरीत, इनमे पशुओ का दीर्घीकरण

सपाट न होकर लंब है। मकानो की नीव मे शिलाखड लगाये गये थे। इस संक्षिप्त काल के बाद के निक्षेप अवशेष रहित थे। किंतु काल III काफी बड़ा है तथा इसमे पूर्ववर्ती काल की परपरा की निरतरता देखी जा सकती है। चित्रण की लाल-पर-लाल तकनीक इस काल मे आरभ हुई। इन द्विरगी विधि से बने बहुल रेखा के वर्ग तथा पीठिका मे लब रेखाएँ आम्री का स्मरण कराती हैं। काल III B मे सुराही के समान भांड बनने लगे, काल III C मे चित्र अपरिष्कृत है तथा पृष्ठभूमि मे लाल रग के अधिक गहरे होने के प्रमाण स्पष्ट है। काल III C का अत सभवत आग लगने तथा हिंसात्मक घटना से हुआ। काल IV और V पूर्ववर्ती काल से सर्वथा अलग है। काल IV में अपरिष्कृत कटोरे मिलते हैं जिनमे भद्दे चित्र बने हैं। काल V मे चित्रण की परपरा भी समाप्त हो गयी तथा उसके बजाय डिजाइन जडे गये हैं।

पिगट ने नाल और सूरजगल की राना घुडई III C से तुलना की है। नाल मे शिलाखडो की नीव पर बने कच्ची ईंटो के मकान (जिनकी दीवारें 5 फुट से 13 फुट लम्बी हैं) तथा मुगल गुंडई मे परकोटे से सकेत भी मिले हैं। पेरिआनो IIIC की राना घुडई IIIC से तुलना की गयी है। यद्यपि केश विन्यास युक्त, आख के लिए गोल छिद्र तथा कठोर मुखमुद्रा वाली मिट्टी की बनी नारी की लघु मूर्तिया तथा साडो की अनगढ लघु मूर्तिया राना घुंडई के उत्खनन मे प्राप्त नही हुई हैं फिर भी वे RG III संग्रह का सभवत भाग मानी जा सकती हैं। चकमक पत्थर के बने नोकीले औजार, पर्णाकार बाणाग्र तथा सेलखडी के प्याले इस काल की विशेषता हैं। पेरिआनो गुडई से एक तांबे की छड तथा एक छल्ला प्राप्त हुआ। सूरजगल, पेरिआनो गुडई, और मुगल गुडई के सगोरा शवाधानो मे प्राप्त दहन की गयी हड्डिया सभवत RG III की हैं क्योंकि RG III के ठीकरे ऊपरी तलो से प्राप्त ठीकरो से मिलते हैं। स्टाईन द्वारा उत्खनित मुगल गुन्डई के सगोरा शवाधानो से स्यालक B प्रकार के अवशेष मिले, किन्तु पेरिआनो गुडई तथा इस स्थल में दाहसस्कार शवाधान भाडो मे थे जिनमे से एक कमरे के फर्श के नीचे तथा एक दीवार मे भाडो के साथ मिले।

(ग) सिन्धु

(1) आम्री

सिंधु घाटी मे आम्री के उत्खनन से चार कालो का क्रम मिला है। काल IA मे हस्तनिर्मित (अधिकाश बिना किनारे वाले) तथा ज्यामितिक डिजाइन वाले मृद्भाड तथा टोगाउ ठीकरे मिलते हैं। कुछ चाकनिर्मित भांड, चर्ट के

आरेख 4

आम्री संस्कृति के मृद्भाण्ड प्रकार
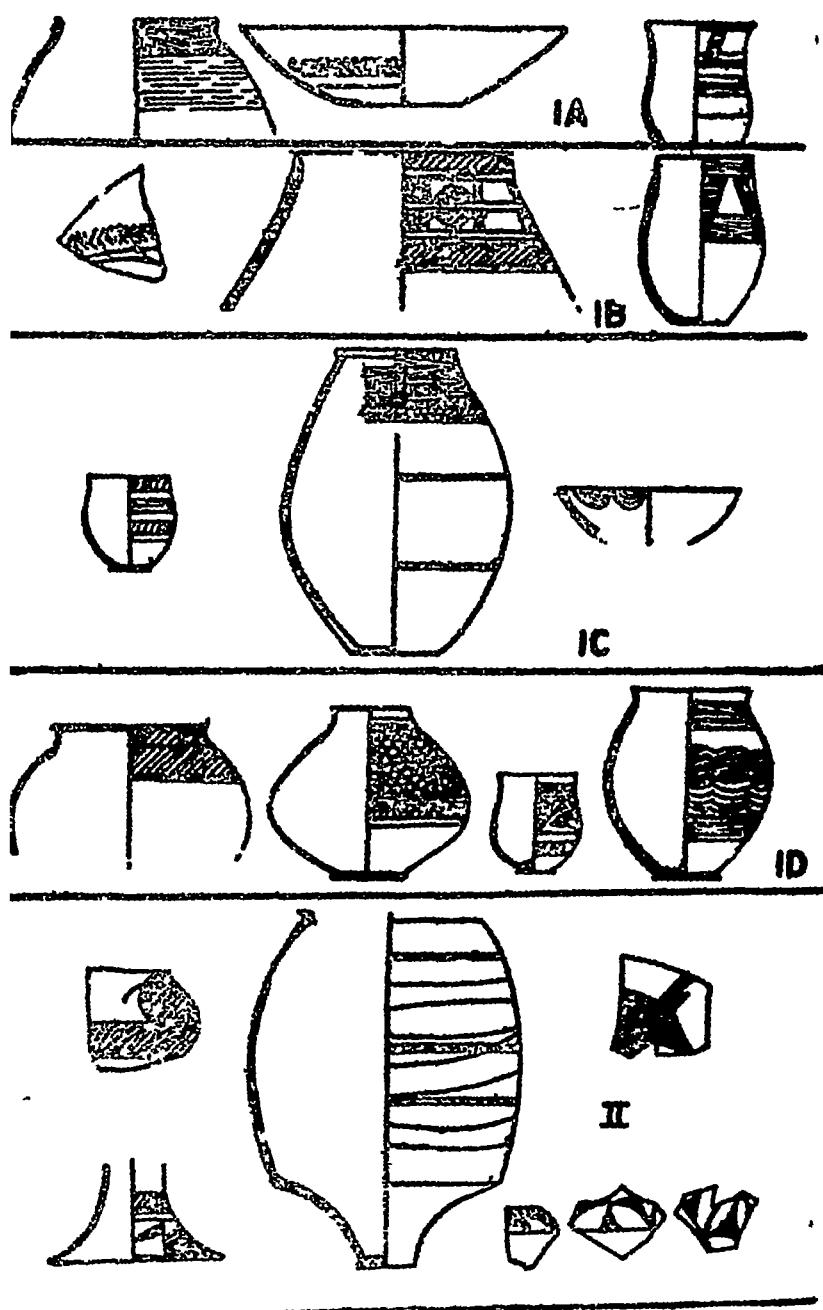
बने चाकू तथा तावे के टुकडे भी मिले हैं किन्तु कोई इमारत नही मिली। काल IB मे कच्ची ईंटो की इमारतें, भिन्न डिजाइन, सपीठ थालिया, हड्डी तथा चर्ट के उपकरण मिलते हैं। काल IC मे चार सरचनात्मक तल हैं। यह काल चरमोत्कर्ष का है। टीले मे सभवत श्रमिको के आवास थे। काल ID यद्यपि अल्पकालीन था फिर भी इस काल मे बलूचिस्तान और अफगानिस्तान से निरतर सबध रहे। अतवर्ती काल II मे दो प्रकाल हैं। डेल्स ने इस काल मे अफगानिस्तान (मु डीगाक IV) से वास्तु-परक तथा मृत्तिका-शिल्प सबध पाये हैं। इस काल के पहले भाग मे आम्री मृद्भाड लगातार मिलते हैं किन्तु कुछ हडप्पा मृद्भाड प्रकार भी आरभ होने लगे। काल IIIB मे परकोटे के अवशेष तथा मन्चो पर स्तंभो के लिए बने गढे भी देखे जा सकते हैं। इस काल का अत हिंसात्मक कारणो से हुआ प्रतीत होता है। काल III हडप्पा का है, काल IIIC मे मृद्भाडो के प्रकार तथा अलकरण मे नवीनता परिलक्षित होती है। काल IIID झूकर तथा काल IV झगड सस्कृति का है।

फेयरसर्विस के अनुसार ". ...पीपल के पत्ते, मिसा के पत्ते (Willow (Leaf); अतिव्यापी शल्क, रेखा-छाया त्रिकोण प्रतिरूप (पैटर्न), पट्ट मे बने मृग अथवा साकिन तथा आम्री नाल बहुरंगी शैली, आम्री-नाल तथा हडप्पा शैलियो के निकट सबधो की ओर इगित करते हैं।" घोष के अनुसार यह उत्पत्ति मूलक निकट सबधो के सकेत हैं। किन्तु कजाल ने इस बात पर जोर दिया है कि आम्री मे हडप्पा के तत्त्व पूर्णतया विकसित रूप मे ही प्राप्त हुए हैं और इसी कारण हडप्पा सस्कृति की उत्पत्ति आम्री-समिश्र से होने की सभावना नही है। हडप्पा सभ्यता धीरे-धीरे आम्री के ऊपर छा गयी। कजाल के अनुसार "हडप्पा के रूप आम्री मे अतर्वेधी हैं।"

बीकानेर क्षेत्र मे सरस्वती तथा दृषद्वती के अन्वेषण मे घोष को इतर हडप्पा ठीकरे मिले जो अब कालीबगन के काल I से तादात्म्य रखते हैं। घोष ने इस सस्कृति को सोथी सज्ञा दी यद्यपि यह अभी तक प्रचलित नही हो सकी है।

(ii) कोटदीजी

कोटदीजी से प्राग्हडप्पा काल (4 से 16 स्तर) एक मिश्रित तल IIIA काल तथा हडप्पा सस्कृति (IA से III) के अवशेष प्राप्त हुए हैं। कोटदीजी और हडप्पा सस्कृतियो का विभाजन एक भस्मसात स्तर द्वारा हुआ है। कोटदीजी सस्कृति की आरभिक अवस्था मे मुख्यत बिना गर्दन तथा बिना किनारे वाले

आकार के वर्तन भी मिलते हैं। वाद की अवस्थाओ मे वर्तनो मे गर्दन वनायी जाने लगी तथा काले और सफेद रगो के डिजाइन भी वनने लगे। आरभ की पट्टी, वहुल पाश (Multiple loops) तथा अनेक रेखाए ही वाद मे मत्स्य-शल्क डिजाइन मे विकसित हुई। खान के विचार मे हडप्पा शैली के मत्स्य-शल्क डिजाइनो का उद्‌भव कोटदीजी से हुआ। सामान्यत. कोटदीजी के मृद्‌भाड पतले और उत्कृष्ट हैं तथा अच्छी तरह घोटी गयी मिट्टी से चाक-निर्मित हैं। इनकी पृष्ठभूमि का रग गुलावी से लेकर लाल है। पट्टिया लाल भूरे, सीपिका और काले रग से दूधिया स्लिप के ऊपर वनायी गयी हैं। उत्तरकालीन स्तर में सपीठ थालिया आम हो गयी तथा तुलनात्मक दृष्टि से कोटदीजी मे यह अधिक नाजुक किस्म की हैं। वाद के प्रकालो मे ज्यामितिक डिजाइन का भी प्रयोग किया गया है। सीग वाले देवता के अतिरिक्त कही भी वनस्पति अथवा पशु डिजाइन प्रयुक्त नही किये गये।

घ. राजस्थान

राजस्थानी रेगिस्तान, सिंध, राजस्थान, पजाव व गुजरात के क्षेत्रो मे एक विस्तृत-भूभाग मे फैला है जिसे अरावली पहाडियाँ दो भागो मे विभाजित करती हैं। इसके उत्तर-पश्चिम मे थार रेगिस्तान है, और दक्षिण-पश्चिमी भाग मे पहाडियाँ और पठार हैं। उत्तर मे घग्गर और सरस्वती नदियाँ हैं, जो अव सूख गयी हैं। इस क्षेत्र मे पूर्व-हडप्पा व हडप्पा स्थल मिलते हैं, तो दक्षिण-पूर्व मे माही व बनास नदियो के क्षेत्र मे वनास सस्कृति के अवशेष मिलते हैं।

(1) कालीबगन

लाल और थापड ने घग्गर की घाटी में स्थित इस स्थल का उत्खनन किया। एक विस्तृत टीले से, कालीबंगन प्रथम काल की प्राग्हडप्पा कालीन, एक दुर्ग की दीवार मिली। प्रयुक्त कच्ची ईंटो का आकार 30×20×10 से० मी० है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राकृत तल (Natural soil) से 160 से० मी० औसत ऊँचाई वाले तल पर, यह बस्ती कुछ समय के लिए, सभवत भूकम्प के कारण, त्याग दी गयी थी। इस तल पर रेत की एक परत मिलती है। उपर्युक्त घटना हडप्पा संस्कृति की समकालिक होने से सभवत सैंधवो के आगमन के कारण शीघ्र ही यह वस्ती फिर बस गयी। तत्पश्चात् टीले का संरचनात्मक स्वरूप ही वदल गया। काल I से तांवे के केवलमात्र कुछ टुकडे ही मिले हैं। लाल से लेकर गुलावी रग के हलके, पतले मृद्‌भाड चाकनिर्मित

हैं। निष्प्रभ-सी सतह पर काले व सफेद मिश्रित रगो से अलकरण किया गया है। इन पर निम्नलिखित विविध प्रकार के डिजाइन बने थे यथा—जालीदार त्रिकोण, छन्नाकार शख, मूँछनुमा द्वि पट्ट, नतोदर किनारे वाले त्रिकोण, और हिरन, मार्किन, सॉंट, बिच्छू, बतख आदि का नैसर्गिक चित्रण, मृद्भाडो के कठ पर चौडे पटट, तितली, सैंधव शल्क, बुकरानियम के डिजाइन चित्रित हैं। मृद्भांडो की रचना और अलकरण की दृष्टि से, थापड ने इनको A से F वर्गों मे विभाजित किया है। C वर्ग के भाडो का सतही रूप क्वेटा आर्द्र भाड के अनुरूप है। उत्कीर्ण अलकरण और अपेक्षाकृत मजबूत मृद्भाड वर्ग D की विशेपताएँ है।

(ii) हडप्पा संस्कृति

हडप्पा सस्कृति के अवशेप एक विस्तृत भू-भाग मे मिलते हैं। कुछ विद्वानो के मतानुसार इस सस्कृति का फैलाव लगभग 8,40,000 वर्ग मील मे था। पूर्व से पश्चिम मे इसका विस्तार आलमगीरपुर मे सुत्कगनडोर व उत्तर-दक्षिण मे ढेरमाजरा से मलवन तक है, (आरेख 5)। यह विवादास्पद है कि इस संस्कृति का इतना विस्तृत फैलाव थोडे ही काल मे हुआ या, इसके व्यापन मे लबा समय लगा। इसकी विवेचना हम अध्याय 4 मे करेंगे। एक निश्चित पारिस्थितिकीय परिवेश मे हडप्पा सस्कृति का विकास, उसकी एकरूपता तथा दूसरी सस्कृतियो से भिन्नता की हम अध्याय 2 मे विवेचना कर चुके हैं।

व्हीलर के मतानुसार हडप्पा सस्कृति की निम्नलिखित विशिष्टताएँ है—

(i) सैंधव मोहरें, (ii) सैंधव लिपि, (iii) अतर्भेदी वृत्त डिजाइन, शल्क प्रतिरूप, पीपल का पत्ता, सैंधव शैली मे चित्रित मयूर, (iv) नुकीले आधार वाले चषकनुमा आकार (कुल्हड), बहुल छिद्रित बेलनाकार पात्र, S-पार्श्वक मर्तबान आदि (आरेख 6)। मोटे मजबूत लाल स्लिप वाले मृद्भाडो की सपीठ थालियाँ (ये हडप्पा सस्कृति से बाहर भी मिलती हैं), (v) पकी मिट्टी के त्रिकोण, केक (vi) काचली मिट्टी और शख के जटिल वृक्क (Kidney) आकार, (vii) नलाकार छिद्रवाले चक्रिक मनके।

अन्य विशिष्टताओ में हम निम्नलिखित धातु के उपकरणो को गिना सकते हैं उस्तरा चाकू, मुडे सिरे के पत्राकार फलक, चौडे सिरे की छेनी, काटेदार बाणाग्र, (मछलीमार काटे आदि)। तुलादड भी हडप्पा की अभूतपूर्व देन है।

आरेख 5

हड़प्पा संस्कृति के स्थल

आरेख 6—हड़प्पा संस्कृति के मृद्भांड
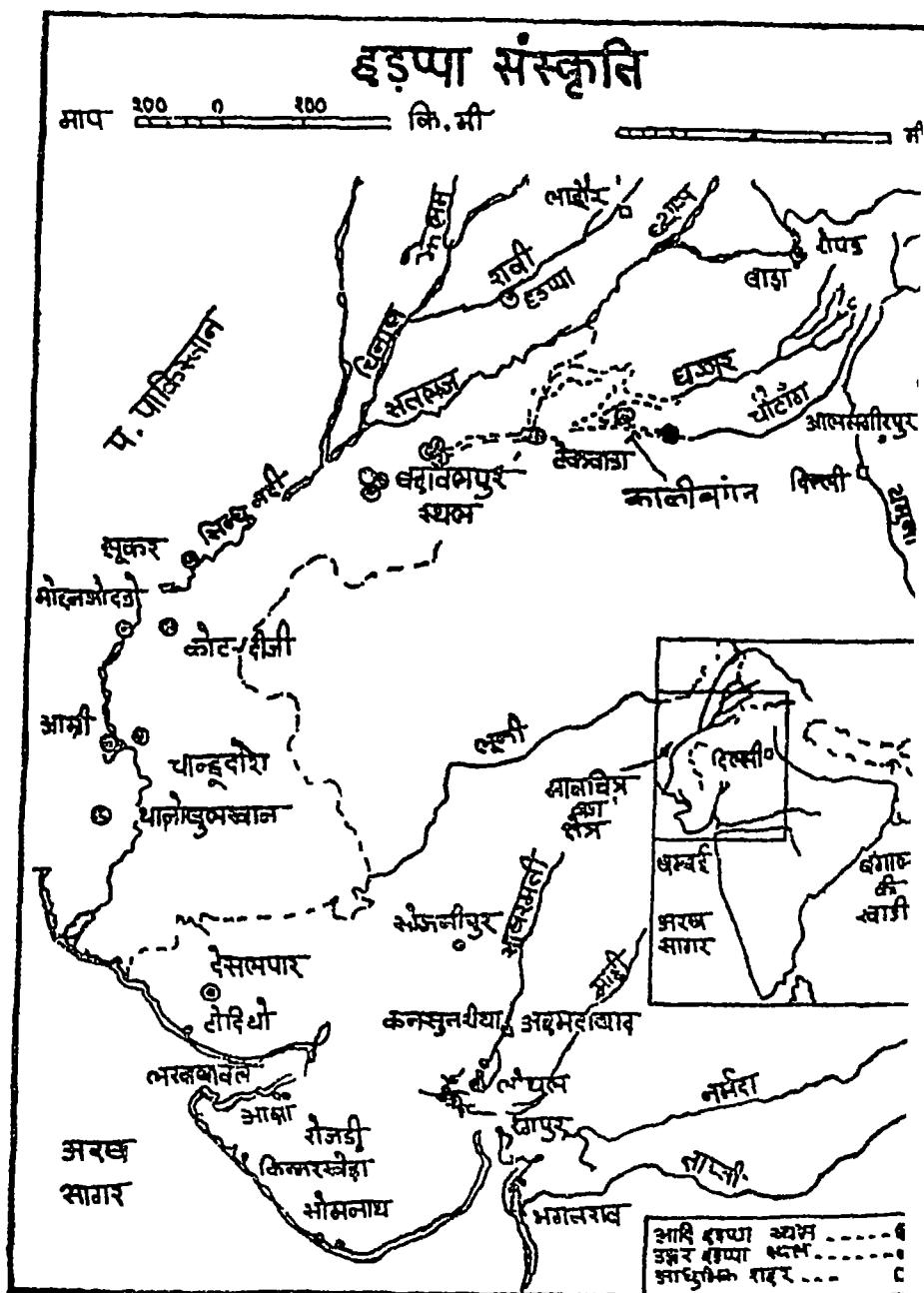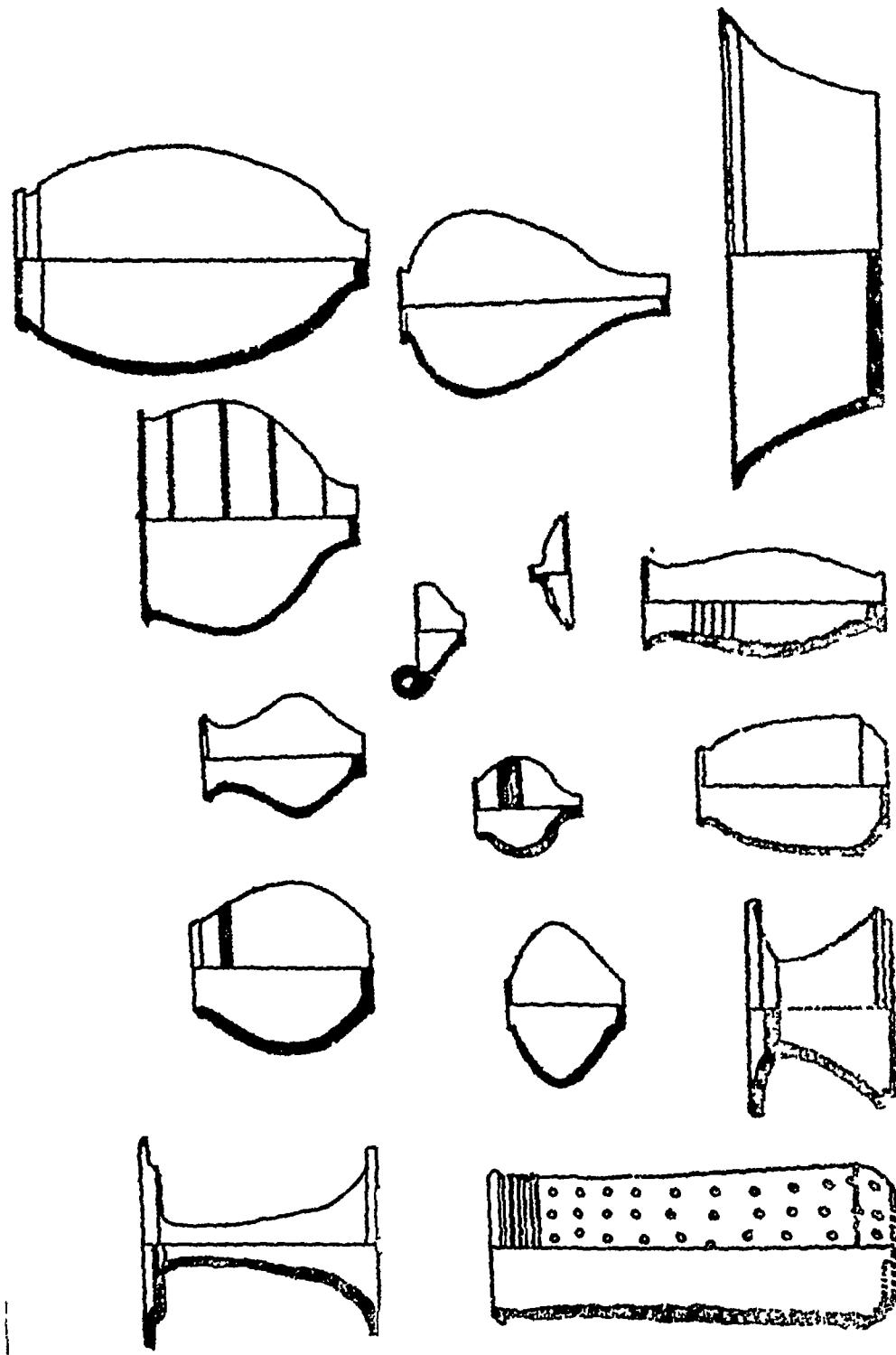
इनके अतिरिक्त सडको और मकानो की ऐसी योजनाबद्ध सरचना किसी दूसरी समकालीन सस्कृति मे नही मिलती ।

सभी हडप्पा स्थलो की उपर्युक्त विशिष्ट विशेषताएँ है । अत हडप्पा सस्कृति के मुख्य स्थलो की समान विशेषताओ के बजाय हम उनकी विभिन्नताओ पर प्रकाश डालेंगे ।

क—पजाब, सिंध और दोआब

(1) हडप्पा

पाकिस्तान मे माटगुमरी जिले के हडप्पा स्थल का विस्तृत उत्खनन किया गया है । इस स्थल के नाम पर ही हडप्पा सस्कृति का नामकरण हुआ । बहुत बडी सख्या मे हडप्पा की ईंटो की लूटपाट के कारण, बारह सालो के उत्खननों के परिणाम विशेष उत्साहवर्धक नहीं रहे । दुर्ग के AB टीले के परकोटे से नीचे के तल के 20″ गहरे निक्षेप से राना घुडई IIIC प्रकार के ठीकरे उपलब्ध हुए । दुर्ग 460 × 215 गज समानातर चतुर्भुज आकार का है । भीतरी इमारत, भूमितल से 20′ से 25′ ऊपर, कच्ची मिट्टी की ईंटो पर निर्मित हैं । इसके चारो ओर से रक्षात्मक किलेबदी की गयी है । कालातर मे बुर्ज व पुश्ते भी जोडे गये । उत्तर-पश्चिम मे प्रवेश द्वार बने हुए लगते हैं । चबूतरो पर निर्मित आवासी इमारतो की योजना बहुत स्पष्ट नही लगती । F टीले से दो पक्तियो मे बने श्रमिको के आवास मिले । पक्की ईंटो के बने 17 गेहूँ कूटने के चबूतरे, जले गेहूँ के अवशेषो के साथ मिले । सबसे महत्वपूर्ण भवन दो खड वाला अन्नागार है । यह 23′ चौडे मार्ग के दोनो ओर बना है । प्रत्येक खड (50′ × 20′) मे छह कक्ष थे जिनमे वायु परिवहन के लिए अनेक नलिकाएँ बनी थी । इसी प्रकार के अन्नागारो का वर्णन मेसोपोटामिया के प्राचीन साहित्य मे मिलता है, यद्यपि इसकी पुष्टि अभी तक पुरातात्त्विक प्रमाणो से नही हुई है । व्हीलर के मतानुसार इन दो सैंधव अन्नागारो के विशिष्ट परिरूप व वास्तुकला की तुलना मे प्राचीन ससार मे कोई अन्नागार नही मिलता । दुर्ग के अदर स्थित सपूर्ण अन्नागार श्रमिक आवास तथा सम्बन्धित इमारतें आदि शासन-तत्र से इनकी महत्वपूर्ण स्थिति का ज्ञान कराते हैं ।

यह समझा जाता है कि R 37 कब्रगाह उत्तरकालीन हडप्पा के साधारण नागरिको की है । विस्तारित शवाधानो के साथ बरतन आदि भी मिलते हैं । शवो का सिर उत्तर की ओर हैं । इनमे दो शवाधान उल्लेखनीय हैं । पहले

शवाधान के गडे के चारो ओर कच्ची ईंटो की चिनाई है । दूसरे शवाधान से प्राप्त शव-पेटी, मेसोपोटामिया के दाह-संस्कार रीति का स्मरण कराती है । G क्षेत्र से कुछ लबी हड्डियों के साथ पूर्ण व खडित खोपडियों का ढेर मिला । इनके महत्व के विषय मे कुछ निश्चित रूप से नही कहा जा सकता ।

(ii) मोहनजोदडो

हडप्पा की तरह मोहनजोदडो भी एक कृत्रिम टीले पर बना है । यहाँ भी एक दुर्ग व एक निचला शहर मिला है । 1950 के गहरे उत्खनन से प्राप्त सामग्री मे कही भी सास्कृतिक व्यतिक्रम नही है । दुर्ग का चबूतरा 43′ चौडे कच्ची ईंटो के बाध से सुदृढ़ किया गया है । चबूतरे के तल के साथ एक पक्की ईंटो की बडी नाली बनायी गयी थी । उपर्युक्त तथ्यो से स्पष्ट होता है कि प्रारभ से ही बाढ नगरनिवासियों के लिए एक समस्या रही । सपूर्ण परिधि मे बुर्जियो से दुर्ग को सुरक्षित किया गया था। हडप्पा की अपेक्षा यहाँ की प्रतिरक्षा व्यवस्था अधिक जटिल है ।

1950 के उत्खनन से (विशाल स्नानागार से पूर्व निर्मित) एक विशाल अन्नागार 150′×75′ के आकार का मिला । यह समझा जाता है कि अन्नागार से उत्तर पश्चिम मे स्थित एक नयी विशाल इमारत (230′×78′) प्रधान पुरोहित की रही होगी ।

अन्नागार, विशाल स्नानागार, परिषद भवन, सभा भवन, दुर्ग की बाह्य किलेबदी, दुर्ग आदि विभिन्न आकारो की सरचनाएँ, सिंधु सभ्यता के धार्मिक व लौकिक प्रशासन के समिश्र रूप का आभास देती है ।

शहर की किलेबदी के भी अवशेष मिले है । मुख्य मार्गों का जाल, शहर को भवनो के छह या सात खडो मे विभाजित करता है । मकानो के दरवाजे मुख्य मार्ग की अपेक्षा गलियो में खुलते थे । मकानो मे प्राय एक आँगन, कुआँ, स्नानागार और शौच गृह होता था । पानी के निकास के लिए नालियाँ बनी थी । सभवत मकान दुमजिले होते थे । प्राप्त अवशेषो के आधार पर यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि दुर्ग शहर के ठीक मध्य मे बना था । यह समझा जाता है कि DK क्षेत्र से प्राप्त 250′ लबी इमारत किसी महल की होगी । फानाकार ईंटो से निर्मित मिट्टी से पुते हुए वृत्ताकार गर्तों मे धातुकर्मीय मल के से अवशेष मिले हैं । परतु निश्चित रूप से यह कहना कठिन है कि इन गर्त्तों का क्या प्रयोग था । VR क्षेत्र मे एक विशाल, (87′×64 5′) साफ-सुथरे फर्श वाली इमारत मिली है । इसके एक कमरे

मे पच-मुखी गर्त बने हैं। अत. यह अनुमान किया जाता है कि यह शायद जलपानगृह रहा होगा। HR क्षेत्र मे (तथाकथित A_1) भवन की एक महत्त्वपूर्ण इमारत मिली है, जिसकी दीवारें 52′×40′ हैं और 4′ मोटी हैं। इसके पास ही एक दाढ़ी वाले आदमी की बैठी हुई मूर्ति मिली है, जो काफी प्रसिद्ध है। व्हीलर के विचार मे यह एक मदिर रहा होगा। इस महत्त्वपूर्ण क्षेत्र का उत्खनन पुन किया जाना चाहिए।

यद्यपि मार्ग कच्चे थे, पर नालियाँ पक्की ईंटो की बनी थी। पर कुछ अन्तर पर बने मानुषमोखे (Manholes) सभवत. म्युनिसिपल कर्मचारियो के द्वारा सफाई करने के लिए बनाये गये थे। दुर्ग आदि के निर्माण में, बाढ़ से बचाव के लिए कई सावधानियाँ बरती गयी थीं। DK क्षेत्र में कम से कम तीन भीषण बाढ़ों ने अपने अवशेष छोड़े हैं। उत्तर कालीन चरणों में ह्रास के बहुत बड़े प्रमाण उपलब्ध होते हैं।

मोहनजोदड़ो मे नियमित शवाधान नहीं मिलते, फिर भी अस्थि-कलश के साथ कोयला और राख व फुटकर शवाधान सामग्री प्राप्त हुई है। कालीबगन के निचले स्तरो मे भी अस्थि-कलश सभवत अंत्येष्टि सस्कार मे उपयोग किये जाते थे। लेकिन मोहनजोदड़ो के विपरीत यहाँ शवाधान कब्रगाह क्षेत्र मे मिलते है।

ताम्र व कासे के भाले, चाकू, छोटी तलवारें, बाणाग्र, कुल्हाडी, उस्तरे, पात्र और तवा आदि उपकरण प्रचलित थे। जूते के पर्मे के प्रकार की कुल्हाडियो का प्रयोग किया जाता था। सीमित रूप में इनका तथा बहुत प्रकार के चर्ट फलको का उपयोग कृषि-कार्य के लिए भी शायद होता था। पत्थर के वर्मे व गदा-सिर आदि शिल्प उपकरण भी प्रचलित थे।

मोहनजोदडो से उपलब्ध एक मोहर व ठीकरे पर रेखांकित एक विशेष प्रकार के जहाज के चित्र से प्रतीत होता है कि पोत-परिवहन होता था। संभवत ऊट, गधे व घोडे भी यातायात के साधन थे। बैलगाडी के प्रयोग का आभास हमे ठोस पहियो वाली गाडी के एक खिलौनो से होता है। इसकी पुष्टि चांहुदडो से प्राप्त चार पहियो की गाडी से होती है। सैंधवो के हाथी को पालतू बनाने के विषय मे अटकलें ही लगायी जा सकती हैं। कूबडदार चौपाये, सुअर, (?) कुत्ता और बिल्ली अन्य पालतू जानवर थे।

रुपये के परपरागत 16 1 अनुपात की तरह ही छोटे तौल भार द्विकर्मी अनुपात (1,2,1/3×8,8,16,32 से 12800) और उच्च तौल भार दशमलव अनुपात मे थे, भिन्नात्मक तौल 1/3 थी। सभवत उनका फुट

13 2″ का दशमलव विभाजन वाला था। 0.367″ प्रमाण वाली एक कास्य छड़ फ्यूबिट पद्धति का प्रचलन इंगित करती है।

विशेष (Triticum compactum और Triticum sphaero coccum) किस्म के गेहू और जौ (Hordeum vulgare) के अवशेष मिले हैं। आटा पीसने के लिए सिल-बट्टा (Saddle quern) प्रयुक्त होता था। जले हुए मटर, खरबूजे के बीज, तिल और खजूर की गुठलिया भी मिली हैं। सूती कपडे और सन के रेशे से निर्मित वस्तुएँ भी प्रचलित थी।

(iii) कोटदीजी

खान के मतानुसार कोटदीजी मे एक आदि हडप्पा स्तर मिला है, जिससे चित्रित मृद्भाड सामान्यत नही मिलते। इस स्तर के मृद्भांडो मे मोर, मृग, मत्स्य-शल्क और जुडी हुई गेंदो आदि का अपरिष्कृत चित्रण हुआ है। मृद्भांडो की लाल स्लिप कच्ची है। कोटदीजी के विस्तृत हडप्पा स्तर से कास्य (?) की चपटी कुल्हाडी फलक, बाणाग्र, छेनी, अगूठी, दोहरी व इकहरी चूडियाँ आदि मिली हैं।

(iv) रोपड

यह हडप्पा सस्कृति का उत्तरी सीमा का स्थल है जो कि सतलज क्षेत्र मे मैदानी क्षेत्र में शिवालिक पहाडियो के चरणो मे बसा है। इमारतो के अवशेषो मे नदी के रोडे, ककड और पकायी हुई व कच्ची ईंटो का प्रयोग किया गया है। मृद्भाडो मे विविधता मिलती है। कुल्हड बहुत कम सख्या मे मिले हैं, ऊपरी सतहो मे तो मिलते ही नही। कब्रगाह आवास क्षेत्र से 160′ दूर है। यह कालातर मे गढ्ढो द्वारा बहुत क्षतिग्रस्त हो गया था। विस्तारित शवाधान वाली कब्रें लगभग 8′ × 3′ × 2′ आकार की हैं। इन कब्रो मे सिर उत्तर पश्चिम दिशा मे रखा गया था। अधिकाश शवाधानो के साथ मृद्भाड (2 से 26 तक) मिलते हैं। लेकिन एक उदाहरण ऐसा मिला है जिसमे पहले मृद्भांडो को क्रमवार रख कर मिट्टी से ढका गया। तत्पश्चात् शव रखा गया सभवत व्यक्ति के पदानुसार ही मृद्भाड शवाधान के साथ रखे जाते थे। इस स्थल से मातृ देवी की कोई भी मूर्ति नही मिली, लेकिन पीठ पर बिना उभार वाली, एक सेलखडी की मोहर उपलब्ध हुई है।

(v) आलमगीरपुर

मेरठ जिले मे, यमुना नदी की सहायक नदी हिंडन के तट पर स्थित,

आलमगीरपुर हड़प्पा सस्कृति का पूर्वी स्थल है। चकले, रीछ और साप की मृण्मूर्तिया प्रमुख उपलब्धियाँ हैं।

ख—राजस्थान

(1) कालीबगन

कालीबगन सूखी हुई घग्गर नदी के तट पर स्थित एक प्रसिद्ध हड़प्पा स्थल है। लाल और थापड ने इसका उत्खनन किया और इसके दो टीलो से प्राग्हड़प्पा व हड़प्पा सस्कृतियो के अवशेष खोज निकाले। प्राग्हड़प्पा स्तर की ही दीवारो को सैधवो ने किलेबदी के लिए ऊँचा उठाकर उनमे ही उत्तर और दक्षिण भाग मे बहिर्गत दीवारें, बुर्ज व प्रवेश द्वार बनाये। दुर्ग के अतर्गत हड़प्पा के विपरीत, किसी भी स्थान पर परकोटा किसी भी मच के साथ बद्ध नही है। रास्तो व आम भागो की चौडाई 1 8 और 7 2 मीटर के बीच थी। ये सडके 1 8 मी की इकाई की नाप से बनी हैं। यह इकाई न बडे फुट (13 2″) न कुबिट (120 6″) के अनुरूप है इसलिए महत्वपूर्ण है, सडको पर नालियाँ न होने के कारण पानी ने सडको को काट दिया था।

दीर्घकाय व साडो की जुडवा पैरो वाली विशिष्ट प्रकार की मृण्मूर्तियाँ मिली हैं। मृण्मूर्तियो के नर सिरो व और आक्रामक साड का मोहनजोदडो के नमूनो से बहुत साम्य है।

विभिन्न स्तरो के मकानो का एक उल्लेखनीय लक्षण यह है कि उनके अग्निकुड अडाकार या आयताकार हैं। इनका महत्व क्या था, यह अभी तक अज्ञात है। इनके बनाने की विधि निम्न थी। सर्वप्रथम एक उथला गर्त खोदा गया जो आकार मे अडाकार या आयताकार था। इस गर्त मे आग जलायी जाती थी और मध्य मे मिट्टी का एक बेलनाकार या आयताकार (धूप मे सुखाया हुआ या पकाया हुआ) मूसल सा जमाया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि पकी मिट्टी के केक धार्मिक कृत्यो के लिए प्रयुक्त होते थे। प्रत्येक मकान मे अग्निकुड बने हुए थे जो कि लोथल के अग्नि-कुडो का स्मरण दिलाते हैं। दोनो ही टीलो मे प्राग्हड़प्पा व हड़प्पा मृद्भाड साथ-साथ मिलते हैं। प्राप्त सामग्री मे बेलनाकार मोहर उल्लेखनीय है।

शवाधान तीन प्रकार से किया जाता था। (i) विस्तारित शवाधानो के साथ अत्येष्टि पात्र रखे जाते थे, (ii) वृत्ताकार गर्त शवाधान मे बिना अस्थि अवशेषो के, अस्थि पात्र व अन्य लघु पात्र रखे जाते थे, (iii) आयताकार गर्त

के साथ, बिना अस्थि अवशेषों के अत्येष्टि पात्र रखे जाते थे। अंतिम प्रकार के शवाधान से प्रतीत होता है कि पात्रो को गर्त मे रखने व उन्हे अंतिम रूप से भरने में समय लगा होगा। 70 पात्रो वाली पक्की ईंटो से चिनी कब्र सभवत किसी धनाढ्य व्यक्ति की रही होगी। इस कब्र मे लिटाये गये अस्थि-पंजर का सिर उत्तर की ओर रखा गया था। शवाधानो के इस वर्गीकरण का आधार ज्ञात नहीं हो सका है। एक स्थान पर एक पात्र—शवाधान के गर्त ने एक आयताकार कब्र को काटा है।

घरेलू कचरा व जानवरो के अवशेष फर्श मे पड़े मिले है। इनमे भैंस, हाथी, ऊँट, बकरी, गधा, चीतल, मुर्गा, कछुआ, गैंडा तथा बड़ी सख्या मे सीपो के अवशेष उल्लेखनीय हैं। सड़को पर कूड़े व पशुओ के अवशेष बिखरे पड़े मिले। सड़को पर नालियाँ खुलती थी। कालीबगन की सड़को पर जल निकास व्यवस्था की अनुपस्थिति, वहाँ के नागरिक-मानो के ह्रास की द्योतक है।

कालीबगन के प्राग्हड़प्पा व हड़प्पा सांस्कृतिक स्तरो से प्राप्त समान डिजाइन निम्नलिखित हैं . मत्स्य शल्क, पीपल का पत्ता, रेखांकित चिह्न सहित रस्सी के निशान, सपीठ थालियो का आकार, ढक्कन, बैल और छकड़ा गाड़ी, सीप और पकी मिट्टी की चूड़ियाँ, सेलखड़ी के चक्रिक मनके, चकमक का पत्थर, धातुशोधन का ज्ञान, चिनाई मे इंगलिश बॉड (English bond) का प्रयोग और नगर की किलेबंदी। इसके विपरीत ईंटो के आकार मे, काल I मे मोहरो का अभाव, भांडो के प्रकार, मकानो का दिशा-निर्धारण, व फलक के आकार व सामग्री में असमानताएँ हैं।

लेखन कला सभ्य समाज का विशेषक है। हड़प्पा सस्कृति के नागरीकरण के फलस्वरूप ही इसका आविर्भाव हुआ। अन्य स्थलो के समान ही, कालीबगन मे भी हड़प्पा सस्कृति, कई नवीनताओ के साथ प्रकट हुई। ऐसा प्रतीत नही होता कि यहाँ पर इसका विकास धीरे-धीरे प्राग्हड़प्पा सस्कृति से हुआ हो।

अब तक प्राप्त सक्षिप्त प्रकाशनो के आधार पर यहाँ के ताम्र-कास्य उद्योगों का विस्तृत विवरण नहीं दिया जा सकता।

(ग) सौराष्ट्र

(1) लोथल

सौराष्ट्र प्रायद्वीप के इस सैंधव सस्कृति के शहर का उत्खनन राव ने किया। यह स्थल एक दलदली निचली भूमि मे, जो मूलत. भोगावो और साबरमती नदियो का सगमस्थल रहा होगा, स्थित है। नदियो के मुहाने के सान्निध्य

के कारण इसकी बरबादी होती रही और अंततोगत्वा नदियो ने ही इसका संपूर्ण अंत कर दिया। सकालिया के मतानुसार लोथल अपने स्वर्णकाल में समुद्र के बहुत निकट बसा था। इसके काल I से प्रौढ़ हडप्पा व काल II से उत्तर हडप्पा सस्कृति के अवशेष मिलते हैं। काला और लाल भांड-काल I से ही मिलता है।

शहर छह खंडो मे विभाजित था। प्रत्येक खड कच्ची ईंटो के एक विस्तृत चबूतरे पर बना था जो कि एक दूसरे से 12′ से 20′ चौडे मार्ग से जुडे हुए थे। कुछ मकानो मे बरामदे थे तो कुछ मे केवल प्रागण। एक विशाल भवन मे विस्तृत जल-निकास की व्यवस्था थी, व इसकी अलग से दीवार थी। यहाँ पर एक बहुत बडी पक्की ईंटो की इमारत के अवशेष मिले हैं, जिसका आयाम है 710′ × 124′। ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक नौका घाट रहा होगा। पकी मिट्टी के केक, गेंद और जली मिट्टी के साथ, 4′ × 4′ आकार की कुछ सरचनाएँ मिली हैं। कभी कभी इनके साथ एक बडा चित्रित मर्तबान (जार) भी रखा होता था। ये सब उनके धार्मिक कृत्यो का आभास देते हैं। दोनो ओर धुएँ की कालिख से पुती एक चम्मच का मिलना इस सिलसिले मे महत्वपूर्ण प्रमाण हैं। एक कच्ची ईंटो की इमारत के अवशेष मिले हैं, जिसमें 12 खंड हैं और प्रत्येक खड 12′ वर्ग का है, 3½′ चौडी वायु-नलियो द्वारा विभाजित हैं। व्हीलर के विचार से सभवत ये चबूतरे (मोहनजोदडो की तरह) अन्नागार के आधार थे। अन्नागार लकडी का होने के कारण शायद जल गया था। मुडी हुई और जली हुई मिट्टी की मोहरें, रखे हुए गट्ठरो से टूट कर नीचे नालियो मे गिर गयी थी।

राव को लोथल की सतही सामग्री से एक सेलखडी की मोहर मिली है, जिसका पृष्ठ भाग उभरा हुआ है और अग्र भाग मे एक युगल कलपुछ (Gazelle) अकित है। इसकी तुलना कुवैत के निकट फैलका, बारबारा और रास-अलकला की मोहरो से की जा सकती है, जो कि "फारस की खाड़ी की मोहरें" नाम से प्रसिद्ध हैं। ये मोहरें गोल हैं और इस तरह मोहनजोदडो की चौकोर और मेसोपोटामिया की बेलनाकार मोहरों से भिन्न हैं। इसी प्रकार की 17 मोहरें मेसोपोटामिया से मिली हैं। उनमें से बहुतों में सिंधु लिपि भी अंकित है। स्पष्टत ये मोहरें सिंधु सभ्यता के इस क्षेत्र व मेसोपोटामिया के बीच व्यापार करने वाले बहरीन के व्यापारियो के हाथ यहाँ पहुँचीं।

सिंधु सभ्यता और मेसोपोटामिया के संपर्क के विषय में हम आगे अध्याय 4 मे लिखेंगे। मध्य एशिया मे तुकमानिया के हाल के उत्खनन से प्राप्त तथ्यो से

स्पष्ट होता है कि नमाज्गे काल V व VI का सपर्क हड़प्पा से था। अल्टीन डेपे के उत्खनन से प्राप्त मृद्भाडो के आकार, मनके, धातु उपकरण, चर्ट फलक, मृण्मूर्तियाँ और मोहरो मे अकित पशु-चित्र भी, हड़प्पा से सादृश्य दर्शाते हैं। अधिकाँशत यह सबध लगभग 2000 ई० पूर्व रहा होगा। उपर्युक्त प्रमाणो से स्पष्ट होता है कि हड़प्पा का पश्चिमी व मध्य एशिया के शहरो से स्थल मार्गों द्वारा भी सबध था।

180°, 90°, 45° कोणो को नापने के लिए एक सीप का उपकरण प्राप्त हुआ है। 1 7 मि० मी० के भागो मे विभाजित हाथी दाँत का पैमाना और साहुल गोलक (Plumb bobs) भी मिले हैं। ताम्र कास्य उपकरणो मे एक दर्पण, सुई, मत्स्य काटा, छेनी, वरमा, उत्कृष्ट आरी के टुकडे आदि मिले हैं। छकडा गाडी, नाव व घोडो के प्रयोग के प्रमाण मृण्मूर्तियो मे बने उनके प्रतिरूपो से मिलते हैं।

(ii) सुरकोटडा

सुरकोटडा जिला कच्छ मे स्थित एक स्थल है। यहाँ पर एक बहुत बडा टीला था जिसका जगतपति जोशी ने उत्खनन किया है। इसमे प्रकाल I का एक दुर्ग बना मिला जिसका परकोटा कच्ची ईंटो और मिट्टी के लोंदो का बना था। परकोटे के बाहर से एक अनगढ़ पत्थरो की दीवार थी। इस प्रकाल के मुख्य मृद्माण्ड सैंधव प्रकार के हैं। इसके अतिरिक्त कुछ बहुरगी, दूधिये स्लिप वाले मृद्भाड भी मिलते हैं। शवाधान अस्थि-कलश प्रकार के थे। एक कब्र बडी चट्टान से ढकी मिली है। यह कब्र सैंधव सस्कृति में अभूतपूर्व है। प्रकाल IB मे सैंधव मृद्भाडो का प्रचलन चलता रहा, पर एक प्रकार का नया लाल भाड सभवत नये तत्वो के आगमन का सूचक है। इस प्रकाल IB का अंत एक सर्वव्यापी अग्निकाड से होता है। सैंधव तत्व I C मे भी निरतर बनाये रखते हैं, परन्तु इस प्रकाल मे विशेष भांड काले-लाल प्रकार के हैं। नुकीले पेंदे वाले सैंधव कुल्हड़ भी अधिक मिलने लगते हैं। इस स्थल से घोडे की हड्डियों का मिलना महत्वपूर्ण है।

उपर्युक्त सक्षिप्त सर्वेक्षण के पश्चात् हम अब संबधित प्रश्नो व समस्याओं का विश्लेषण करेंगे।

(घ) समस्याएँ और विवेचना

डेल्स ने उत्तर-पश्चिम भारतवर्ष से प्राप्त संचय सामग्री को विभिन्न वर्गों (A से F) मे बाँटा है। इन अपर्याप्त प्रमाणो के आधार पर कोई स्पष्ट चित्र

नही उभरता । लेकिन इस युग मे सारे क्षेत्र को (मुडीगाक, कोटदीजी आदि) ग्राम जीवन से नागरीकरण की ओर विकसित होते हुए देखते हैं । मुडीगाक काल IV से दुर्ग व मन्दिर के अवशेष मिलते हैं । मृद्भाडो (मुडीगाक IV और दम्बसदात काल II) पर कुम्हार के विशिष्ट अकित चिह्न लेखन शैली के प्रारंभ का आभास देते हैं । अचानक ही क्वेटा संस्कृति के स्थलो, नाल के उत्तर-श्मशानगाह स्तर, आम्री के मध्यवर्ती काल, कोटदीजी के प्राग्हडप्पा स्तर आदि मे प्राप्त मृद्भाडो पर कुबडे साड का बहुल चित्रण उनके कृषि, यातायात व आर्थिक जीवन मे पशु-शक्ति के महत्व के आभास को दर्शाता है । अफगानिस्तान से सिंध तक बहुरगी मृद्भाडो की परम्परा (डेल्स का D काल) का स्थान लाल-पर-काले भाडो की परपरा ने ले लिया । ताम्र की मोहरें, धातु के आपेक्षिक अधिक चलन को इगित करती है । इसी काल में दक्षिणी बलूचिस्तान, फारस की खाडी पर स्थित उम्मन नार आदि स्थल और मेसोपोटामिया के बहुत से स्थलो से उत्कीर्ण प्रस्तर धूसर भाड के पात्र मिलते हैं । यह तथ्य इन स्थलो के बढते हुए आपसी सपर्क व व्यापार के सूचक हैं । इन सब प्रमाणो से लगता है कि इस काल मे यह सारा क्षेत्र नागरीकरण के प्रवेश द्वार पर खडा था ।

उपर्युक्त सर्वेक्षण मे स्पष्ट है कि उच्च प्रदेश के वासी बहुरगी परपरा के साथ पशु-पालन व कृषि-कर्म करते हुए भी काफी हद तक यायावर जीवन व्यतीत करते थे जबकि गिरिपाद व सिंधु के मैदानी क्षेत्र मे (आम्री) आये हुए लोग द्विरगी परपरा के साथ स्थायी कृषि-जीवन व्यतीत करने लगे थे और नागरीकरण की प्रक्रिया मे अपना योगदान देने लगे थे । स्पष्ट है कि पारिस्थितिकी नयी चुनौतियो के साथ नागरीकरण के द्वार खोलने मे सहायता दे रही थी (देखें अध्याय 2) । घोष के मतानुसार "सोथी मृद्भाडो की तुलना कुछ मानो मे न केवल झोब (पेरियानो घुडई) भाडों से बल्कि क्वेटा, केन्द्रीय बलूचिस्तान और हडप्पा तथा मोहनजोदडो के प्रारभिक स्तरो से तथा सरस्वती के लगभग सभी हडप्पा स्थलो के मृद्भाडों से की जा सकती है । वे न केवल हडप्पा सस्कृति के सरस्वती क्षेत्र मे बल्कि हडप्पा और मोहनजोदडो के भाडो में भी विशिष्टताएँ निरतर पाते हैं । कालीबगन और सभवत कोटदीजी मे भी हडप्पा तथा सोथी लोगो का सह-अस्तित्व केवल आकस्मिक कह कर नही टाला जा सकता । प्रत्युत, सोथी का हडप्पा सस्कृति के उद्भव मे योगदान रहा होगा । स्पष्ट है कि अन्य प्रारभिक सस्कृतियो की अपेक्षा हडप्पा के उद्भव में सोथी सस्कृति एक दृढ़ आधार रही होगी । इसीलिए सोथी को आदि

हड़प्पा सैंधव कहना ही उचित होगा।" कालीबगन में सैंधव अवशेषों का वर्णन करते हुए हमने उन विशिष्टताओं का विवरण दिया था जिनका उद्भव प्राग्हड़प्पा संस्कृति से हुआ था।

इसके विपरीत डेल्स का मत है कि यद्यपि सैंधव (हड़प्पा) कहे जाने वाले तत्व अफगानिस्तान से लेकर सिंधु तक के स्थलों में मिलते हैं फिर भी आम्री और कोटदीजी के उत्खनन से प्रतीत होता है कि वहाँ प्रौढ़ हड़प्पा संस्कृति बहुत पहले बसी पूर्व-हड़प्पा बस्तियों पर थोपी गयी थी। खान के कथनानुसार मुश्किल से ही मृद्भांडों का कोई आकार या डिजाइन हड़प्पा और कोटदीजी में एक सा होगा। इसीलिए घोष ने प्रश्न किया है कि प्रौढ़ हड़प्पा कौन सी संस्कृति थी और उसे प्रौढ़ता कहाँ से मिली?

ग्रामों के नागरीकरण की प्रक्रिया में होने वाले दूरगामी परिवर्तनों के आधार पर सिन्हा ने हड़प्पा संस्कृति के आकस्मिक आविष्कारों व नवीनताओं की उत्पत्ति की व्याख्या की है। मृद्भांड शैलियों में परिवर्तन, धातु-कर्म की अत्यधिक वृद्धि, वास्तु कला के नये मान और नयी सामग्री का उपयोग कला तथा शिल्प में विविधता अपेक्षित कर रहा होगा। साथ ही कला और शिल्प का मानकीकरण (Standardization) भी सैंधव नागरिक जीवन का नैसर्गिक अंग था।

सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से इस काल की वस्तुस्थिति का सिंहावलोकन करने पर प्रतीत होता है कि धातुकर्म के विकास, कृषि-सुधार, पशु-पालन व वायु शक्ति के उपयोग से सुख सपन्नता में वृद्धि हुई होगी। दूसरी ओर, इससे सांस्कृतिक समरूपता भी आयी। फलस्वरूप अफगानिस्तान से सिंधु तक का सारा क्षेत्र नागरीकरण की दहलीज पर आ खड़ा हुआ, लेकिन नागरीकरण केवल सिंधु में ही क्यों हुआ? इसका विवेचन बाद में करेंगे।

उपर्युक्त सर्वेक्षण से निम्नलिखित समस्याएँ उभरती हैं—

(1) हड़प्पा संस्कृति में ताम्र की क्या भूमिका रही?

(2) प्राग्हड़प्पा की तुलना में हड़प्पा काल में ताम्र का बाहुल्य कितना था?

(3) धातु की अधिकता का क्या कारण था?

(4) पारिस्थितिकीय कारणों का क्या योगदान था? शहरों का उद्भव पहाड़ों की अपेक्षा मैदानी क्षेत्र में क्यों हुआ?

(5) चर्ट उपकरणों का सैंधव अर्थव्यवस्था में क्या महत्व था?

(6) हम कैसे हड़प्पा की एकरस संस्कृति के विपरीत पाक-ईरानी सीमा प्रदेश की विविध सस्कृतियो की व्याख्या करते हैं ?

(7) उत्तर-पश्चिम की अनेको सस्कृतियो के कालानुक्रम मे आपेक्षिक स्थिति क्या है ? इस क्षेत्र मे धातु-विज्ञान तथा अन्य नवीन विशिष्टताओं के प्रसार की दिशा क्या है ?

अगले अध्यायो मे हम उपर्युक्त समस्याओं का हल ढूंढने के लिए विभिन्न प्रमाणो का संश्लिष्ट विश्लेषण करेंगे ।

III अन्य ताम्राश्मीय सस्कृतियाँ

इन अन्य ताम्राश्मीय संस्कृतियो के विषय मे प्रकाशित केवल सक्षिप्त विवरणो के कारण तुलनात्मक अध्ययन में कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं । ये कठिनाइयाँ मुख्यत धातु तथा अन्य शिल्पो के विवरण प्राप्त करने मे आती हैं । अत पुरातात्त्विक प्रमाण प्राप्त करने मे जहाँ तक सभव हुआ है हमने व्यक्तिगत सपर्कों से भी काम लिया । मुख्य ताम्राश्मीय सस्कृतियाँ मानचित्र (आरेख 7) मे दिखायी गयी हैं ।

क दक्षिणी राजस्थान

राजस्थान का दक्षिणी-पूर्वी भाग रेगिस्तान होते हुए भी उपजाऊ है तथा अरावली पहाड़ियो द्वारा सरक्षित है । भूतकाल में इस क्षेत्र में सभवतः अनेक जलवायु परिवर्तन हुए (देखें अध्याय 2) । अधिकाश काले-लाल मृद्भाड स्थल बनास व इसकी सहायक नदियो की घाटियो मे केन्द्रित हैं ।

(1) अहाड और गिलूंद

उदयपुर के पास, बनास नदी के किनारे अहाड और गिलूंद स्थलो से एक ताम्राश्मीय सस्कृति के प्रचुर प्रमाण मिले हैं, जो बनास सस्कृति के नाम से प्रसिद्ध हैं ।

अहाड में पत्थरो की नींव पर बने पत्थर और मिट्टी के मकान मिले । मकानो की मिट्टी की पुताई स्फटिक पिंडो से अलकृत की गयी है । 30′ × 15′ आकार के कुछ बडे मकान भी मिले । गिलूंद मे बड़ी इमारतो के अवशेष अधिक मिले हैं । पत्थरो की नीव पर भट्टे मे पकायी गयी ईंटो की एक 36′ की खुली दीवार व एक 100′ × 30′ की एक विशाल सरचना मिली है जो एक पहेली बनी हुई है । सैंधव सस्कृति के अतिरिक्त (14″ × 6″ × 5″ आकार की) पक्की ईंटो का प्रयोग वास्तव में पुरातात्त्विक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है । कुछ चूल्हे
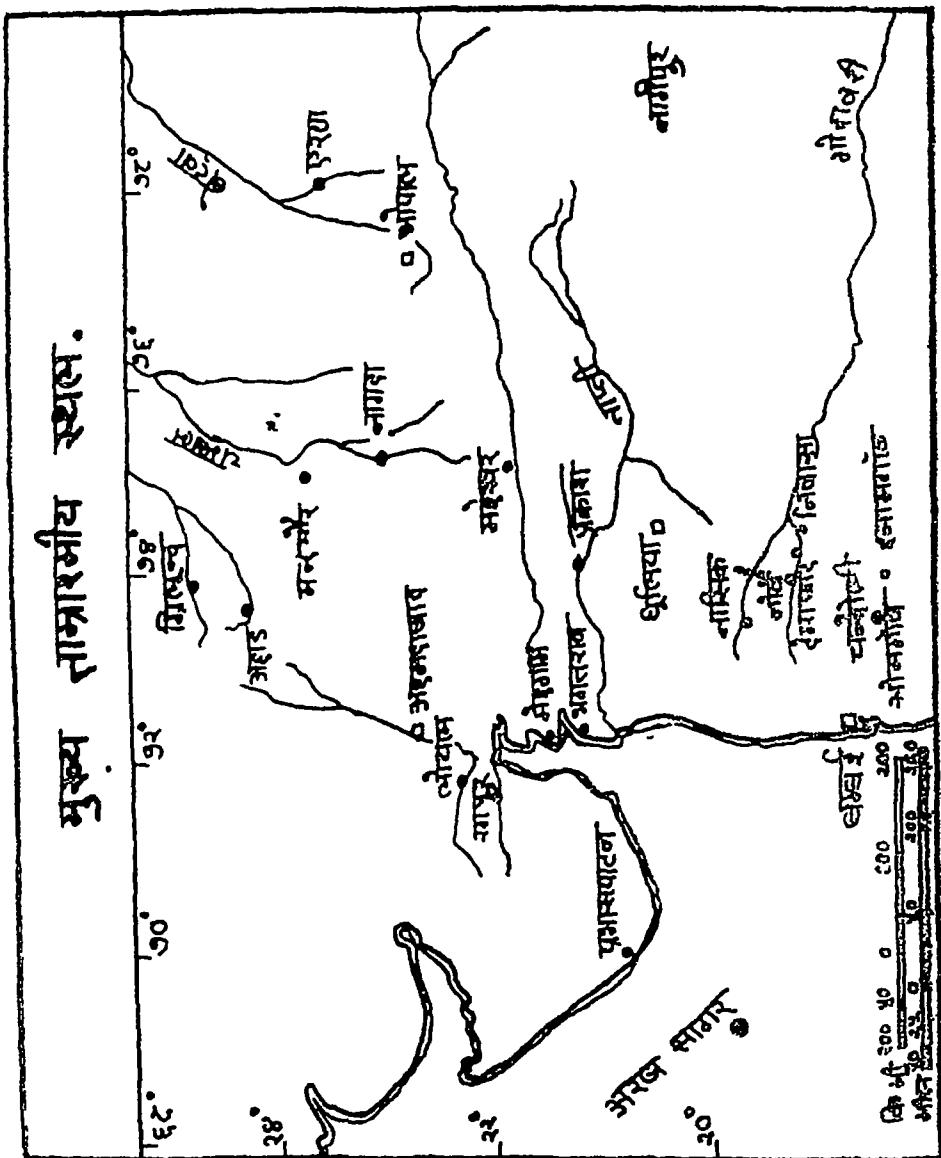
आरेख 7

काफी बड़े हैं। एक मकान मे तो एक कतार में छह चूल्हे थे। ताम्र शिल्प उपकरणो मे चार चपटी कुल्हाडियाँ चूडियाँ, आदि मिली हैं।

अहाड काल IA मे पाडु और दूधिया स्लिप के भांड प्रचलित थे। काल IB मे प्रस्तर भांड (Stone ware) के साथ सपीठ तश्तरियाँ और साधारण

थालियाँ भी प्रचलित रही। काल I C के काला और काले-लाल कटोरो के स्कधो मे किनारे बने थे। प्रस्तर पात्र विलुप्त हो गये। चित्रित काले-लाल भाड विशेष बर्तनो मे शुमार थे। लाल भाड के संचयन पात्र का निचला भाग अनगढ ही है। चित्रित काले, सादे, चमकीले, धूसर, लाल और कुछ बहुरंगी मृद्भाडो के ठीकरे भी उपलब्ध हुए हैं। दूधिये-पर-काला और काले-लाल भाड, गिलूद के ऊपरी तथा निचली सतहो से भी मिले हैं। नवदाटोली के सबसे निचले स्तरो से मिलने वाले दूधिया स्लिप भाड पर नाचते हुए मानव चित्र वाले बरतन गिलूद की ऊपरी सतह से ही मिलने लगते हैं। सकालिया के विचार से प्रस्तर पात्र की परपरा यहाँ पश्चिम से आयी। यह समझा जाता है कि पतले पाडु और दूधिया स्लिप वाले, किरमिजी काले रग से चित्रित मृद्भाड भी बाहर से आयात हुए। आम्री और नाल मे भी ऐसे भाड मिलते हैं।

सकालिया ने अहाड के तर्कुचक्कर या पकी मिट्टी के मनको का सादृश्य ट्राय के नमूनो से किया है। उनके अनुसार, अहाड के अलावा अन्य किसी भी ताम्राश्मीय सस्कृति या प्राचीन ऐतिहासिक स्थलो से उत्कीर्ण तर्कुचक्कर (चाहुदडो के अपरिष्कृत नमूनो के अलावा) उपलब्ध नहीं हुए हैं। आकार की दृष्टि से सादृश्य न होते हुए भी, नागदा काल I के पकी मिट्टी के उत्कीर्ण मनके और तर्कुचक्कर समान प्रतीत होते हैं। सकालिया के मतानुसार लबे सीग वाले साड और विविध प्रकार की गोटो (एक का सिरा मेढे का है) मे सैंधव परपरा का आभास होता है।

अग्रवाल और लाल दोनो ने ही लगभग नगण्य लघु-अश्मो का वर्णन किया है। लघु-अश्मो की अनुपस्थिति के कारण ही सकालिया बनास सस्कृति को केवल ताम्र सस्कृति की सज्ञा देते हैं। इसी कारण बनास सस्कृति अन्य ताम्राश्मीय सस्कृतियो से भिन्न है।

चित्तौडगढ़, उदयपुर और मदसौर जिलो मे काले-लाल मृद्भाडो के अनेक स्थल मिले हैं।

ख सौराष्ट्र

(1) रंगपुर

रगपुर लोथल से 30 मील दक्षिण-पश्चिम में, भादर नदी की घाटी में पहाड़ों से लगे मैदानी क्षेत्र मे स्थित है। भादर नदी के कारण यह क्षेत्र काफी उपजाऊ है। इस स्थल का समीपवर्ती समुद्री तट कटा-फटा होने के कारण यह

सैन्धव समुद्री व्यापार के लिए बहुत उपयुक्त था। रंगपुर के उत्खनक ने इसके काल I का समय 3000 ई० पू० निश्चित किया। इस काल मे यहाँ केवल लघु अश्मो का ही प्रचलन था। मृद्भाड के प्रयोग का कोई प्रमाण नही मिला। काल II के A, B, C प्रकाल हैं। काल II हडप्पा सस्कृति का है। इस काल मे कुल्हड और बीकर कम प्रचलित थे। अब ही काले-पर-लाल हत्थेदार कटोरे, पांडु-पर-चाकलेटी, अनगढ़ धूसर भाड आदि नये तत्व भी देखने को मिलते है।

रंगपुर के पांडु भाड आद्यो के पाडु भाडो की तरह पतले और उत्कृष्ट नही हैं। चूनेदार मिट्टी (Calcareous Clay) लोह युक्त मिट्टी के विपरीत आक्सीकरण से लाल नही होती। इसके प्रयोग के कारण रंगपुर के मृद्भाड पाडु हैं। मजूमदार के मतानुसार बनास के दूधिया स्लिप वाले भाड केओलिन (Kaolin) के प्रयोग के कारण ऐसे हैं। उनके रासायनिक विश्लेषणो द्वारा ज्ञात हुआ है कि बनास और रंगपुर भाडों मे समानताएँ हैं। प्रकाल IIB में, बाढ़ के कारण सभवत लोग यहाँ से कूच कर गये। नतोदर कटोरो मे परि-वर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। बीकर व कुल्हड विलुप्त हो गये व छोटे मर्तबान व चिलमिची का प्रचलन कम हो गया। अब सीधे किनारे वाले कटोरे प्रयोग में आने लगे। अपरिष्कृत सरचना, अलकरण की न्यूनता, प्रस्तर तौल भार और चर्ट फलक आदि के अभाव से ह्रास के चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं। इस प्रकाल में कोई भी कच्ची ईंटों का मकान, नाली और स्नानागार नही मिले। काल IIC पुनरुत्थान का प्रकाल है। इस प्रकाल मे चमकीले लाल भाडो (Lustrous Red Ware) का प्रादुर्भाव हुआ और भाड चित्रण का बहुत प्रयोग व काले-लाल मृद्भाडो का प्रचलन बढ गया। बडे मकान बनने लगे। मृत्पिंड (Terra Cotta Cake) और जालीदार मर्तबान विलुप्त हो गये।

राव ने चमकीले लाल मृद्भाड को, सैन्धव मृद्भाड परपरा का ही विकसित रूप सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। राव के अनुसार अनगढ़ लाल-भाडो की बहुलता का कारण बारीक जलोढ मिट्टी का अभाव ही था। फलस्वरूप कुछ भाडो मे अतिरिक्त अलकरण किया गया है। लेकिन दूसरे स्थलो से प्राप्त चमकीले मृद्भाड के विषय में उपर्युक्त तर्क लागू नहीं होता। च० ला० भाड (L R Ware) एक तकनीकी आविष्कार है। गीले भाडो पर गेरू रगड कर, उन्हें बाद में आग में पकाने के पश्चात् चित्रित किया जाता था। प्रकाल IIA और IIB की तुलना मे प्रकाल IIC और III मे रेखाकित (Graffiti) ठीकरो की वृद्धि महत्वपूर्ण है। राव के उत्खनन की रिपोर्ट से इस रेखाकन का

काल स्पष्ट नहीं होता। लगभग 50 प्रतिशत रेखांकन सैंधव प्रकारों से पूर्णत असमान है तथा शेष 50 प्रतिशत का सिंधु लिपि से कोई निकट का संबंध नहीं नजर आता। वास्तव में सूर्य प्रतीक (राव के प्रतीक नं० 59, 60, वृ (प्र० न० 96) और घुड़सवार का (प्र० नं० 97) चित्रण संभवत नये लोगो के आगमन का आभास देता है। काल III में च० ला० भांड मुख्य भांड उद्योग के रूप मे प्रकट हुए। अब नैसर्गिक की अपेक्षा ज्यामितिक डिजाइनो को अधिक महत्व दिया जाने लगा। भांडो के आकार मे भी परिवर्तन आ गया। काले-लाल भांड अधिक प्रचलित हो गये। इस काल मे कांचनी मिट्टी और सेलखड़ी के मनके लुप्त हो गये। उनके स्थान पर पकी मिट्टी के मनके प्रचलित होने लगे। इनके अतिरिक्त सांड, अयालदार घोड़े आदि की मृण्मूर्तियां इस काल की अन्य महत्वपूर्ण उपलब्धियां है।

विभिन्न प्रकालो मे कुल 18 ताम्र उपकरण मिले हैं जिनका विवरण इस प्रकार है—प्रकाल IIA से 7, प्रकाल IIB से 1, प्रकाल IIC से 9, प्रकाल III से 1। टीन मिश्रण का ज्ञान होते हुए भी उनका धातु शिल्प विकसित नहीं था (देखें अध्याय 6)। अमरेली जिले में रूपवती के स्थानीय अयस्को के इस काल मे प्रयोग की क्या संभावनाएं थीं, इसका विश्लेषण अध्याय 6 मे करेंगे।

संभवत क्रेस्टेड गाइडेड रिज (Crested guided ridge) तकनीक ज्ञात थी। लेकिन चर्ट अप्राप्य होने के कारण लंबे फलक नही बन सकते थे। कर-केतन भी दुर्लभ है। रंगपुर और देवालिया मे यशब (Jasper), दादली पत्थर (Agate) के छोटे कंकड़ ही प्राप्य थे। इसलिए इनसे शल्क ही बन सकते थे, फलक नही। नये ताम्र भंडारो की प्राप्ति के कारण (देखें अध्याय 6) भी प्रस्तर फलको की न्यूनता संभव थी।

रंगपुर, देसालपुर, प्रभास, सोमनाथ आदि स्थलो मे हड़प्पा संस्कृति का अनुक्रमण स्पष्ट दीखता है। दुर्भाग्यवश इन स्थलो का रेडियोकार्बन पद्धति द्वारा काल निर्धारण अब तक नही हो सका। संपूर्ण सौराष्ट्र हड़प्पा संस्कृति का उत्तरकालीन रूपांतरण दर्शाता है। अत इस संक्रमण काल का तिथि-निर्धारण होना बहुत महत्वपूर्ण है। हाल मे जगतपति जोशी ने सुरकोटडा की खुदाई से इन समस्याओ पर विशेष प्रकाश डाला है।

(ii) प्रभास पाटन

सोमनाथ के निकट सोरठ जिले मे प्रभास पाटन के उत्खनन से छह कालो का अनुक्रम मिला। इसके प्रथम काल से उत्तर हड़प्पाकालीन मृद्भांड, लघु

अश्म, खडित काचली मिट्टी के मनके आदि मिले। च० ला० भाड, लाल-पर-काला भाड पर नये परिष्कृत डिजाइन और मृग-चित्रित ठीकरे प्रकाल II A की विशिष्टताएँ हैं। इस काल का एक अनगढ़ पत्थरो का फर्श भी मिला है। प्रकाल II B मे च० ला० भाड का आविर्भाव हुआ। काल III मे काले-लाल मृद्भाडो के साथ लोहे का प्रचलन भी शुरू हो गया।

(iii) सोमनाथ

प्रभास पाटन से 2 मील दूर सोमनाथ के काल I के रगपुर काल II के च० ला० भाड के साथ किनारेदार कटोरे और अनगढ धूसर भाड मिले। सपीठ थालियाँ इस काल मे अति लोकप्रिय थीं। काले-लाल भाडो का चलन बहुत कम था। दस हजार छोटे सेलखडी के मनके, एक ताम्र कुल्हाडी, शल्क, फलक और क्रोड इस काल की अन्य प्राप्तियाँ थी। काल II मे च० ला० भाड काफी प्रचलित हो गये, परन्तु ये अच्छी तरह अलकृत नही थे। काले-लाल भाड इस काल में पूर्ववत् प्रचलित रहे। काल III मे प्रधानत बढिया घिसाई किये काले-लाल भाड, विविध प्रकार के कटोरे व तश्तरियाँ प्रचलित हुईं। लालभांड की स्थिति पूर्ववत् रही।

(iv) आमरा

जिला हलार मे आमरा के काल I से हडप्पा भाड के साथ काले-लाल भांड भी मिले। काल I व II के नमूने लखाभावल के सदृश्य हैं। लखाभावल के काल I का रगपुर काल I से तादात्म्य है। पांडु स्लिप वाले धूसर ठीकरे दोनो स्थलो मे मिलते हैं। लाल पालिश वाले भाड प्रचुर मात्रा मे, अनगढ काले लाल भाड, तथा जरदोजी काम की एक सोने की बाली इस काल की विशेषताएँ हैं।

(v) देसलपुर

जिला कच्छ मे देसलपुर के उत्खनन से दो सस्कृतियो का पता चला। काल I A हडप्पा सस्कृति का है। यह उल्लेखनीय है कि किले की दीवार की चिनाई पत्थरो से की गयी थी जिस पर बुर्ज बने थे। किले की दीवार के दूसरी ओर मकान बनाये गये। कच्ची ईंटो का आकार 50×25×12 5 से० मी० है। नीले-हरे आभा वाले रग से चित्रित एक पतला धूसर मृद्भाड मोहनजोदड़ो के काचित भांड (glazed ware) से मिलता है। प्रकाल IB

मे दुधिया स्लिप वाले द्विरंगी मृद्भाड के मुख्य पात्र कटोरे व तश्तरियाँ थीं। काले, बैगनी या लाल या भूरे रगो से पात्रो को चित्रित किया गया था। सादे व धूसर रग से चित्रित काले-लाल भांडो का प्रचलन इस प्रकाल की नवीनताएँ है। इस प्रकाल मे च० ला० भाड बिलकुल नही मिलते। ताम्र के चाकू, छेनी, छड और छल्लो के अतिरिक्त चर्ट के पतले लम्बे फलको का प्रयोग भी होता था। काल II मे दुर्ग की दीवारो से चुराये गये पत्थरो से मकान बनाये गये थे काले रग से चित्रित लाल और दूधिया स्लिप वाले भाड इस काल मे लोकप्रिय हो गये थे।

ग मध्यभारत और महाराष्ट्र

महाराष्ट्र का अधिकाश भाग काली कपासी मिट्टी (Black cotton-soil) से ढका है। बीच-बीच मे पर्णपाती और मिश्र पर्णपाती मानसूनी वनो के कटक हैं। दक्षिणी पठार के शुष्क पर्णपाती बन व डोलेराईट डाइक ग्रेनाइट व बेसाल्ट की पहाडियो की पारिस्थितिकी *ताम्राश्मीयकालीन मानव* को कृषि तथा पशु पालन के लिए उपयुक्त थी। नर्मदा की घाटी भी ताप्ती और गोदावरी की तरह है। मध्य भारत व दक्षिणी पठार की अधिकतर नदियो की सकीर्ण घाटियाँ एक दूसरे से पर्वतो और पठारो से विभाजित हैं। ऐसी पारिस्थितिकी अधिक कृषि उत्पादन व मानव-संपर्कों दोनो ही के अनुकूल नही है। चबल की घाटी मे तो इतनी थोडी जलोढ़ मिट्टी है कि लगता है कि यहाँ की बस्तियो का मुख्य उद्योग पत्थरों के अस्त्रो के लिए कच्चा माल प्राप्त करना रहा होगा।

(1) एरण

सागर जिले मे बेतवा नदी पर, विन्ध्याचल पर्वतमालाओ के उत्तर मे, एक पठार पर एरण स्थित है। इसकी स्थिति ही शायद एरण की सस्कृति के विशिष्ट व्यक्तित्व के लिए उत्तरदायी है।

इस स्थल से संस्कृति के चार कालो का अनुक्रम मिला। काल I ताम्राश्मीय है, काल II से लोहा प्राप्त हुआ तथा अन्य दो काल परवर्ती हैं। सफेद रग से चित्रित काले-लाल भाड, लाल-पर-काला भाड, एक चित्रित धूसर भाड (दोआब के चि० धू० भाड से भिन्न) काल I की विशिष्टताएँ है। मध्य काल से एक चमकदार गहरी लाल स्लिप वाले भाड (क्या यह च० ल० भाड है ?) मिले, व अतिम काल से टोंटीदार पात्र, परकोटा और खाई मिलती हैं। पत्थर की

कुल्हाड़ियाँ परकोटे की मिट्टी से व अंतिम काल के स्तरो से भी मिलती हैं। ताम्र के टुकड़े के अलावा अन्य उपकरणो का विवरण अभी तक अप्रकाशित है। काल II की विशिष्टताएँ हैं काले-लाल भांड (जो आकार तथा बनावट मे प्रथम काल से भिन्न हैं) और अल्प मात्रा मे एन० बी० पी० व पच-मार्क सिक्के।

(ii) नागदा

नागदा चबल क्षेत्र मे एक पठार के ऊपर स्थित है। यहाँ पर जलोढ मिट्टी के मैदान हैं ही नहीं। काल I के 22′ निक्षेप से लाल-पर-काला और दूधिये-पर-काला मृद्भांड मिले। यहाँ के डिजाइनो के समृद्ध भडार का तादात्म्य मध्य भारत के परिरूपो से है। मृद्भाडो मे कलपुछ, सूर्य प्रतीक, मृगश्रृग आदि चित्रित हैं। मिट्टी व कच्ची ईंटो के बने मकान भी मिलते हैं। करकेतन, स्फटिक और तामड़ा पत्थर के फनक और क्रोड तथा पकी मिट्टी के मनके और उत्कीर्ण डिजाइन वाले तर्कु-चक्कर (अहाड़ जैसे) भी मिले हैं। काल II मे काले और दूधिये भांड के लुप्त होने के साथ ही काले-लाल मृद्भांडो का प्रादुर्भाव हुआ। इस काल मे भी मिट्टी और कच्ची ईंटो की इमारतें पूर्ववर्ती बनायी गयी। काल III मे एन० बी० पी० प्रकट होती है। ताम्र उपकरण बहुत न्यून मात्रा में मिले।

नर्मदा नदी की सकीर्ण घाटी के अलावा सारा मालवा पठार चट्टानी है। बीच-बीच मे रेगुर मिट्टी के छोटे-छोटे टुकडे फैले हैं। दलदल क्षेत्रो मे विविध प्रकार के जगली धान पैदा होते हैं। नदियो की संकीर्ण उपजाऊ पट्टियो के कारण कृषक समुदाय अधिक नही पनप पाये (देखें अध्याय 2)।

(iii) कायथा

उज्जैन से 15 मील दूर कायथा एक अत्यत विशिष्ट ताम्राश्मीय सास्कृतिक स्थल है। मजबूत भाड लघु-अश्म काल II की विशेषता है। काल I से मध्याश्मयुगीन हथियार प्राप्त हुए। एक पांडु-पर-गुलाबी लाल और एक चाकलेटी भाड भी प्राप्त हुआ जो कि काल II की विशिष्ट उपलब्धियाँ हैं। चाकलेटी भाड प्राग्हड़प्पा भाड की याद दिलाता है। इसी कालकी दो उत्कृष्ट ढली हुई ताम्र कुल्हाडियाँ, छनी और चूडियाँ भी मिली हैं। काल II के अवशेषो की सगोत्रता हडप्पा से नही स्थापित की जा सकती। काल III मे सफेद रग से चित्रित काले-काले भाड प्रचलित थे। काल IV मे मालवा भाड चित्रित काले-लाल-भाड आदि मिलते हैं। कायथा सस्कृति के (काल II के)

अभूतपूर्व स्वरूप व विशिष्ट व्यक्तित्व के कारण ताम्राश्मीय सस्कृतियो का स्वतत्र उद्‌भव बहुत सभव लगता है।

(iv) माहेश्वर और नवदाटोली

इन्दौर से 50 मील दक्षिण मे नर्वदा तट पर स्थित माहेश्वर व नवदा-टोली से ताम्राश्मीय सस्कृति के विस्तृत अवशेष मिले हैं। झोपडे वर्गाकार या वृत्ताकार (3 से 8 फुट परिधि के) थे। काल I के कमरो का औसतन माप 10′ × 8′ था, तथा गाँव मे झोपडो की औसत सख्या 50 से 75 तक थी। एक 4′ × 4′ गर्त के चारो ओर खभो के निशान बने हैं। गर्त के अदर समकोण पर रखे दो लट्‌ठे, अडाकार पेट और लहरियादार कठ व आधार वाले दो पात्रो के अवशेष मिले। सफेद रग से चित्रित लाल भाड केवल काल I मे ही प्रचलित थे, जबकि सफेद स्लिप वाले भांड काल I और II मे। काल III मे टोटीदार नली वाले और जोर्वे भाड प्रचलन मे आये। लेकिन प्रमुख भाड मालवा भाड ही था जो कि पूरे ताम्राश्मीय कालो मे प्रचलित रहा। टोटीदार नलीवाले भाडो के समरूप आकार पश्चिमी एशिया से उपलब्ध हुए हैं। खुर्दी में इसी प्रकार का एक ताम्र का बना नमूना मिला है। प्रथम काल मे मसूर, उडद, चना, मटर और गेहूँ उगाये जाते थे। काल II से थोडी मात्रा मे चावल का भी उपयोग होने लगा। मध्य भारत मे ही नही, भारतवर्ष के अन्य भागो मे भी जगली चावल (Oryza sativa) पैदा होता है। सूअर, भेड, बकरी और हिरन के अवशेषो से ज्ञात होता है कि लोग मास भक्षण भी करते थे। समानान्तर किनारो वाले छोटे या लघु फलको का प्रयोग बडी सख्या मे किया जाता था। दातेदार फलक भी मिले है। चद्राकार लघ्वश्म जो बाणाग्रो की तरह प्रयुक्त होते थे, बहुत कम मिले हैं। इनके अतिरिक्त ताँबे के चपटे कुल्हाडे, मत्स्य काँटे, रीढदार फलक आदि का भी प्रयोग किया जाता था। बादली पत्थर, तामड पत्थर और काचली मिट्‌टी के मनके मिले हैं। ताम्र व मिट्‌टी की चूडियाँ और छल्ले भी प्रचलित थे।

(v) प्रकाश

प्रकाश दक्षिणी ट्रैप प्रदेश पर स्थित था जहाँ भगुर गुलाबी स्फोटगर्ती चट्‌टानें तथा गैर-स्फोटगर्ती ट्रैप की पट्‌टियाँ पायी जाती हैं। गोमाई व ताप्ती के सगम पर स्थित प्रकाश लघ्वश्म उद्योग के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ बादली पत्थर, करकेतन तथा चर्ट पिंड बडी सख्या मे पाये जाते हैं। भौगोलिक दृष्टि से मध्य

तथा दक्षिणी भारत के बीच स्थित होने के कारण, दोनो क्षेत्रो के सास्कृतिक तत्वो का समावेश यहाँ मिलता है। ताप्ती घाटी की खोज से अनेक ताम्राश्मीय सस्कृतियाँ प्रकाश मे आयी हैं।

प्रकाश के उत्खनन से चतुर्कालिक अनुक्रम मिला है। प्रकाल IA से फलक लघ्वश्म, पत्थरो के हथौडे, एक ताम्र दीपक, यशब के मनके, तामडा पत्थर, सेलखडी, पकी मिट्टी की छकडा गाडी के खिलौने आदि मिले हैं। प्रचलित मृद्भाड निम्नलिखित थे —(i) सफेद डिजाइनो से चित्रित हल्के धूसर भाड; (ii) मालवा भाड, (iii) उत्कीर्ण एव जमाए हुए अलकरण युक्त भाड, (iv) अपरिष्कृत घिसाई किये हुए और सादे भाड, जिनका सम्बन्ध काले-लाल भाडो से स्थापित किया जाता है। काल IB में जोर्वे और च० ला० भाडों का प्रादुर्भाव हुआ। इस काल में समानान्तर पक्षो वाले फलक अधिक प्रचलित थे जबकि समलब लघ्वश्म उपलब्ध नही हुए। किसी भी इमारत के अवशेष नही मिले। काल I से केवल एक ताम्र दीपक की प्राप्ति, धातु की न्यूनता का द्योतक है। लोहा, काले-लाल भाड, एन० बी० पी० भाड तथा ताम्र के 21 उपकरण काल II की विशेषताएँ हैं।

(vi) बाहल

गिरना नदी पर स्थित बाहल के काल I से ब्रह्मगिरी प्रकार का मोटा धूसर भाड मिला। गेरुए रग से चित्रित कुछ गहरे धूसर ठीकरे भी मिले। प्रकाल IB मे चाकनिर्मित उत्कृष्ट लाल के साथ च'' ला'' भांडो का प्रादुर्भाव हुआ। इस काल के ऊपरी सतहों से जोर्वे भाड भी मिले हैं। इनके साथ समानान्तर पक्षो वाले फलक, समलब और चन्द्राकार फलक, सेलखडी के मनके, सीप और मिट्टी तथा एक ताम्र दीपक भी मिले। लोहा और चमकीले काले-लाल भाड काल II की विशेषताएँ हैं।

(vii) टेकवाडा

देशपांडे के मतानुसार गिरना नदी के पार से प्राप्त चार शवाधान काल IB के हैं। कटोरो से ढके कुछ बडे कलशों मे कुछ हड्डियाँ और कुछ रेखाकन वाले काले-लाल भाड के कटोरे मिले। उनकी सगोत्रता रगपुर रेखांकन न० 21 और 32 से है। एक मर्तबान में तामडा पत्थर और सेलखडी के कुछ मनके भी मिले हैं।

एक गर्त शवाधान मे उत्तर-दक्षिण दिशा मे रखा एक प्रौढ़ पुरुष का 5′-2″ का अस्थि-पजर मिला। इसके पैरो के पास एक उत्कृष्ट धूसर भाड व

दूसरा चित्रित काला-लाल भाड रखा था। साथ में लाल स्लिप वाला गोल कलश रखा मिला जिस पर काली-वक्र रेखाओ से एक शख प्रतिरूप मुडे हुए फदो के सिरे पर छह तिरछी रेखाएँ चित्रित हैं। इनसे इनकी बाहल की ताम्र सस्कृति के काल की समकालीनता सिद्ध होती है।

(viii) दैमाबाद

देशपाडे ने गोदावरी की एक सहायक नदी प्रवरा की घाटी पर स्थित दैमाबाद (जिला अहमदाबाद) का उत्खनन किया। गोदावरी की घाटी बहुत सकीर्ण है। इसके काल I मे ब्रह्मगिरि काल I प्रकार का मोटा अनगढ़ भाड प्रचलित था। कटोरो के किनारे और ढक्कन प्राय गेरुए रग से चित्रित थे। उत्कीर्ण एव जमाए अलकरण की तकनीको का प्रयोग किया जाता था। यह समझा जाता है कि दो खातो मे चित्रित जगली दृश्य वाला सतह से मिला एक पाडु कलश इसी काल का है। करकेतन के समानातर पक्ष वाले फनक, मृण्मूर्ति और अल्प मूल्य रत्नो के मनके भी मिले हैं। काल II मे सामान्य रचना और टोटीदार नली वाले लाल-पर-काले भाड प्रचलित थे जिन पर ज्यामितिक डिजाइन चित्रित है। लघु-अश्मो के अतिरिक्त ताम्र की एक सुई, टूटा हुआ चाकू व कुल्हाडो के भाग मिले हैं। एक कुत्ते व कूबडदार साड की मृण्मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। काल III मे टोटीदार जोर्वे पात्रो का बाहुल्य है। धूसर भाड पूर्ववत् प्रचलित रहे। लघ्वश्म बडी सख्या मे मिलते हैं। इनके अलावा पत्थरो की गदाएँ, मिट्टी के तर्कु चक्कर, दो मानवी तथा एक कुत्ते की मृण्मूर्तियाँ भी मिली हैं।

काल I मे बस्तियो के बीच ही शवाधान मिले जिनका सिर उत्तर दिशा की ओर था। काल II में भी विस्तारित शवाधान उत्तर-दक्षिण दिशा मे रखे थे। काल III से कुटी हुई मिट्टी के फर्श पर रखा हुआ एक अस्थि पजर मिला जिसका घुटनो से नीचे का भाग भजित है। फर्श पर चौदह लभो के निशान शवाधान के ऊपर शामियाने की सभावना का आभास देते हैं। बच्चे अस्थि कलशो मे दफनाये जाते थे।

(ix) निवासा

प्रवरा नदी पर स्थित निवासा और जोर्वे एक ही सस्कृति के स्थल हैं। भौगोलिक दृष्टि से दैमाबाद और निवासा समान हैं। वर्गाकार व गोलाकार मकानो की दीवारें मिट्टी व लकडी की बनी थी। घरो मे सचयन कलश,

चक्की व चूल्हे बने मिले हैं। धीमी चाल पर निर्मित एक हलके धूसर मृद्भाड के कटोरे, और विविध प्रकार के वर्तुलाकार कलश प्रचलित थे। बारीक कुटी हुई मिट्टी से बने जोर्वे भाड प्राप्त हुए जिनकी निष्प्रभ लाल सतह को काले रग से चित्रित किया गया था। पात्रो मे थालियाँ प्राप्त नही हुईं। यद्यपि अधिकाश अलकरण ज्यामितिक है तथापि एक कुत्ते और हिरन का रेखाचित्र भी बना मिला है। प्राप्त सन के रेशो व रुई से ज्ञात होता है कि लोग कपडा बनाना जानते थे। अल्प मूल्य रत्न, पकी मिट्टी, काचलो मिट्टी, सेलखडी, ताम्र और सोने के भी मनके मिले हैं। एक बच्चे के अस्थि-पजर के गले मे ताम्र के मनको का हार पडा मिला। यद्यपि ताम्र प्रचुर मात्रा मे नही मिलता, फिर भी ताम्र की चपटी कुल्हाडियाँ, एक पात्र और चूडियो के टुकडे, मनके और छडी मिली हैं। करकेतन फलक सामान्यत प्रयुक्त होते थे। कठोर व भारी काम डोलेराईट के घिसे हुए कुल्हाडो से किया जाता था। सम्भवत बडी सख्या मे प्राप्त करकेतन के फलक और बाणाग्र, चपटे ताम्र कुल्हाडे और डकदार गेंद (Sling ball) उस काल के हथियार रहे हो। प्राप्त अवशेषो से ज्ञात होता है कि बाजरा, भेड, बकरी, भैंसे का मास, घोघे तथा सीप उनके आहार मे शामिल थे। शव मकानो के अन्दर व बाहर दफनाये जाते थे। बच्चो का शवाधान एक, दो व कभी-कभी तीन अस्थि-कलशो मे किया जाता था। 14 साल से बडो के शवाधान एक या दो या कभी पाँच कलशो तक मे मिले हैं। अस्थि-पजर अवशेष अच्छी प्रकार सुरक्षित नही रखे गये हैं। चौडे चेहरे व चौडी, नाक, लम्बा सिर वाला एक अस्थि पजर मिला है। एरहार्ड के विचार से अस्थि-पजर की उद्गतहनुता (Prognathy) समीप की जगली जातियो सी है।

(x) जोर्वे

जोर्वे के उत्खनन से भी ऐसी ही सामग्री मिली है। कुल्हाडी और ताम्र चूडियो का यहाँ विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है।

(xi) चंदोली

पूना जिले मे घोड नदी पर स्थित चदोली एक जोर्वे सस्कृति स्थल है। यहाँ पर चूने से पुते फर्श पर खम्बो के छेदो के निशान और चूल्हे पाये गये हैं। जोर्वे, मालवा और दूधिये स्लिप वाले तथा काले लाल-मृद्भाड भी प्रचलित थे। मालवा भाडो के आकार के पात्र (जैसे नवदाटोली मे प्रचलित थे) तथा च० ला० भाड भी मिले हैं।

समानातर पक्ष वाले चाकू फलक, समलव चन्द्राकार, वर्गाकार, लघु अश्मो का उपयोग भी किया जाता था। इनके अतिरिक्त विशाल चक्कियाँ, निहाई और पत्थरो की गदाएँ और डोलेराईट का एक कुल्हाडा भी मिला है। मृद्भाड की एक पशु की आकृति की एक बोतल (साड के प्रकार का जानवर) हिस्सार तथा स्यालक का स्मरण दिलाती है। ताम्र की दो छेनियाँ, एक कुल्हाडो, पाँव का अलकरण और एक श्रृगिकाकार मूठ वाली रीढदार कटार भी मिली है।

(xii) मास्की

मास्की दक्षिण भारत के नवाश्मीय क्षेत्र के अतर्गत आता है। लेकिन उत्तर तथा दक्षिणी सस्कृतियो का मिलन बिन्दु होने के कारण इसका महत्वपूर्ण स्थान है। यह रायचूर जिले मे तुगभद्रा की सहायक नदी मास्की पर स्थित है। यह रायचूर दोआब के वाह्य प्रदेश में तीनो ओर से नाइस शैलो से घिरा है। इस क्षेत्र मे प्रधानत स्वर्णीय शिरायुक्त स्फटिक चट्टानें (auriferous quartz reef) हैं। अब तक के उत्खनन मे केवल दो स्वर्ण उपकरण प्राप्त हुए हैं। थापड ने चार सस्कृतियो का अनुक्रम इस स्थल मे पाया है। इसके काल I मे लघु अश्म व फलको का व्यापन हुआ। लबे फलक सैंधव नमूनो के समान लगते हैं। अब तक यहाँ से पत्थर की कुल्हाडियाँ उपलब्ध नही हुई हैं। एक ताम्र छड की प्राप्ति से धातु-कर्म का ज्ञान होता है। अल्प मूल्य व सेलखडी के मनके प्रचलित थ। एक नतोदर किनारे वाला, तारे के आकार का मनका महत्वपूर्ण उपलब्धि है। हलके धूसर तथा गुलाबी पाडु भाड प्रचलित थे। निचले स्तर से गुलाबी पाडु भाड प्रचुरता से मिले। निचले स्तर से प्राप्त चित्रित भाडो के 24 ठीकरे मध्य भारत के भाडो से नही मिलते। सूती (Fresh water mussel) चूहे, भैंस, भेड, बकरी के अवशेषो से ज्ञात होता है कि वे माम खाते थे। मकानो के कोई अवशेष नही मिले। लघु-अश्म, काले-लाल भाड तथा लोहा काल II की विशेषताएँ हैं। मास्की की ऊपरी सतह से प्राप्त एक बेलनाकार मोहर पर हाथी हाँकते हुए मनुष्य का चित्रण है। इस मोहर, लम्बे चर्ट फलक तथा चित्रित मृद्भाड परपरा के आधार पर, थापड ने इस सस्कृति का हडप्पा सस्कृति से सम्बन्ध होने की कल्पना की है।

घ—समस्याएँ और विवेचना

उपर्युक्त ताम्राश्मीय सस्कृतियो के सर्वेक्षण से विदित होता है कि रगपुर मे हड़प्पा सस्कृति का अवक्रमण हुआ है, यद्यपि स्पष्ट सचारण का रूप अभी

स्पष्ट नही है। काल II मे व्यापक अपकर्ष और ह्रास देखते हैं, पर प्रकाल II C पुनरुत्थान का है। चित्रकला का आधिक्य, काले-लाल भांड की लोकप्रियता और बडी इमारतो का निर्माण इस काल की विशेषता है। सूर्य, सवार (?) और तबू के चिह्न भी रेखांकित है। पचास प्रतिशत रेखांकन हडप्पा प्रतीको मे बिलकुल नही मिलते और शेष दूसरो मे भी समानता के लक्षण नही दिखाई देते। ऐसा प्रतीत होता है कि लिपि प्रयोग ही नही की गयी या सभवत यहाँ के लोग लिपि से परिचित नही थे। काल III मे यद्यपि काले-लाल भांड प्रचलित थे, तथापि चमकीले लाल भाड की प्रमुखता थी। काल II मे मृद्भाड व शैलियो की बहुलता, काले-लाल भाड और चमकीले भाडो के प्रति अभिरुचि, क्या नये प्रेरणा स्रोतो या नये आक्रमको के आगमन का द्योतक है? देसलपुर के काल II B से भी इसी प्रकार के प्रमाण मिलते हैं।

बनास संस्कृति के स्थलो मे यह प्रक्रिया पूर्ण विकसित स्तर पर है। उनके बडे सामूहिक चूल्हे, 30′ × 15′ यहाँ तक कि 100′ × 80′ नाप के बडे भवन, पक्की ईंटो की 37′ की दीवार की सरचना, बहुत प्रकार के मृद्भाड, काले-लाल भाडो का प्रचलन, सैंधव प्रकार की गोटो का प्रयोग और पक्की ईंटो पर हडप्पा सस्कृति की छाप स्पष्ट दिखायी देती है। क्या हडप्पा के दस्तकार ही अपने नये स्वामियो (आक्रमको) की सेवा मे यहाँ काम कर रहे थे?

इस सदर्भ मे पहले ही बताया जा चुका है कि सकालियाँ ने मृद्भाड प्रकार और तर्कुचक्करो मे विदेशी साहश्य देखा है। इसी प्रकार की विकास प्रक्रिया को सौराष्ट्र के विभिन्न स्थल जैसे प्रभास पाटन, लखाभावल और सोमनाथ आदि मे भी हम देखते हैं।

इस पुनरुत्थान का क्या कारण था? क्या यह केवल हडप्पा सस्कृति का अनुक्रमिक विकास था या यह नये प्रेरणा-स्रोतो या नये लोगो के आगमन की देन थी? इस प्रश्न का उत्तर उनकी ताम्र तकनीको के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा समझा जा सकता है। क्या नये लोग कच्ची धातु (अयस्क) और भिन्न धातुशोधन तकनीक का प्रयोग कर रहे थे?

नवदाटोली मे धातु-शोधन तकनीक किस सस्कृति की देन थी? बनास प्राग्हडप्पा या हडप्पा की? अहाड और गिलून्द मे पाषाण-उद्योग बहुत ही गौण हैं जबकि ताम्र प्रगलन के प्रमाण स्पष्ट हैं। क्या प्रस्तर फलक उद्योग का पूर्णत न मिलना विदेशी परंपराओ व लोगो के आगमन का सूचक है? लेकिन हडप्पा सस्कृति की तुलना मे बनास ताम्र धातु शोधन प्रक्रिया का क्या स्थान है?

क्या यह सौराष्ट्र की तरह सीधे सांस्कृतिक संचरण क्षेत्र से महत्वपूर्ण रूप से भिन्न है ?

किस प्रकार विभिन्न ताम्र तकनीकों का विश्लेषण सौराष्ट्र की उत्तर हड़प्पा संस्कृति, मध्य भारत और दक्षिणी भारत के तीन सांस्कृतिक समूहों का वर्ग भेद करने में सहायक हो सकता है ? और किस प्रकार पारिस्थितिकी इन तीनों क्षेत्रों की तकनीकों को प्रभावित करती है ?

क्या नवदाटोली के काल II से प्राप्त चावल नये आगन्तुकों के आगमन को दर्शाता है या केवल विशेष किस्म के (Oryza sativa) स्थानीय जंगली चावलों की खेती का सूचक है ?

उत्तर में, नागदा के काल II में काला-और-दूधिया भांड नहीं मिलता, जबकि काले-लाल भांड प्रकट होते हैं। जोर्वे और निवासा में काले-लाल भांड नहीं मिलते जबकि मास्की में यह लौह-युगीन है। क्या अस्थि-कलश शवाधान और हस्तनिर्मित धूसर भांड, दक्षिणी निवासा काल की ताम्राश्मीय संस्कृति की देन है ? शर्मा के मतानुसार टोंटीदार कटोरा दक्षिणी पूर्वी-भारतीय नवाश्म संस्कृति का द्योतक है न कि मालवा संस्कृति का एक अंग। यह सब प्रमाण क्या दर्शाते हैं ?

क्या मालवा और जोर्वे लोग काली कपासी मिट्टी का खेती के लिए उपयोग कर सके ? क्या उनकी ताम्र तकनीक से खेती करना संभव था या वे केवल नदीतटीय संकरे जलोढ़ मैदानों का ही खेती के लिए उपयोग करते रहे ? उनकी पारिस्थितिकी और तकनीकी ज्ञान उनके नागरीकरण में सहायक क्यों नहीं हो सका ?

कम से कम पहली सहस्राब्दी ई० पू० तक काले-लाल भांड क्या एक निश्चित परंपरा को दर्शाते हैं ? क्या यह परंपरा दोआब में भी पहुँची ? काले-लाल भांड के संचरण में पारिस्थितिकी का क्या अवरोध रहा ? और उसके क्या परिणाम हुए ?

ताम्राश्मीय संस्कृति के सर्वेक्षण से उपर्युक्त मुख्य प्रश्न उठते हैं, जिनका विवेचन हम आगे करेंगे।

(ङ) उत्तर भारत (दोआब)

पारिस्थितिकी की दृष्टि से दोआब (गंगा की घाटी), थार रेगिस्तान, अर्द्ध शुष्क पंजाब और सिंध से पृथक है (देखें अध्याय 2)। थोड़े से पश्चिमी दोआब के हड़प्पा स्थलों के अतिरिक्त, ताम्र संचय दोआब के सबसे प्रारंभिक

पुरातात्विक संयोग है। इसके संबंध में विभिन्न मत प्रचलित हैं। हाईन गेल्डर्न इन्हें आर्य आक्रमणकारियों की देन मानते हैं तो पिगट [illegible] । इसके विपरीत लाल इनका संबंध यहाँ की आदि जातियों से जोड़ते हैं।

दुर्भाग्यवश अब तक प्राप्त ताम्र संचय किसी स्तरविन्यासगत निक्षेप से उपलब्ध नहीं हुए हैं। दोआब के तीन ताम्र संचय स्थलों—राजपुर परसू, बिसौली और बहादराबाद—में बाद के उत्खनन में गेरुए भांड मिले हैं। इस प्रकार दोनों की समकालीनता केवल अप्रत्यक्ष प्रमाण पर ही आधारित है। अभी हाल में सैपाई में एक मत्स्य भाला (harpoon) उत्खनन में मिला है।

(i) बहादराबाद

छोट तले वाली सपीठ थाली, सपीठ कटोरा और निलकनी हड़प्पा संस्कृति से सादृश्य दर्शाती हैं। इसी प्रकार के मृद्भांड भाटपुरा, मानपुरा और अन्य स्थलों से मिले हैं। अम्बखेड़ी में भी ऐसी सामग्री मिली है।

(ii) बड़गाव

बड़गाव (जिला सहारनपुर) की ऊपरी सतह पर कब्रगाह H की सामग्री मिलती है। यहाँ से सपीठ थालियाँ व निम्न प्रकार के टुकड़े मिले हैं। बहादराबाद की तरह रस्सी छाप और गेरुए भांड भी मिले हैं। वलय-स्टैंड (ring stand) पर उत्कीर्ण अलंकरण हैं। इनके अतिरिक्त अंडाकार मृत्पिंड, एक चर्ट फलक, एक हड्डी का बाणाग्र, केन्द्रीय नाभि वाला पहिया, प्रस्तर बाँट और काँचली मिट्टी की चूड़ियाँ उत्खनन में उपलब्ध हुई हैं। ऊपरी स्तरों में विविध प्रकार के चित्र मिले हैं। इनमें समस्तर पट्टों के अन्दर आड़ी जाली के युग्म त्रिकोण, लहरियादार रेखाएँ आदि के डिजाइन भी शामिल हैं। मोटी और बहादराबाद में प्राप्त एक विशिष्ट प्रकार का ताम्र उपकरण (ताम्रकटे की तरह) यहाँ की विशिष्ट उत्तर हड़प्पाकालीन संस्कृति के संदर्भ में मिला है।

(iii) आंबखेड़ी

जिला सहारनपुर में स्थित आंबखेड़ी में लाल स्लिप सहित गेरुए भांड बिना किसी चित्रण के मिले हैं। अतरंजीखेड़ा या पंजाब की तरह के उत्कीर्ण मृद्भांड यहाँ से प्राप्त नहीं हुए। एक सपीठ विशिष्ट प्रकार की उत्कृष्ट अंडाकार सुराही में कब्रगाह H की संस्कृति का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। छोटे तले वाली सपीठ थालियाँ, केन्द्रीय गुल्म वाले कटोरीनुमा ढक्कन, चिलमची, छोटे प्याले, बाढ़दार किनारे के बरतन (वाड जैसे) आदि अन्य आकार के मृद्भांड

भी प्रचलित थे । कूबडदार साड और मत्पिड सैंधव प्रतीत होते हैं । हमारे मत से हडप्पा के त्रिकोणपिंड (केक) से ये पिंड भिन्न है । कोई भी ताम्र उपकरण यहाँ नही मिला । विभिन्न आकार के हस्त-निर्मित मृद्भाड भी प्रचलित थे । एक ईंटो के भटटे के अवशेष भी मिले हैं । एक लहरदार अलकरण युक्त लाल भाड (जो राजस्थान मे चित्रित धूसर भाड के साथ मिलता है) भी मिला है। यह निरतरता का द्योतक है । देशपाडे आवखेडी को हडप्पा का अपकर्षक रूप मानते हैं ।

(IV) अतरंजीखेडा

जिला एटा मे अतरजीखेडा के उत्खनन से गौड ने विभिन्न काल की सस्कृतियो के एक लबे अनुक्रम को खोज निकाला है । काल I से सरध्र, भगुर और मोटी वनावट के चाक्रनिर्मित गेरुए रग के भाड मिले हैं । बाढदार किनारे वाले वर्तन, छोटी-सी टोटी वाले कटोरे, सपीठ थालियाँ आदि मृद्भाड प्रकार प्रचलित थे । उत्कीर्ण डिजाइन आदि भी मिलते हैं । इस काल के निक्षेप मे प्राप्त बालू, बाढ आने के प्रमाणो की पुष्टि करती है । वास्तव मे साधारण आवासीय निक्षेप की अनुपस्थिति दर्शाती है कि ये सब स्तर बह कर आये हुए निक्षेप हैं ।

गौड के मतानुसार अभी तक आवखेडी और अतरजीखेडा से प्राप्त सामग्री के बीच सादृश्य स्थापित करना सभव नही हो पाया है, जबकि आवखेडी से प्राप्त बहुत से मृद्भाड प्रकारो का हडप्पा सस्कृति से तादात्म्य प्रतीत होता है। अतरजीखेडा से प्राप्त सामग्री इन लक्षणो से भिन्न है । इससे यह परिणाम निकाला जा सकता है कि इन दो संस्कृतियो के बीच कुछ सम्बन्ध था लेकिन निश्चित रूप से कोई सीधा तादात्म्य नही था । काल II के लगभग 300 वर्गमीटर क्षेत्र के 25-50 से० मी० सँकरे निक्षेप से काले-लाल भाड प्राप्त हुए हैं । इसके अतिरिक्त काली, लाल स्लिप वाले और सादा लाल भाड अधिक प्रचलित थे, जबकि गेरुए रगीय और चित्रित धूसर भाड बिलकुल नहीं मिलते । काली स्लिप वाले भाड का आकार काले-लाल भाड के समान है । काली स्लिप वाले और काले-लाल भाड भली भाँति घुटी हुई मिट्टी के हैं और आमतौर से पतले व अच्छी प्रकार पकाये हुए हैं । दोनो ही उत्तम कोटि के हैं । सभवत घिसने के कारण इनमे विशेष प्रकार की चमक है । चाक निर्मित भाडो के अतिरिक्त कुछ हस्तनिर्मित भाड भी मिले हैं । काले स्लिप वाले भाडो मे यदा-कदा चित्रित डिजाइन अधिक चित्रित धूसर भाडो के सदृश है ।

वर्गाकार और आयताकार चूल्हों से जली हुई हड्डियां मिली हैं। 14.5 ×9.5×3 5 से० मी० के कुछ ईंट के जले टुकड़े प्राप्त हुए हैं। यह ज्ञात नही कि यह किस लिए प्रयुक्त होते थे। करतन के क्रोड और अवशिष्ट शल्क (Waste Flakes) फिर मिलने लगते हैं। यद्यपि कोई भी निश्चित हथियार के आकार के नहीं हैं।

चि० धू० भांड और काले-लाल भांड के निक्षेप के बीच मिट्टी का भराव है। "ऐसा प्रतीत होता है कि बाढ़ ने काले और लाल भांड की बस्ती का अंत कर दिया। इस संस्कृति के थोड़े से निक्षेप को छोड़ यह इस स्तर के यथेष्ट भाग को बहा ले गयी।" मुख्यत. रचना की दृष्टि से, उत्खननकर्ता ने इस पर बल दिया है कि अतरंजीखेड़ा के काले और लाल भांड का अहाड़ गिलूंद भांड से सादृश्य है।

(v) आलमगीरपुर

मेरठ जिले मे हिंडन नदी पर स्थित आलमगीरपुर मे हम हड़प्पा सामग्री मिलती है। इसके प्रथम चरण मे हड़प्पा संस्कृति के परवर्तीकालीन अवशेष मिलते हैं जबकि द्वितीय चरण मे चि० धू० भांड के साथ काले-लाल भांड, काली स्लिप वाले और सादा लाल भांड प्राप्त हुए हैं। कभी-कभी अभ्रक को मिट्टी मे मिलाकर भांड बनाये जाते थे। पाकनिर्मित पक्की मिट्टी की वस्तुएँ धूक, सूइयां, हड्डी के बाणाग्र, पीस, कांच के मनके आदि मिले हैं। तृतीय काल मे एन० बी० पी० का अभ्युदय हो जाता है। इसी स्थल पर सर्वप्रथम लोहा चि० धू० भांड तल से मिला है और यहीं से लोहे के कटीले बाणाग्र, भालाग्र, मेखें, और सुइयां मिली हैं। ताम्र निरंतर प्रचलित रहा।

(vi) सैपाई

सैपाई जिला इटावा (उत्तर प्रदेश) मे स्थित है। इसकी सतह से 45 से० मी० की खुदाई से ताम्र-संचय प्रकार का एक मत्स्य भाला, कुछ गेरुये मृद्भांड तथा इनके ठीकरे मिले हैं और एक ठीकरे के स्लिप पर काले रंग से आड़े-तिरछे बने डिजाइन मिले। उल्लेखनीय मृद्भांड हैं—फैली बाढ़ के डिजाइन वाला मर्तबान, कटोरे, चिलमची (कुछ हत्थेदार व टोंटीदार भी थे) मिले एक बर्तन के टूटे तने के विषय मे लाल का मत है कि यह सपीठ थाली का भाग था तथा एक अन्य टुकड़ा गोल आधार का रहा होगा। मृद्भांडों की मुख्य विशिष्टता उनके उत्कीर्ण अलंकरण मे है। बहुत से मृद्भांडों के ऊपरी भाग

के बाहर की तरफ जोट दातेदार पट्ट, बिन्दुओ की पंक्तियाँ या रेखिका या त्रिभुजाकार छडो का समूह (रेखिका की पंक्तियो को बाँधते हुए) उत्कीर्ण हैं। अन्य शिल्प उपकरण हैं, गेंदे कूटक (Pounder), सान, चक्की, बालुकाश्म की रग-पट्टिका, एक चर्ट फलक और एक करकेतन का फलक है। भट्टे मे पकाये गये बहुत से मिट्टी के टुकडे व बैल (Bos indicus) की कुछ हड्डियां भी मिली है। काल के अनुसार सैपाई से प्राप्त मृद्भाडो की सैंधव प्रकारो से थोडी समानता है।

(vii) चिराद

सिन्हा तथा वर्मा ने विहार के सारन जिले मे स्थित गगा के किनारे बसे गाव चिराद मे उत्खनन कर ताम्राश्मीय से उत्तरऐतिहासिक काल का सास्कृतिक क्रम खोज निकाला है। यहाँ के नवाश्मीय काल से चावल, गेहूँ, मूँग, मसूर तथा बकरी, सुअर, हिरन, हाथी, दरयाई घोडा, मछली की हड्डिया, घोघो के अवशेप मिले हैं, जो कि उनके कृपि कर्म तथा भोजन सामग्री की जानकारी देते हैं। विभिन्न रगो के यशव, करकेतन, बादली पत्थर और सेलखडी, काचली मिट्टी तथा मिट्टी के बेलनाकार, नालाकार, त्रिभुजी और गोलाकार मनके भी मिले हैं। हड्डी और मिट्टी के बने लटकन और चूडियाँ भी प्रचलित थी। हड्डी का बना छोटा कुल्हाडीनुमा लटकन और कघी भी उपलब्ध हुई हैं। मृण्मूर्तियो मे गाय, चिडिया और साप बने है तथा चौकोर तावीज भी मिले है। सुअर तथा हिरन के आकार के पात्र-शवाधान भी देखने को मिले। पत्थर के बडे हथियारो की अपेक्षा लघु-अश्म जैसे चाकू की नोकें, और फलक प्रचुर मात्रा मे मिले है। इनके अलावा हड्डियो के (मुख्यत हिरन के सीग के) बने छेनी, गैंनी, घोटा, हथौडा, छड-कुल्हाडी, पार्श्व-खुरचनी, सिरा खुरचनी, नाकेदार सूई, सूआँ, दत कुरेदनी, बरमा, बाणाग्र, सानी आदि हथियार प्रचुर मात्रा मे मिलते हैं। एक निहाई भी मिली। घास और मिट्टी के बने गोलाकार मकानो की दीवारो पर दोनो ओर से मिट्टी का पलस्तर किया जाता था। कुछ खबो के निशान भी (मकानो के लिए) देखने को मिले। लाल भाड अधिक प्रचलित था। धूसर, काले और काले-लाल भांड भी मिले हैं। लेकिन चिराद के ताम्राश्मीय काल मे काले-लाल भाड बहुत प्रचलित थे। चमकीले लाल-भाड रगपुर के ताम्राश्मीय चमकीले लाल भांडो का स्मरण कराते हैं। पात्रो पर विविध प्रकार का चित्रण हुआ है। पात्रो के कठो पर रस्सी तथा पट्टी का डिजाइन आम है।

कालानुक्रम की दृष्टि से चिराद की नवाश्मीय सस्कृति का दक्षिणी भारत तथा बुर्जाहोम की नवाश्मीय सस्कृति से क्या सबध था, कहना कठिन है। यदि नवाश्मीय सस्कृति के लोगो ने ही सर्वप्रथम इस भूमि को जोता तो यह मानना पडेगा कि वे कही बाहर से यहाँ आये। क्या वे छोटा नागपुर से आये, या दक्षिणी-पूर्वी एशिया अथवा पूर्वी-एशिया से ? भारत की सीमा पर सर्वप्रथम (किली गुल मोहम्मद) नवाश्मीय समूह की तिथि 3400 ई० पू० है। लेकिन इनका चिराद की नवाश्मीय सस्कृति से क्या सबध रहा, इस पर कुछ कहा नही जा सकता।

यद्यपि इस स्थल से ताम्र उपकरण प्राप्त नही हुए पर सकालिया इसे ताम्राश्मीय सस्कृति समझते हैं और इसलिए इसे ताम्राश्मीय सस्कृति के अतर्गत देखा गया है।

(viii) राजार धीबी

राजार धीबी जिला वर्दवान की अजय घाटी मे स्थित है। कच्ची मिट्टी के मकान, हस्त-निर्मित मोटे धूसर या हलके लाल मृद्भाड और लघु-अश्म काल II की विशेषता हैं। शवाधान मे शव का पूर्वाभिमुखीकरण मिलता है। ये अपूर्ण शवाधान हैं क्योकि उनका ऊपरी भाग नही मिलता। काल II मे एक पक्की गली के पार्श्व मे दो मकान मिले है। मकानो मे सुव्यवस्थित विन्यास है। काले-लाल, चित्रित लाल और चमकीले लाल भाड मिलते है। चित्रण काले या सफेद रगो से किया गया है। घुटी मिट्टी का प्रयोग इनमे किया गया है और रचना कुशलता से की गयी है। डिजाइन ठोस त्रिकोण वाले, जालीदार, रेखा-छायाएँ और समचतुर्भुज, और सिग्मा और साथ मे लहरदार रेखाएँ वाले हैं। दासगुप्ता के मतानुसार फूलदार टोटी, पाँव वाले कुल्हड और हत्थेदार बर्तनो की अलीसार ह्युक के साथ सादृश्य है। इस काल मे विस्तारित द्वितीयक शवाधान मिलते हैं। शवाधानो से ताम्र चूडियाँ भी मिली हैं। इनके अतिरिक्त हड्डी के बाणाग्र और सूए भी मिले हैं। इस काल की रेडियोकार्बन तिथि 1012±120 ई० पू० निर्धारित की गयी है। यह समझा जाता है कि यह गणना हिन्दुस्तान की ही रेडियोकार्बन प्रयोगशाला मे की गयी, जबकि ऐसी अन्य प्रयोगशाला (फिजीकल रिसर्च लेबोरेटरी, अहमदाबाद के अतिरिक्त) नही है। अभी हाल मे हमे ज्ञात हुआ कि जादवपुर विश्वविद्यालय के किसी आचार्य ने यह गणना कोपेनहेगन की प्रयोगशाला मे करवायी थी, परन्तु लोगो मे भ्रम है कि शायद यह जादवपुर मे ही की गयी

थी। काल III में काल II के सदृश मृद्भाण्ड मिलते हैं। इस काल में घिसे हुए प्रस्तर-कुल्हाड़े व हड्डी के हथियार मिलते हैं। लौह उपकरण भी इस काल में लोकप्रिय हो गये थे।

अध्याय—3 सन्दर्भिका

इस अध्याय विषयक मुख्य ग्रन्थ :

D P. Agrawal	The Copper Bronze Age In India, 1971 (Delhi).
D P Agrawal and A Ghosh (Eds)	Radiocarbon and Indian archaeology 1973, (Bombay)
B and F R Allchin	Birth of Indian Civilisation, 1968 (Harmondsworth)
J. M Casal	Fouilles de Mundigak, 1961 (Paris)
J M Casal	Fouilles de Amri, 1964 (Paris)
J M Casal	La Civilisation de Indus et ses Enigmes, 1969 (Paris)
R W Ehrich	Chronology in Old World Archaeology 1965 (Chicago)
S Piggott	Prehistoric India, 1961 (Harmondsworth)
H. D Sankalia	Prehistory and Protohistory in India and Pakistan, 1962-63 (Bombay)
R. E M Wheeler	The Indus Civilisation, 2nd Ed., 1962, (Cambridge)

इस अध्याय विषयक लेख

A Ghosh	The Bull. of the National Inst of Sci of India, No I, p 37, 1952
B DeCardi	Antiquity, Vol 33, p 15, 1959.

F A Khan	.	Pakistan Archaeology, 1964-65
G F. Dales		Proc. of Amer Phil Soc., Vol 40, p 130, 1966
G. F Dales		in Chronology in Old World, Ed. R W Ehrich, 1965 (Chicago)
H D Sankalia	:	Artibus Asiae, Vol 26, p 312, 1963
J M. Casal		Pakistan Archaeology, 1965,65
B B. Lal		Antiquity, Vol 46, p. 282-287, 1972.

अध्याय 4

कालानुक्रम तथा विधि-निर्धारण

तकनीकी दृष्टि से ताम्र व प्रस्तर उपकरणो के उपयोग के काल को ताम्राश्मीय युग कहा जा सकता है। पाश्चात्य देशो में प्रचलित अर्थों मे यह नवाश्मीय व कास्य युग के बीच के सक्रमण काल के लिए प्रयोग किया जाता है। परतु भारत उपमहाद्वीप मे समरस विकास हुआ ही नही। समय के हिसाब से दक्षिण का नवाश्मीय काल हडप्पा सस्कृति का समकालीन है। धातुओ से भरपूर होते हुए भी, हडप्पा सस्कृति मे विस्तृत पैमाने पर चर्ट फलक प्रचलित थे। हडप्पा के पतन के पश्चात् चारो ओर ह्रास के चिह्न लक्षित होते हैं। इस सस्कृति के पश्चात् जन्मी सस्कृतियो मे मुख्यत प्रस्तर उपकरणो का ही प्रयोग किया गया, यद्यपि सीमित रूप मे धातु का उपयोग भी प्रचलित था। इस प्रकार भारत का उत्तर हडप्पाकालीन "ताम्राश्मीय युग" पद यहाँ के सामाजिक विकास के एक चरण का द्योतक नहीं है। इस पद का उपयोग यहाँ पर केवल विवरणात्मक रूप मे किया गया है। इस युग के अतर्गत हम प्रस्तर और ताम्र प्रयोग करने वाली सस्कृतियो का अध्ययन करेंगे।

"प्राग्हडप्पा" पद विवादग्रस्त है क्योकि इसके अतर्गत कुल्ली सस्कृति जैसी हडप्पा-समकालीन और अन्य इतर-हडप्पा सस्कृतियो को भी सम्मिलित किया जाता है। इसके अतिरिक्त, कालीबगन और मुडीगाक की तथाकथित प्राग्हडप्पा सस्कृतियाँ परस्पर एकदम भिन्न सास्कृतिक इकाइयाँ हैं और इनके बीच महत्वपूर्ण कालातर भी है। काल और क्षेत्र की दृष्टि से कोटदीजी (या सोथी या काली-बगनI) सस्कृति काफी विस्तृत रूप से फैली हुई थी, और इसमे क्षेत्रीय रूपांतरण भी हुए थे। हमे इस सभावना पर भी विचार करना चाहिए कि हडप्पा सस्कृति के मुख्य शहरो व चौकियो के नागरिक व शहरी रूप के युग मे भी सोथी सस्कृति हडप्पा सस्कृति का ही एक ग्रामीण पक्ष रही हो। प्राप्त तथ्यो से प्रतीत नही होता कि कालीबगन मे प्राग्हडप्पा सस्कृति का सहज परिवर्तन बाह्य आक्रमण या इस स्थल के पुन बसने के कारण हुआ। बल्कि ऐसा लगता है जैसे आजकल की तरह किसी म्युनिसिपल कारपोरेशन ने एक ग्राम को नागरीकरण के लिए

अपनी सीमा मे ले लिया हो। इस सदर्भ मे घोष का मत उल्लेखनीय है, "दो [सोथी और हडप्पा] प्रकार के मृद्भाडो के साथ-साथ प्राप्त होने से लगता है कि वे (सैंधव लोग) स्थानीय आबादी के साथ उन्ही स्थलो मे ही नही, संभवत उन्ही मकानो मे रहते थे।" सोथी के तथाकथित प्राग्हडप्पा मृद्भाडो के विषय मे घोष लिखते हैं, वे "वास्तव मे सरस्वती व दृषद्वती के सभी स्थलो मे (सतहो से) हडप्पा मृद्भाडो के साथ मिश्रित मिलते है।" उपर्युक्त तथ्य स्पष्ट करते हैं कि तथाकथित प्राग्हडप्पा सस्कृतियाँ, वस्तुत हडप्पा की नागरिक, मानकीत, एकरूपी, व्यापारिक सस्कृति की ही समकालीन ग्राम्य पक्ष थीं। इस मत के विपरीत थापड दो अन्य विकल्प प्रस्तुत करते हैं। (i) भूकम्प के कारण जो प्राग्हडप्पा आबादी निकटवर्ती क्षेत्रो मे चली गयी थी, कालातर मे कालीबगन के समृद्ध शहर हो जाने के कारण वही वापिस लौट आयी और कालीबगन की खुदाई के निम्नतम तल से उपलब्ध मृद्भाड इन्ही लोगो की देन है। (ii) हडप्पा सस्कृति के अन्दर ही ऐसे भी लोग थे जो प्राग्हडप्पा प्रकार के मृद्भाडो का प्रयोग करते थे। इस व्याख्या के आधार पर हडप्पा तथा मोहनजोदडो मे प्राग्हडप्पा मृद्भांडो का पाया जाना इस प्रकार समझा जा सकता है। थापड की इस वैकल्पिक व्याख्या से भी प्राग्हडप्पा व हडप्पा सस्कृतियो की समकालीनता की ही पुष्टि होती है। इस प्रकार इन तथ्यो की किसी अन्य ढग से व्याख्या हो ही नही सकती।

कदाचित् सिंध का नागरीकरण तीव्रगति से हुआ हो, लेकिन कोटदीजी का अति स्थूल परकोटे मे बधा गाँव नागरीकरण की दहलीज पर खडा था। संभवत कृषिजन्य अतिरिक्त उत्पादन, व्यापार की आवश्यकता व बाढ़ो के निरंतर प्रकोप ने इन लोगो को एक नये शहर के योजनाबद्ध निर्माण के लिए मजबूर कर दिया। उसके पश्चात् शहरी तौर तरीके व नये मानक निर्धारित किये गये। हडप्पा संस्कृति की भारतीय व आकस्मिक उत्पत्ति की यही व्याख्या हो सकती है। यह व्याख्या कालानुक्रम की समस्याओ को भी आसान बना देती है। अत हम इन तथाकथित प्राग्हडप्पा सस्कृतियो को, उत्तर पश्चिमी इतर हडप्पा संस्कृतियो के अन्तर्गत रखेंगे और इनके कालानुक्रम की विवेचना भी अलग से करेंगे। (परतु आरेखो व तालिकाओ मे बहु-प्रचलित प्राग्हडप्पा शब्द का ही प्रयोग किया गया है।)

I. काल निर्धारण की समस्याएँ

सर्वप्रथम पिग्गट ने पश्चिमी पाकिस्तान की बिखरी हुई पुरातात्विक

सामग्री का विशद सश्लेषण किया था। बलूचिस्तान की झोब सस्कृति के विभाजन को समझने के लिए उसने मैकाउन का ईरानी समीकरण प्रयुक्त किया। इस समीकरण के अनुसार ईरान की भाँति ही, झोब संस्कृति के उत्तरी क्षेत्र मे लाल मृद्भाड संस्कृति व दक्षिण क्षेत्र मे पाडु मृद्भाड संस्कृति फैली हुई थी। डी कार्डी की हाल की खोजो मे क्वेटा, दक्षिण-पश्चिम व सिंध मे भी टोगाउ प्रकार के लाल मृद्भाड के मिलने से उपर्युक्त वर्गीकरण निर्मूल सिद्ध हो जाता है। डी कार्डी ने इसीलिए कहा है कि बलूचिस्तान में यह वर्गीकरण गलत हो जाता है, क्योकि लाल मृद्भाड मध्य कलात तक मिलते हैं, दूसरी ओर पाडु मृद्भाड क्वेटा, दक्षिण-पश्चिम मे ही नही, बल्कि सिंधु की ओर तक मिलते हैं। बहुत से स्थलो मे, लाल और पाडु दोनो ही प्रकार के मृद्भाडो मे एक सा अलकरण किया गया है। हाल मे डी कार्डी और फेयरसर्विस ने दोनो संस्कृतियो के सहज सम्बन्धो के और भी सूत्रो को खोज निकाला है। मुडीगाक और आम्री के उत्खनन मे भी उपर्युक्त तथ्यो की ही पुष्टि हुई है।

काल निर्धारणार्थ फेयरसर्विस ने साख्यिक पद्धति का उपयोग किया है। इसके अनुसार केवल एक काल के स्थलो से प्राप्त मृद्भाडो का मात्रात्मक विश्लेपण किया गया। इस प्रकार उसके द्वारा निर्धारित प्रत्येक "काल" मृद्भाडो के प्रकारो की साख्यिकीय प्राप्ति पर निर्भर करता था। इस पद्धति को अपनाने के कारण फेयरसर्विस को गभीर कठिनाइयो का सामना करना पड़ा। उदाहरणार्थ किली गुल मोहम्मद काल *II* को विशिष्ट रूप से हस्तनिर्मित मृद्भाड का युग माना गया। इस काल मे 12 मृद्भाड प्रकारो मे से 10 चाक-निर्मित निकले। चाइल्ड ने शायद इसीलिए अमरीकी पुरातत्व के अति वैज्ञानिकीकरण को अवाछनीय बताया है। डेल्स आदि ने भी फेयर-सर्विस की इस पद्धति की काफी आलोचना की। परतु फेयरसर्विस ने इन आलोचनाओ के कारगर उत्तर दिये हैं। इस क्षेत्र मे सास्कृतिक परिवर्तनो की व्याख्या करने के लिए उसने एक सास्कृतिक मानवशास्त्री दृष्टिकोण का उपयोग किया है। उसने हड़प्पा सस्कृति के प्रादुर्भाव से पतन तक के विकास को पाँच सास्कृतिक-आर्थिक चरणो मे बाँटा है। उसकी पद्धति काल-निर्धारण की दृष्टि से इतनी उपयुक्त नही, जितनी पुरातात्विक सामग्री को समझने के लिए है।

इन सस्कृतियो का काल निर्धारण मुख्यत दो प्रकार के प्रमाणो पर आधारित है। (i) मेसोपोटामिया और ईरान से संपर्क और (ii) रेडियोकार्बन

तिथियाँ । इस विषय मे व्हीलर की यह चेतावनी ध्यान मे रखनी आवश्यक है कि इस क्षेत्र के अनेक जन-समूहो अथवा सस्कृतियो मे इतनी अधिक अननुमेय अपरिवर्त्तनशीलता है कि यह निश्चित करना बडा कठिन है कि कहाँ तक सास्कृतिक समानताएँ कालानुक्रमिक समीकरणो की द्योतक हैं । इन कठिनाइयो के कारण डेल्स ने निम्नलिखित तथ्यो पर आधारित स्तरविन्यास को एक सरल एव तार्किक पद्धति का प्रयोग किया है । (1) मृद्भाड प्रारूपो का प्रथम आविर्भाव, (ii) केवल मृद्भाडो की अपेक्षा सभी प्रकार की उत्खनित सामग्री का आपेक्षिक काल-वितरण, और (iii) सपूर्ण पुरातात्विक सामग्री के आधार पर काल विभाजन । इस पद्धति की उपयोगिता पर कोई सशय नही, परतु अधिकाश क्षेत्रो पर प्रकाशित विवरणो के अभाव मे सश्लेषण के लिए डेल्स की पद्धति का उपयोग करना कठिन हो जाता है । डेल्स ने वैसे भी बहुत से स्वय निर्धारित काल-प्रभेदो की निरपेक्ष तिथियाँ नही दी हैं ।

यहाँ हम पहले मेसोपोटामिया और ईरानी पुरातात्विक सपर्कों और सादृश्य के आधार पर कुछ निरपेक्ष तिथियाँ निर्धारित करने का प्रयास करेंगे । हिस्सार एक बहुत महत्वपूर्ण क्षेत्र है जहाँ से प्राप्त सामग्री को आधार मान कर बलूचिस्तान के अनिश्चित सास्कृतिक कालानुक्रम को समकालीन ईरान से जोडकर निश्चित किया जा सकता है। पुरातात्विक व रेडियोकार्बन प्रमाणो द्वारा हिस्सार काल IA को 3700 ई० पूर्व व हिस्सार IB का प्रारभ 3500 ई० पूर्व माना जा सकता है । दूसरे सिरे पर ईरान की तिथियाँ मेसोपोटामियाँ के सपर्कों पर निर्भर करती हैं । उबैद काल उत्तर-पश्चिम मे पिसडेली को लगभग उबैद स्तर का मानकर (परवर्ती उबैद, 4000 ई० पूर्व) पश्चिम से पूर्व की ओर बढते हुए सियाबाद, गियान, स्यालक और हिस्सार तक एक सास्कृतिक सादृश्य दृष्टिगोचर होता है । रेडियोकार्बन तिथियो के आधार पर पिसडेली सस्कृति का काल लगभग 3800 ई० पूर्व व हिस्सार VII का लगभग 2150 ई० पूर्व है पिसडेली सस्कृति हिस्सार IA और स्यालक काल III की समकालीन है । और हसानलू VII हिस्सार III भी प्राय समकालिक है ।

निम्न विवेचना मे तिथि निर्धारण के लिए पुरातात्विक व रेडियोकार्बन प्रमाणो को अलग-अलग रखने का प्रयत्न किया गया है ।

II उत्तर-पश्चिमी इतर-हडप्पा (प्राग्हडप्पा) संस्कृतियाँ

क—पुरातात्विक प्रमाण

भारत-पाक उपमहाद्वीप के उत्तर-पश्चिमी पहाड़ी क्षेत्र की सस्कृतियो

का यहाँ हम केवल कालानुक्रम-सर्वेक्षण करेंगे जो अफगानिस्तान से प्रारभ किया जायगा ।

सर्वप्रथम हम दक्षिणी अफगानिस्तान मे स्थित देह मोरासी घुंडई और मुडीगाक के विभिन्न कालो की सास्कृतिक विशिष्टताओ का सक्षेप मे वर्णन करने के पश्चात् इन स्थलो की बलूचिस्तान के स्थलो मे तुलना करेंगे ।

मोरासी काल I मे कुछ अपरिष्कृत वर्तन, जिन्हे "सईद कला" मृदभाड का नाम दिया गया है, मिले । अन्य कोई सास्कृतिक अवशेष यहाँ नही मिले । पर काल II मे यहाँ एक छोटे ग्राम के रूप मे वस्ती प्रकट हुई । इस काल के मुख्य मृद्भाड पजवई दूधिया-पीली-सतह व मैवड-लाल-सतह है । इस काल के ही कुछ मृद्भाडो की सदृश्यता स्यालक काल III और हिस्सार II से है । ताम्र की केवल कुछ सुइयाँ व नलियाँ ही मिली हैं । इनके अतिरिक्त इसी काल से झोव मृण्मूर्तियाँ व कई खाने वाली मुहरें भी मिलती हैं । इस काल के वर्तुला-कार चषक की तुलना मुडीगाक काल II मे की जा सकती है । काल III के मुख्य लक्षण हैं, ईंटो से बनी कब्र और पशमूल लाल स्लिप वाले मृद्भाड । काल III मे बस्ती उजडने के कुछ बाद काल IV के निक्षेप से ताम्र की खानेदार मोहर और लहरदार मृद्भाड मिले ।

कजाल ने मुडीगाक से उत्खनित सामग्री को सात कालो मे बाँटा है । काल I मे एक छोटी सी बस्ती व हस्तनिर्मित मृद्भाड मिलते हैं । इसके शीघ्र पश्चात् ही प्रकाल I_2 मे चाकनिर्मित मृद्भाड, ताम्र व चित्रित साड की लघु मूर्तियाँ भी उपलब्ध हुई हैं । ताम्र उपकरण मानवाकार मृण्मूर्तियाँ, प्रस्तर की नोकें व फलक, पकी मिट्टी के चक्र, हड्डी का सूआ और पत्थर की कुदाली, काल II की विशेषताएँ है । काल III मे सिंधु का प्रभाव अधिक लक्षित होता है । हड्डी व प्रस्तर मोहरें, तथा पकी मिट्टी की नालियाँ उल्लेखनीय हैं । हत्थे के लिए छेदवाली कुल्हाडी और वसूला भी मिले । काल IV मे एक महल, एक मदिर व दो परकोटो से घिरा 1 कि० मी० घेरे वाले एक दुर्ग के अवशेष इस बात के प्रमाण हैं कि यह स्थल नागरीकरण की ओर अग्रसर होने लगा था । इसी काल से झोव प्रकार की लघुमूर्तियाँ भी मिली हैं । हस्त-निर्मित मृद्भाड व न्यून सख्या मे ताम्र उपकरण काल V के ह्रास के द्योतक हैं । सूक्ष्म डिजाइन वाले लाल मृद्भाड काल VI की विशिष्टताएँ हैं, तो लोह उद्योग काल VII की ।

ख—डेल्स के चरण C सस्कृतियो के परस्पर सम्बन्ध

चाक ताम्र और बस्तियो का आविर्भाव डेल्स के चरण C की पहचान है ।

डेल्स ने राना घुंडई I व सूर जगल काल I चरण को C मे रखा है। परतु न तो यहाँ स्थायी बस्तियाँ थी और न चाकनिर्मित मृद्भाड ही।

उपर्युक्त विशिष्टताओ को देखते हुए चरण C मे मुंडीगाक I (अफगानिस्तान), अजीरा II तथा क्वेटा व झोब के अन्य स्थलो को रखा जा सकता है। लेकिन मुंडीगाक I के हस्तनिर्मित मृद्भांडो व अर्द्ध यायावर जीवन की साम्यता राना घुडई I से ठीक बैठती है। यद्यपि मुख्यत हड्डी व प्रस्तर के हथियार प्रचलित थे, फिर भी मुंडीगाक I_2 से चाकनिर्मित मृद्भाड व धातु के फलक तथा प्रकाल I_4 से कुछ दूसरी वस्तुएँ भी मिली हैं। किलीगुल मोहम्मद के काल II व III (डेल्स इन्हे एक ही काल के अतर्गत रखते हैं) के 22 मृद्भांड प्रकारो मे से 17 हस्तनिर्मित थे। इन कालो के मृद्भाडो की विशिष्टताएँ हैं, बिंदु चिह्नित झूलते त्रिकोण और बिंदु चिह्नित अष्ट अथवा षष्ट कोण। यही डिजाइन हिस्सार IC, बाकुन III A, स्यालक III 1-5 से भी मिले हैं। इस क्षेत्र मे सर्वप्रथम मुडीगाक काल I के द्विरंगी मृद्भाडो मे पट्ट डिजाइन देखने को मिलती हैं। इनके अतिरिक्त अन्य विशेषताएँ हैं, मृद्भाडो की सतहो के निरूपण मे विशेष दक्षता और टोकरी चिह्नित आर्द्र भाड (Wet Ware)। मुडीगाक काल I से मिलने वाले टोगाउ A मृद्भाड शैलीगत दृष्टि से परवर्ती अजीरा II और स्यालक III 4-5 काल के सदृश्य हैं जो कि मुडीगाक 1-5 और हिस्सार IC के प्रकार के हैं। हत्थेदार अनगढ पत्थर के बाट भी इस चरण मे मिलते हैं। समानान्तर धारो वाले चकमक फलक हिस्सार I, स्यालक III, और अजीरा II से उपलब्ध हुए हैं। साडो की मृण्मूर्तियाँ झोब घाटी के सकलनो के अतिरिक्त केवल मुडीगाक की खुदाई से ही प्राप्त हुई हैं, जबकि राना घुडई से कोई नही मिली। डी कार्डी के मतानुसार साड की मृण्मूर्तियाँ स्यालक काल II और अजीरा मे भी मिली हैं। अलाबास्टर पात्र मुडीगाक I और स्यालक III 5-7 कालो मे प्रचलित थे। काले लवे से त्रिकोण, धारीदार त्रिकोण के जालीदार पट्ट आदि कुछ डिजाइनो के आधार पर डी कार्डी अजीरा काल II की तुलना स्यालक काल I से करती हैं। तुलनात्मक दृष्टि से स्यालक III का सादृश्य इस चरण से अधिक है, परतु स्यालक मे चाकनिर्मित मृद्भांड काल II तक प्रकट नही हुए।

उपर्युक्त सामग्री के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि अधिकाश अवशेष स्यालक III 4-5 और हिस्सार I के B और C चरणों के अनुरूप हैं। अत चरण C का काल लगभग 3300 से 3000 ई० पूर्व निर्धारित किया जा सकता है। चरण C के स्थल मुख्यत अफगानिस्तान व उत्तर और मध्य

6

बलूचिस्तान मे हैं । इससे अगले चरण मे न केवल अफगानिस्तान, बलूचिस्तान बल्कि सिंध मे भी स्थायी बस्तियाँ व द्विरगी तथा बहुरगी मृद्भाड प्रकट होने लगते हैं । आम्री के काल I और II के सास्कृतिक अवशेषो को हम डेल्स के चरण D के अतर्गत लेंगे ।

कजाल मे सिंध मे आम्री की उत्खनित सामग्री को तीन कालो मे बाँटा है । प्रकाल I आम्री सस्कृति, काल II अतर्वर्ती व काल III हडप्पा सस्कृति का है । भडार के घडे, हस्त-निर्मित मृद्भाड, बोलापत्थर और कुछ ताम्र के टुकडे आदि IA काल की विशिष्टताएँ हैं । कुछ ठीकरे टोगाउ C के सदृश्य हैं । कच्ची ईंटो के मकान व विविध प्रकार के डिजाइन काल IB की विशिष्टताएँ हैं । चाक-निर्मित मृद्भांड, मिट्टी व पत्थर से बने मकान (कुछ खोखले चबूतरे वाले) काल IC मे मिलते हैं । एक ठीकरे मे अकिन कुबडे साड व कुछ अन्य पशु रूप डिजाइन अतिम काल ID का प्रभेद करते हैं । इससे पूर्व के डिजाइन केवल ज्यामितिक हैं । काल I के विविध भागो मे विकास की निरतरता का आभास होता है (आरेख 4) । काल I के पश्चात् टीले को समतल स्तर बनाकर ही, काल II की बस्ती शुरू होती है । लेकिन कोई सास्कृतिक विच्छेद नजर नहीं आता । आम्री मृद्भाडो के साथ-साथ हडप्पा किस्म के ठीकरो के सहअस्तित्व के कारण काल II को अतर्वर्ती काल कहा जा सकता है । काल III पूर्णरूपेण हडप्पा सस्कृति का है ।

अब हम प्रारभिक सस्कृतियो के कालानुक्रमिक सह-सबधो पर प्रकाश डालेंगे । कालीबगन के अतिरिक्त राजस्थान के बहुत से स्थलो से सोथी मृद्भाड मिले है । बहावलपुर और कोटदीजी मे स्थायी बस्ती के अवशेष मिलते हैं । यद्यपि द्विरगी व बहुरगी मृद्भाडो के अनेक आकार और डिजाइन समान हैं, तथापि क्षेत्रीय विभाजन की दृष्टि से (डेल्स का मत पिछले अध्याय 2 मे दिया जा चुका है) द्विरगी अलकरण निचले सिंध के मैदान (आम्री) और दक्षिणी गिरिपादो मे केन्द्रित था, तो बहुरगी अलकरण नाल के उच्च स्थलो मे । सभवत बहु व द्विरगी अलंकरण और कुबडे साड का व्यापन यहाँ अफगानिस्तान से हुआ हो । आम्री और नाल से पशु व मानवी लघु मूर्तियाँ उपलब्ध नही हुईं, जबकि मुडीगाक काल II से मिट्टी की नारी लघु मूर्तियाँ मिली हैं । जैसे पहले भी कहा जा चुका है कि डेल्स का कथन है, यद्यपि शुरू से ही पहाडी और मैदानी बस्तियो मे एक दूसरे का प्रभाव मालूम देता है, लेकिन मूलत वे विभिन्न परंपराओ की उपज थे । दोनो मे से किसी का भी उद्गम अभी तक निश्चित

नहीं है। वैसे बहु-रंगी परंपरा का स्रोत मुंडीगाक होते हुए, पश्चिम की ओर खोजा जा सकता है।

मुंडीगाक काल I 4-5 से चरण C के अंत में द्विरंगी मृद्भांड मिलने लगते हैं। पिगट और गॉर्डन के मतानुसार नाल की कब्रगाह उसकी बस्ती से बाद की है। लेकिन नाल कब्रगाह के सदृश, बहुरंगी अलंकरण और छल्लेदार आधार वाले कटोरे, मुंडीगाक काल IV में मिलते हैं और इस प्रकार ये नाल के D और F क्षेत्र के बाद के स्तरों से पूर्ववर्ती माने जाने चाहिए। दूसरी ओर नाल के मत्स्य डिजाइन वाला एक कटोरा मुंडीगाक काल IV से भी उपलब्ध हुआ है। छल्लों से अलंकृत धूसर कटोरे, नाल के बहुरंगी मृद्भांड और केची बेग (स्याह स्लिप पर सफेद) मृद्भांड के बीच संबंध इंगित करते हैं। अंजीरा काल III से टोगाउ D ठीकरों के साथ नाल जैसे बहुरंगी मृद्भांड मिले हैं। अंजीरा काल III के मकानों की नींव में अनगढ़ से चौकोर पत्थरों का प्रयोग किया गया है। स्याह में इसी चरण का बना एक चबूतरा मिला है। नाल की खुदाई से प्राप्त एक प्याला मुंडीगाक काल IV के सदृश है और F क्षेत्र का एक बर्तन आकार और अलंकरण में संदात मृद्भांड के समरूप है।

जैसा कि ऊपर भी बताया गया है आम्री काल IA की विशिष्टताएँ हस्तनिर्मित मृद्भांड (थोड़े से चाक-निर्मित भी), ताम्र के टुकड़े, व चर्ट फलक हैं। इस काल की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि टोगाउ C कालीन ठीकरे हैं, जो कि मध्य और उत्तरी बलूचिस्तान के संबंधों की सूचक हैं। सिंधु सभ्यता के कुबड़े सांड का चित्रण आम्री के अन्तिम चरण I D काल से मिला है। आम्री काल II व कोटदीजी में द्विरंगी मृद्भांड का चलन था। यद्यपि कोटदीजी व कालीबंगन के सम्पूर्ण अवशेषों में एकदम एकरूपता नहीं है तो भी कोटदीजी व कालीबंगन प्राग्हड़प्पा मृद्भांडों में सगोत्रता स्पष्ट है। ये मृद्भांड "सोथी", "कालीबंगन" और "कोटदीजी" आदि कई नामों से प्रसिद्ध हैं। जैसे पहले भी स्पष्ट किया जा चुका है कि ये तथाकथित प्राग्हड़प्पा ग्रामस्थल, हड़प्पा संस्कृति के समकालीन थे, अथवा इस नागरिक संस्कृति के ही ग्रामीण पूरक थे। मुंडीगाक काल II और III में ताम्र अपेक्षाकृत अधिक मिलता है जैसे-दो मरगोलवाली सूइयाँ, नाकेदार सूइयाँ, हत्थे के लिए छेदवाली कुल्हाड़ियाँ और बसूला (स्यालक III के सदृश) आदि। बहुत अच्छे बने हुए समानांतर धारों वाले प्रस्तर फलक भी इस काल में काफी प्रचलित थे। मुंडीगाक काल IV और कोटदीजी से "लौरेल" पर्णाकार के बाणाग्र मिले हैं। इसी चरण से चित्रित कुबड़े सांड व नारी की लघु मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। सिंध व बलूचिस्तान

संस्कृतियो से भी पूर्व, कुवडे साड की लघु मूर्तियां, मुंडीगाक काल III से मिलती है। इसी चरण से समकेन्द्रीय डिजाइनवाली हड्डी व प्रस्तर की मोहरें भी प्राप्त हुई हैं, जबकि धातु की कोई मोहर नही मिली।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि फल-धारक बर्तन, धूसर मृद्भाड, पकी मिट्टी की नारी लघु मूर्तियां, ताम्र की हत्थे के लिए छेदवाली कुल्हाडियां और मोहरें आदि अवशेषो के आधार पर इस काल को हिस्सार II और स्यालक III के समकक्ष रखा जा सकता है। अत डेल्स के चरण D का काल लगभग 3000 से 2700 ई० पूर्व के बीच निर्धारित किया जा सकता है।

ग. वस्तियो मे किलेबन्दी का प्रादुर्भाव

गांवो के परकोटे वाली वस्तियो मे विकसित होने के काल को डेल्स के चरण E के अतर्गत रखा गया है। मुडीगाक से काल IV मे एक परकोटे, एक प्रासाद व एक मन्दिर के अवशेष मिले हैं। कोटदीजी की वस्ती भी परकोटे से घिरी थी। इसमे बहुरगी शैली का स्थान लाल सतह पर काले चित्रो वाले भाडो ने ले लिया। यद्यपि लिपि का प्रादुर्भाव अभी नहीं हुआ था तो भी मुडीगाक काल IV मे मृद्भाडो पर कुम्हारो के अपने विशिष्ट निशान बने मिलने लगते हैं। अव पूर्वकालीन ज्यामितिक डिजाइनो के स्थान पर नैसर्गिक व वक्ररेखीय डिजाइन अकित होने लगे, जैसा कि दवसदात काल III और मुंडीगाक IV मे स्पष्ट हो जाता है। बुकरानियम डिजाइनो की प्राप्ति के आधार पर, निंदोवारी के कुल्ली स्तर, को नाल के परवर्ती कव्रगाही स्तर व मुंडीगाक काल IV को समसामयिक कहा जा सकता है। इसी प्रकार कुवडे साडो की लघुमूर्तियां, दवसदात III, आम्री III, कोटदीजी I और नाल के परवर्ती कव्रगाही स्तरो के वीच सहसवध दर्शाती हैं। वैसे ये लघुमूर्तियां काल III से ही मिलने लगती हैं। कुल्ली सस्कृति का काल निर्धारण करना भी एक समस्या है। एक ओर गोर्डन व पिगट हडप्पा व कुल्ली संस्कृति को समकालीन समझते हैं तो दूसरी ओर व्हीलर कुल्ली को पूर्ववर्ती और प्राग्हडप्पा मानते हैं। पर अव कार्बन तिथियो ने अपना मत पिग्गट के पक्ष मे देकर इस विवाद को समाप्त कर दिया है। निंदोवारी से, कुल्ली मृद्भांड के साथ बुकरानियम चित्रित, नाल के प्रकार के इतर-बहुरगी मृद्भाड मिले हैं। दूसरी ओर बहुत से मृद्भांडो के आकार व डिजाइन आम्री व नाल सस्कृतियो मे एक से हैं। इन प्रमाणो से प्रतीत होता है कि नाल, आम्री और कुल्ली कम से कम कुछ समय के लिए समकालीन संस्कृतियां थी।

घ मिट्टी के कुटी-मॉडलो का तिथि निर्धारण मे महत्व

अलकरण की दृष्टि से इन कुटी-मॉडलो अथवा खानेदार पात्रो को तीन वर्गों मे बाँटा जा सकता है। प्रथम वर्ग मे, वक्ररेखीय व ज्यामितिक डिजाइन के खाने वाले माडल सिंध व बलूचिस्तान मे मिलते। इनमे भी बलूचिस्तान के खानेदार पात्र गोल हैं तो सिंध के चौकोर व पसलीदार (Ribbed) है, और वे बने भी भिन्न पदार्थ के हैं। हाल मे फारस की खाडी के उम्मअन-नार के सर्गोरा शवाधान (काल II) से ये पात्र मिले हैं। इस स्थल से प्राप्त कुल्ली के प्रकार के अवशेष इन दोनो सस्कृतियो के मध्य व्यापारिक संपर्क के द्योतक हैं। इस प्रमाण द्वारा पिगट के इस मत की पुष्टि होती है कि इन खानेदार पात्रो का मकरान से पश्चिम को निर्यात सुगंधित लेप भेजने के लिए हुआ करता था। द्वितीय वर्ग के पात्रो मे वास्तुशिल्पीय या जीव-वनस्पति दृश्य अंकित हैं, तो तृतीय वर्ग मे पौराणिक दृश्य। उपर्युक्त दोनो ही प्रकार के उदाहरण सिंध और बलूचिस्तान मे नही मिलते।

प्राप्त कुटी-मॉडल—पात्रो की सूची

वर्ग	सिंध	बलूचिस्तान	द० पू० ईरान	एलाम और लूरिस्तान	मेसोपोटामिया	सीरिया
I	2	4	1	6	5	2
II	0	0	2	1 (सूसा)	5	1
III	0	0	0	0	6	6

ङ समान सास्कृतिक विशेषक और काल निर्धारण

दब सदात II, नाल (बस्ती से), कुल्ली और मेही से लाजवर्द मिला है। मरगोल सिरे वाली ताम्र सुई का तिथि निर्धारण के लिए विशेष उपयोग नहीं है। इसी प्रकार इस चरण की चित्रित या उत्कीर्ण डिजाइनो वाली खोखली, मिट्टी की गेंदे बहुत से स्थलो मे पायी जाती हैं।

मुडीगाक IV और सिंधु घाटी के मध्य, काल-साम्य दर्शाने वाली अन्य वस्तुएँ हैं पकी मिट्टी की चूहेदानियो और प्रस्तर-मुड, मुडीगाक IV, के प्रस्तर निर्मित मानव-मुड की तुलना मोहनजोदड़ो के HR क्षेत्र के, दक्षिण की गली

के AI मकान से, प्राप्त मूर्ति से की जा सकती है। इसके सिर पर बँधे फीतो, सफाचट मूँछो, दाढी व कानो के निरूपण मे स्पष्ट सादृश्य है।

मुडीगाक और नाल जैसी धातु की खानेदार मोहरो के आधार पर चरण E का संबन्ध हिस्सार IIB काल से किया जा सकता है। पखेनुमा हाथ वाली मुंडीगाक IV की मिट्टी की लघुमूर्ति, बाकुन A जैसी है। मृद्भाडो पर पशु चित्रण शैली की सगोत्रता मूसा D और उम्म-अन-नार से है। उत्कीर्ण डिजाइन वाले खानेदार पात्र या कुटी-माडल मेसोपोटामिया के "अर्ली डायनैस्टी" (Early Dynasty) के स्थानो के सदृश है। पश्चिमी एशिया के उपर्युक्त सम्बन्धो के आधार पर डेल्स के चरण E का काल 2700 से 2400 ई० पूर्व रखा जा सकता है।

अधिकाश सांस्कृतिक विशेषको का पश्चिम मे पहले पाया जाना इस बात का प्रमाण है कि पूर्व ने इन विशेषको को पश्चिम से पाया। अत इन सास्कृतिक लक्षणो का कालानुक्रम अफगानिस्तान की अपेक्षा ईरान मे, बलूचिस्तान की अपेक्षा मुंडीगाक के स्थलो मे पूर्ववर्ती होगा। फलत मेसोपोटामिया के किसी प्राचीन विशेषक की बलूचिस्तान मे अपेक्षाकृत परवर्ती तिथि होगी। लेकिन सिंध से, व्यापार द्वारा, मेसोपोटामिया पहुँची वस्तुएँ दोनो देशो के बीच काल-साम्य दर्शाती हैं।

च इतर-हड़प्पा संस्कृतियो की कार्बन तिथियाँ

ऊपर हमने मुख्यत पुरातात्विक प्रमाणो के आधार पर उपमहाद्वीप के उत्तर पश्चिम की इतर-हडप्पा ताम्राश्मीय सस्कृतियो का कालानुक्रम निर्धारित करने का प्रयत्न किया। अब हम कार्बन तिथियो (तालिका - 1 आरेख—8) के आधार पर इन इतर-हडप्पा सस्कृतियो का काल निर्धारण करने का यत्न करेंगे।

सर्वप्रथम हम अपना सर्वेक्षण अफगानिस्तान की रेडियोकार्बन तिथियो से प्रारम्भ करेंगे। देह मोरासी घुंडई की (सभवत काल II की) मुंडीगाक काल III के समकक्ष केवल एक कार्बन तिथि P—1493, 2596±54 ई० पूर्व है जबकि मुडीगाक से कई कार्बन तिथियाँ हैं मुडीगाक की GSY—50,-51, -52,-53, कार्बन तिथियो के सदूषण के कारण हम उन पर विचार नही करेंगे। काल निर्धारण के लिए डेल्स ने इन स्थलो से पुन नये नमूने एकत्र किये जिनमे से हमने तीन नमूनो का काल निर्धारण किया है। सबसे प्रारभिक नमूना

TF—1129, 3145±110 ई० पूर्व काल I का है, जिसमे एक मानक विचलन (Standard Deviation) त्रुटि जोडने से, मु डीगाक की प्रथम तिथि लगभग 3250 ई० पूर्व निर्धारित की जा सकती है। C—815, 2807± 309 ई० पूर्व तिथि मे त्रुटि बडी होने के कारण हम काल II के लिए मध्यवर्ती तिथि लगभग 2800 ई० पूर्व ही मानेंगे। TF—1131 नमूने की तिथि के अनुसार काल I का अत लगभग 2800 ई० पूर्व हो गया। यदि P—1493, 2596±54 ई० पूर्व (मोरासी काल II) की भी गणना की जाय, तो मुंडीगाक काल III की तिथि लगभग 2600 ई० पूर्व निर्धारित होती है, क्योंकि मोरासी II और मु डीगाक एकरूप सस्कृतियाँ थी। उसकी पुष्टि आम्री के काल IC की तिथि TF—863, 2665±110 ई० पूर्व से होती है। उपर्युक्त तिथियो की आतरिक सगति के आधार पर आम्री IB को लगभग 2800 ई० पूर्व रखा जा सकता है, TF—864, 2900+115 ई० पूर्व से एक मानक विचलन त्रुटि घटाने से यह तिथि निकलती है। दब सदात काल I की कार्बन तिथि UW—59, 2510±70 ई० पूर्व है। 100 वर्ष के एक मानक विचलन को जोड दिया जाय तो इसकी तिथि लगभग 2600 ई० पूर्व निर्धारित होती है।

पुरातात्विक प्रमाणो के आधार पर अग्रवाल ने डेल्स के चरण C की सस्कृतियो का काल निर्धारण लगभग 3300-3000 ई० पूव किया था, जिसकी पुष्टि अब कार्बन तिथि आधारित काल-विस्तार (लगभग 3200-2800 ई० पूर्व) द्वारा होती है। चरण D का काल जिसमे मु डीगाक III (मु डीगाक काल II को काल III का सक्रमण समझते हुए) और आम्री I आते हैं, लगभग 2800-2600 ई० पूव निर्धारित किया जा सकता है।

डेल्स के चरण E के अतर्गत प्राग्हड़प्पा ही नही बल्कि हडप्पा की समकालीन सस्कृतियाँ भी शामिल की जा सकती हैं, क्योंकि ये नागरीकरण की देहलीज पर पहुँच चुकी थी। इनमे से कुछ हडप्पा की समकालीन ग्रामीण पूरक सस्कृतियाँ थी।

कोटदीजी (सोथी) एक व्यापक सस्कृति थी, जिसके पूर्वी परिधीय क्षेत्र मे कुछ परिवर्तन देखने को मिलता है। इसलिए समय की दृष्टि से केन्द्रीय हडप्पा और परिधीय कोटदीजी समकालिक हुए। परन्तु हमारे विचार से यदि कोटदीजी हडप्पा की समकालीन ग्रामीण सस्कृति थी तो इनके बीच कालिक व्यापन (Temparale overlap) पूरे क्षेत्र मे होना स्वाभाविक ही है। यहाँ पर यह

प्राग्हड़प्पा व हड़प्पा संस्कृति स्थलों की कार्बन तिथियाँ

स्थल	कार्बन तिथियाँ ई० पूर्व (अर्धायु 5730 वर्ष)	स्थल	कार्बन तिथियाँ ई० पूर्व (अर्धायु 5730 वर्ष)
आम्री (पाकिस्तान)	TF-863, 2665±100	गाली गाई (पाकिस्तान)	R-378a, 1923± 55
	TF-864, 2900±115		
दब सदात (पाकिस्तान)	UW 60, 2200±165	मोहनजोदडो (पाकिस्तान)	PF-75, 1755±115
	P-523, 2200± 75		P-1182A 1865± 65
	L-180E, 2200±360		P-1176, 1965± 60
	L-180C, 2220±410		P-1178,A 1965± 60
	P-522, 2550±200		P-1180, 1995± 65
	L-180B, 2320±360		P-1179, 2085± 65
	UW-59, 2510± 70		P-1177, 2155± 65
कोटदीजी (पाकिस्तान)	P-195, 2100±140	कालीबगन काल II (राजस्थान)	TF-143, 1665±110
	P-180, 2250±140		TF-946, 1765±105
	P-179, 2330±155		TF-149, 1830±145
	P-196, 2600±145		TF-150, 1900±105
निआई बूथी (पाकिस्तान)	P-478, 1900± 65		TF 605, 1975±110
मुंडीगाक (अफगानिस्तान)	TF 1129,3145±110		P-481, 2050± 75
	TF-1132,2995±105		TF-153, 2075±110
	TF-1131,2755±105		TF-25, 2090±115
निंदोवारी दाब (पाकिस्तान)	TF-862, 2065±110		TF-942, 2225±115
कालीबगन काल I (राजस्थान)	TF-154, 1820±115		TF 152, 1770± 90
	TF-156, 1900±110		TF-142, 1790±105
	TF-165, 1965±105		TF-141, 1860±115
	TF-161, 2095±105		TF-139 1930±105
	TF-240, 1765±115		TF-151, 1960±105
	TF-162, 2105±105		TF-948, 1980±100
	TF-241, 2255± 95		TF-147, 2030±105
	TF-157, 2290±120		TF-145, 2060±105
	TF-155, 2370±120		TF-608, 2075±110
			TF-947, 1925± 90
			TF-163, 2080±105
			TF 607, 2090±125
			TF-160, 2230±105

स्थल	कार्बन तिथियाँ ई० पूर्व (अर्धायु 5730 वर्ष)	स्थल	कार्बन तिथियाँ ई० पूर्व (अर्धायु 5730 वर्ष)
लोथल (गुजरात)	TF-19, 1800±140 TF-23, 1865±110 TF-29, 1895±115 TF 26, 2000±125 TF-27, 2000±115 TF-22, 2010±115 TF-133, 1895±115 TF-136, 2080±135	सुरकोट्डा (गुजरात)	TF-1301, 2000±135 TF-1305, 2055±100 TF-1310, 1970±100 TF-1295, 1940±100 TF-1294, 1780±100 TF-1297, 1790± 95 TF-1307, 1660±110 TF-1311, 1780± 90
रोजडी (गुजरात)	TF 199, 1745±105 TF-200, 1970±115	बाडा (पंजाब)	TF-1204, 1845±155 TF-1205, 1890± 95 TF-1207, 1645± 90

तालिका 1 प्राग्हडप्पा व अन्य हडप्पा सांस्कृतिक स्थलों की कार्बन तिथियाँ।

स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि उपर्युक्त विश्लेषण का अर्थ यह नहीं कि कोटदीजी संस्कृति का हडप्पा संस्कृति से पहले प्रादुर्भाव नहीं हुआ था।

चरण E की संस्कृतियों, उदाहरणार्थ दंबसदात II और III, कोटदीजी I, और कालीबंगन काल I की कार्बन तिथियाँ उपलब्ध हैं जिनके अनुसार कोटदीजी का प्रारम्भ लगभग 2600 ई० पू० (P-196) और अन्त 2100 से 2000 ई० पूर्व (P-195) के मध्य है। अधिकांश से कार्बन तिथियों (L-180B, L-180E और P-523) के अनुसार दंबसदात काल II का काल 2200 ई० पूर्व निर्धारित होता है। दंबसदात काल III की कार्बन तिथि UW-60, 2200±165 ई० पूर्व है, काल II की तीनों ही तिथियाँ अनुरूप होने के कारण, हम काल III की उच्चतम प्राप्त तिथि में से 100 वर्ष का मानक विचलन हटाने पर, इसका काल लगभग 2050 ई० पूर्व निर्धारित करेंगे (देखें तालिका 1)।

कार्बन नमूने जितने ही अधिक गहराई तक टीले की मिट्टी से ढके होते हैं उतने ही विदूषण से बचे रहते हैं। कालीबंगन टीले की मिट्टी से ढके हुए, कई नमूनों की कार्बन तिथियाँ प्राप्त हैं। कालीबंगन काल I की नौ तिथियाँ ज्ञात हैं। टीले की परिधि से प्राप्त नमूनों की तिथियाँ अपेक्षाकृत नयी हैं जिसका कारण विदूषण हो सकता है। इसके विपरीत मिट्टी से अच्छी तरह

ढके नमूनो की तिथियाँ विश्वसनीय होती हैं । इन विदूषण-जनित समस्याओ के कारण यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि काल I कब समाप्त हुआ, और काल II कब प्रारम्भ हुआ । यदि टीले I के नमूने विदूषण रहित थे तो उत्तरकालीन कालीबंगन काल I की तिथि लगभग 1800-1960 ई० पूर्व (TF 154,-156 -165) है । जैसे पहले भी बताया गया है, घोष के कथनानुसार कालीबगन से हडप्पा काल और काल I के मृद्भाड, काल I के मकानो मे भी मिले हैं । काल I के प्रारंभिक चरणो की तीन तिथियाँ हैं—TF-155, 2370±120,-157, 2290±120 और-241, 2255±95 । क्योकि तीनो ही नमूने प्रारभिक चरण के हैं अत विभिन्न तिथियो से औसत तिथि 2295±65 ई० पूर्व आती है । इसमे एक मानक विचलन की त्रुटि जोडने से यह तिथि 2360 ई० पूर्व अर्थात् लगभग 2400 ई० पूर्व बैठती है । इस प्रकार कार्बन पद्धति द्वारा कालीबगन का प्राग्हडप्पा सस्कृति का अधिकतम काल लगभग 2400-1800 ई० पूर्व व निम्नतम काल लगभग 2300-2000 ई० पूर्व इंगित होता है ।

उपर्युक्त तथ्यो के आधार पर हडप्पा से पूर्ववर्ती चरण E का काल लगभग 2600 – 2400 ई० पूर्व होता है जबकि चरण E की अन्य सस्कृतियाँ (हडप्पा की समकालीन) बहुत बाद तक जीवित रही । उदाहरणार्थ पजाब के बाडा मृद्भांडो पर उत्कीर्ण डिजाइन (कठ पर की कासी चौडी पट्टी) की सगोत्रता कालीबगन काल I से होते हुए भी बाडा की तिथि TF—1204-1205 के अनुसार 1800—1900 ई० पूर्व है । इन कार्बन तिथियों से भी प्रतीत होता है कि तथाकथित प्राग्हडप्पा और हडप्पा समकालीन सस्कृतियाँ थी ।

निआई बूथी और निंदावारी दब से प्राप्त दो तिथियो P—478, 1600±65 और TE 862, 2065±110 ई० पूर्व के अनुसार कुल्ली सस्कृति का काल लगभग 2009 ई० पूर्व निश्चित होता है । उपर्युक्त तिथियो और फारस की खाडी के स्थलो से मिले पुरातात्विक प्रमाणो के आधार पर इसे निश्चयपूर्वक हडप्पा की समकालीन सस्कृति कहा जा सकता है ।

III हडप्पा सस्कृति का कालानुक्रम

क पुरातात्विक प्रमाण

प्राप्त प्रमाणो के तार्किक विश्लेषण के आधार पर सर्वप्रथम व्हीलर ने हडप्पा सस्कृति का काल-विस्तार लगभग 2500 से 1500 ई० पूर्व निर्धारित

किया था। यह सहस्राब्दी विस्तार इतना अधिक प्रचलित हो गया कि छोटे-छोटे हड़प्पा सस्कृति के स्थलो के लिए भी प्रयुक्त किया जाने लगा। कुछ विशिष्ट हड़प्पा मृद्‌भाड-आकार आरेख 6 मे दिये गये हैं।

कई विद्वानो ने हड़प्पा सस्कृति के एक सहस्र वर्ष के अति विस्तृत काल विस्तार पर शकाएँ व्यक्त की हैं। फेयरसर्विस के मतानुसार केवल निक्षेपो की गहराई से उनके काल-विस्तार का सही आभास नही होता। बाढ़ जनित विनाश और भवनो का पुनर्निर्माण 25 वर्ष मे भी हो सकता है और 250 वर्ष मे भी। इस दृष्टि से सिंध के बहुत से प्राचीन ग्राम स्थलो के हड़प्पा स्तरो का परीक्षण करने पर उन्हें मालूम हुआ कि कोटदीजी, डाबरकोट और आम्री जैसे स्थलो की अपेक्षा इनकी हड़प्पा-बस्तियों का काल विस्तार बहुत सक्षिप्त था। इन सब कारणो से वे इस प्रचलित मत को स्वीकार नही करते कि सिंध मे हड़प्पा सस्कृति का काल विस्तार एक सहस्र वर्ष था। उनका विचार है कि यह लगभग 500 वर्ष रहा होगा।

एक सहस्राब्दी के विस्तृत काल मे भी हड़प्पा संस्कृति की निरतर समरसता और अपरिवर्तनशीलता पर कई विद्वानो ने शका की है विशेष रूप से उन लोगो ने जो पुरातात्त्विक स्वयसिद्ध नियमो से प्रतिबधित नही हैं। मोहन-जोदडो के केवल गहरे (पर मुख्यत अवशेष रहित) निक्षेप के आधार पर इस संस्कृति का इतना लबा काल विस्तार निर्धारित किया गया है उसकी प्रामाणिकता पर राइक्स सदेह करते हैं। उनका कथन है कि यह अजीब बात है कि पुरातत्ववेत्ताओ के अनुमानानुसार इस शहर के एक सहस्र वर्ष की आबादी के दौरान केवल 10 मीटर निक्षेप एकत्र हुआ, जबकि बाद के 3500 वर्ष मे अतिरिक्त गाद एकत्र ही नही हुई। उनका कहना है कि कही भी इतिहास मे 1000 वर्ष तक भौतिक सस्कृति बदले बिना नहीं रही। इसलिए वे एक छोटे काल-विस्तार को अधिक तर्कसगत मानते हैं।

कार्बन तिथियो ने इन शकाओ को पुष्ट किया है। अग्रवाल ने भी पुरातात्त्विक आधारभूत सामग्री का मूल्याकन व कार्बन तिथियो के आधार पर निश्चयात्मक रूप से इस सस्कृति का संक्षिप्त काल विस्तार प्रतिपादित किया है। यहाँ पर हम पहले पुरातात्त्विक प्रमाणो की विवेचना करेंगे।

प्राप्त पुरातात्त्विक प्रमाणों के सबध मे दो महत्वपूर्ण अनिश्चितताएं ध्यान में रखनी होगी · (i) अधिकाश पुरातात्त्विक प्रमाण उस काल के हैं जब उत्खनन और स्तरन का वैज्ञानिक तरीका प्रयुक्त नही होता था, और (ii) हड़प्पा सस्कृति के काल निर्धारण के लिए भारतीय सी लगने वाली सामान्य

वस्तुओ का भी (जो पश्चिम मे पायी गयी) उपयोग किया गया। इसलिए हम हडप्पा से सबधित केवल उन प्रमाणो का विश्लेषण करेंगे, जो विशिष्ट रूप से हडप्पा सस्कृति के हैं अथवा पश्चिमी एशियाई निश्चित तिथियो के शिल्प उपकरणो का, जो भारत के विश्वसनीय उत्खननो से मिले हैं।

हम कालानुक्रम का सारगन-पूर्व (लगभग 2350 ई० पूर्व), ईसीन-लार्सा (लगभग 2000 ई० पूर्व) और उत्तर-लार्सा वर्गों के अतर्गत अध्ययन करेंगे। यहाँ पर मोहरो की विशिष्ट सख्याएँ गैड के निबध "उर से प्राप्त प्राचीन भारतीय शैली की मोहरें" और व्हीलर की पुस्तक "सिंधु सभ्यता" के अनुसार दी गयी हैं।

ख सारगन-पूर्वकालिक प्रमाण

(i) मोहरें

एक अ-स्तरीय चौकोर मोहर (गैड न० 1) मिली है जिसके पृष्ठ पर बनी घुण्डी के आधार पर ही इसे सिन्धु सभ्यता की समझ लिया गया। इसमे साड जैसे जानवर के ऊपर तीन सारगन-पूर्वकालिक चिह्न अकित है, गैड ने स्वय स्वीकार किया है कि केवल फानाकार लिपि के पुरालेखो के आधार पर किसी वस्तु का, विशेषकर मोहरो का, कालानुक्रम निर्धारित करना बहुत गलत हो सकता है। अत कालनिर्धारण की दृष्टि से उपर्युक्त मोहर का महत्व कुछ भी नही है।

एक कब्र के कूपक से एक सेलखडी की मोहर (गैड न० 16) मिली है जिस पर सिन्धु लिपि और साड अकित हैं। वूली के अनुसार यह उर के द्वितीय राजवश (II Dynasty) की है, जब कि फ्रैंकफर्ट इस द्वितीय राजवश को भी अक्काड (सारगन) काल के अतर्गत ही लेते हैं। वूली ने भी बाद मे शका व्यक्त की कि यह निश्चय करना कठिन है कि यह मोहर कब्रविशेष की है या बाद की लडाइयो के काल की, जब बाद का मलवा कब्र के कूपक मे भर गया। इस प्रकार यह मोहर सारगन काल की भी हो सकती है। वस्तुत इस मोहर से केवल यह ज्ञात होता है कि सिन्धु का सपर्क सारगन काल के ईराक से रहा होगा।

(ii) कूबड वाले साड का अकन

कूबड वाले साड का अकन सर्वप्रथम लगभग 3100 ई० पूर्व के दियाला क्षेत्र से प्राप्त सिंदूरी मृद्भाड (Scarlet-ware) पर व मुडीगाक काल I_8 से

मिलता है। चौथी सहस्राब्दी के अन्तिम काल तक ये डिजाइन पश्चिम एशिया के कई स्थलो मे प्रचलित थे लेकिन प्राग्हडप्पा काल मे ये डिजाइन नही मिलते। जब तक कि हडप्पा सस्कृति की स्पष्ट छाप इन वस्तुओ पर नजर नहीं आती, ऐसी अस्पष्ट समानताओ का तिथि-निर्धारण मे कोई महत्व नही माना जा सकता। मेसोपोटामिया से प्राप्त लगभग 2700 2500 ई० पूर्व के कटोरे पर अकित एक पौराणिक दृश्य के साथ कूबड वाले साड का चित्रण है। मैलोवन के मतानुसार यह भारतीय है, जब कि उसमे कोई भी भारतीय अथवा हडप्पा जैसी विशिष्टता नही है। फलस्वरूप तिथि निर्धारण की दृष्टि से इसका कोई महत्व नही है।

(iii) खानेदार प्रस्तर पात्र (या कुटी-माडल)

चक्रवर्ती ने ड्यूरिंग कैस्पर की उस रिपोर्ट को अनावश्यक महत्व दिया है जिसमे डाबरकोट से प्राप्त एक कुरूप प्रस्तर सिर का उल्लेख किया गया है। कैस्पर ने स्वय स्वीकार किया है कि इस सिर का अनगढ़ शिल्प इस बात का द्योतक है कि यह मेसोपोटामिया के नमूने की कोई बाद में की गयी नकल है।

प्रस्तर पात्रो के वर्गीकरण व विभाजन के विषय मे लिखा जा चुका है। मोहनजोदडो से भी इनके नमूने प्राप्त हुए हैं।

(अ) D क्षेत्र के मकान न० V, कमरा न० 55 से 8.7 मीटर की गहराई से, चटाई के प्रकार के डिजाइन वाला एक प्रस्तर पात्र का टुकडा मिला है।

(ब) मकान न० III कमरा न० 76 से 1 5 मीटर की गहराई से प्राप्त उत्तरकालीन चरण के पात्र पर रेखाच्छादित त्रिकोण व त्रि-अरी (Chevron) डिजाइन बने हैं। इन पात्रो की, इनके एशियाई प्रतिरूपो से तुलना करने पर, दुर्रानी का पूर्वउद्धरित मत, यहाँ पुन उल्लेखित करना उचित होगा कि "ये खानेदार पात्र बलूचिस्तान और सिंध मे ही सीमित हैं, ऐसे पात्र भारत-पाक प्रदेश से बाहर नहीं मिलते"। इनमे भी बलूचिस्तान के पात्र सेलखडी के बने गोल हैं तो सिंधु के स्लेट निर्मित चौकोर व ढक्कन वाले।

मोहनजोदडो के प्रारभिक स्तर से प्राप्त चटाईदार डिजाइन वाले एक टुकडे की बहुत निकट साम्यता किश व सूसा D से है। मैलोवन के अनुसार इसका काल लगभग 2500 ई० पूर्व समझा जाता है। फारस की खाडी के स्थलो से प्राप्त कुल्ली मृद्भाड व खानेदार पात्र इस बात का द्योतक है कि सभवत कुल्ली वासियो ने ही हडप्पा और मेसोपोटामिया के मध्य व्यापारिक सपर्क स्थापित किया हो।

(iv) स्वस्तिक डिजाइन

ब्राक के टीले से प्राप्त मोहरो पर लोथल जैसी बहु-रेखीय स्वस्तिक डिजाइनो के आधार पर राव का मत है कि लोथल का संपर्क, अक्काड काल मे विदेशो से था। ब्राक के टीले से ऐसे डिजाइन वाले तावीजो के अधोभाग पर जानवर अंकित हैं, जिनका काल मैलावन के अनुसार लगभग 3200 ई० पू० है। ऐसे सामान्य डिजाइनो का सादृश्य का कालानुक्रम निर्धारण मे कोई महत्व नही।

उपर्युक्त अस्पष्ट व अनिश्चित प्रमाणो के आधार पर हड़प्पा का काल सारगन पूर्वकाल के समकक्ष नही रखा जा सकता।

ग सारगन और ईसोन-लार्सा काल के प्रमाण

(i) मोहरें

सेलखडी की एक गोलाकार मोहर (गैड न० 15) पर अस्पष्ट सा एक लेख है और वाम शीर्ष पर एक फूल और एक बिच्छू अंकित हैं। इस मोहर का लेख सिन्धु लिपि मे नही है। यदि इसे हड़प्पा सस्कृति की मोहर मान भी लिया जाय तो भी यह सारगन काल की ही कही जा सकती है। केवल पूर्व-उल्लेखित गैड मोहर न० 16 सारगन काल की है।

किश से प्राप्त एक चौकोर मोहर (व्हीलर न० 4) निश्चय रूप से सिंधु सभ्यता की है। लैंगडन के मतानुसार यद्यपि इसे सारगन पूर्व काल की होना चाहिए, लेकिन इसके साथ पत्थर की एक मूठ मिली है जिस पर सैंधव लिपि मे लेख अंकित है। सभवत दोनो ही वस्तुएँ बाद को गिरी होगी। अत इनसे केवल सारगनकालीन प्रमाणो की ही पुष्टि होती है।

एक बेलनाकार चमकीली सेलखडी की (व्हीलर न० 5) मोहर टेल-असमार से अक्काडकालीन सदर्भ मे मिली है। इस पर हाथी, दरयाई घोड़ा और मगर नैसर्गिक शैली मे अंकित हैं। उपर्युक्त पशु बेबीलोन मे नहीं होते अत इन्हे अंकित करने से पूर्व कलाकार ने इन्हें निकट से देखा होगा (शायद सिन्ध मे)। टेल-अस्मार के ही अक्काड-स्तर से एक और मोहर एलाबास्टर की मिली है जिस पर सकेंद्रित वर्ग अंकित हैं।

स्पाईजर के मतानुसार टैपे गावरा VI से प्राप्त सकेन्द्रिय वर्गों से अलकृत एक चौकोर पकी हुई मिट्टी की मोहर (व्हीलर न० 7), उत्तरकालीन प्रारभिक राजवशो (Early Dynasty की या प्रारभिक सारगन काल की है। मैके ने इसे अस्पष्ट सी तिथि दी है, क्योकि यह समसू-ईलूना के फर्श के नीचे पडी

मिली, इसलिए इसकी तिथि लगभग 1700 ई० पूर्व से बाद की नही हो सकती।

हडप्पा तथा चान्हूदडो से प्राप्त एक मोहर पर पंख फैलाये उकाब अंकित है। ऐसे चिह्न लगभग 2400 ई० पूर्व सूसा से मिलते हैं। मैलोवन ने पंख फैलाये उकाब के रूप मे ईमदुगू (लगभग 2200 ई० पूर्व की मूर्ति) तथा इसी रूप की टैल ब्राक से प्राप्त लगभग 2100 ई० पूर्व की ताम्रजटित मूर्ति का वर्णन किया है।

राव के लोथल के टीले की सतह से (खुदाई से नही) सेलखडी की एक मोहर मिली है जिसके एक ओर घुंडीदार पीठ और दूसरी तरफ दो हिरन अंकित हैं।

यह मोहर बारबारा और रास-अल-कला से प्राप्त "फारस की खाडी मोहरो" जैसी है। बिब्बी के मतानुसार ऐसी ही मोहरें कुवैत के समीप फैलका मे मिली, जिन्हे उन्होने सारगन का काल दिया है। अतः सभावना यही है कि यह मोहर लोथल की हडप्पा सस्कृति की आबादी के समय मे ही विदेश से यहाँ आयात हुई होगी। बूखानन ने लार्सा के राजा गुनगुनुम के दसवें वर्ष (लगभग 1923 ई० पूर्व) की एक फानाकार लिपि मे अंकित तख्ती का वर्णन किया है जिस पर "फारस की खाडी की मोहर" उत्कीर्ण है। उनके कथनुसार सिंध के दूसरे हडप्पाकालीन आयात, इस तिथि से पहले के बिलकुल नही थे।

तेल्लोह से मिली सिंधु लिपि वाली मोहर व्हीलर नं० 9 लार्साकालीन है। लार्साकालीन एक कब्र से प्राप्त एक बेलनाकार मोहर (गैड न० 5) पर एक कूबड वाला साड, मानवाकृति, सांप व बिच्छू अंकित हैं। शैली की दृष्टि से इसे हडप्पा शिल्पकारिता की सज्ञा दी जा सकती है। हामा से मिली एक अन्य बेलनाकार मोहर के ठीकरे (व्हीलर न० 12) पर कुल्ली प्रकार की बडी आँखो वाले सांड (लगभग 2000 1700 ई० पूर्व) का चिह्न बना है।

(ii) मनके

हडप्पा और मेसोपोटामिया से प्राप्त 8 व "आख" प्रकार के (प्रकार I) निक्षारित मनको मे तादात्मता है। फ्रैंकफोर्ट के अनुसार हडप्पाकालीन सपर्क दर्शाने वाली अन्य वस्तुओ के साथ सारगन काल के ऐसे ही मनके टेल-अस्मार के मकानो मे मिले हैं। यदि यह नही भी माना जाय कि ये हडप्पा से यहाँ पहुँचे, तो भी इतना तो माना ही जा सकता है कि सारगन काल मे इन स्थलों मे परस्पर व्यापारिक संबध थे। प्रारम्भिक राजवश (Early Dynasty) या अक्काड काल और ट्रोय II G से प्राप्त अक्षीय नलिका वाले चक्र-मनको

की तिथि लगभग 2500-2300 ई० पूर्व है । टेल-अस्मार के सारगान स्तर से प्राप्त चांदी के चक्र मनके भी इनके समतुल्य है । अस्मार के टीले के सारगन स्तर से वृक्क आकार मे हड्डी जटित मनको की सगोत्रता निस्सदेह हड़प्पा के कटे शख के बने मनको से है ।

लाजवर्द के प्राचीन व्यापार के उतार-चढ़ाव पर व्हीलर का मत है कि सिधु सभ्यता का अधिकाश ज्ञात स्तर प्रारभिक राजवश (Early Dynasty) की अपेक्षा अक्काड और परवर्ती अक्काड काल के हैं ।

घ परवर्त्ती लार्साकालिक प्रमाण

(i) मोहरें

उर के कस्साईट स्तर के मलवे से प्राप्त लगभग 1500 ई० पूर्व की घु डीदार पीठ वाली (गैड न० 5) मोहर पर, बहगी लटके दो मशक लिए पनभरा चित्रित हैं । घु डी के अतिरिक्त हड़प्पा मोहर से इसका कोई साम्य नही फलत. तिथि निर्धारण की दृष्टि से मोहर का कोई महत्व नही है ।

(ii) मनके

हड़प्पा से एक अस्तरित खानेदार मनका मिला है । इसके स्पेक्ट्रमी विश्लेपण से ज्ञात हुआ कि इसकी साम्यता मध्य मिनोअन काल III के नमूने से है । ये मनके मिस्र के अट्ठारहवें राजवंश काल मे लगभग 1600 ई० पूर्व प्रचलित थे । दूसरी ओर खाबुर घाटी से लगभग 3200 ई० पूर्व के भी चमकदार सेलखडी के खानेदार मनके मिले हैं । अत इस प्रकार के अनिश्चित व अस्पष्ट प्रमाण तिथि निर्धारण के आधार नही हो सकते ।

(iii) धातु उपकरण

हड़प्पा सस्कृति के अतिम काल मे कुछ धातु उपकरण प्रचलित थे । इनके पश्चिमी एशियाई प्रतिरूप, विविध व अनिश्चित कालानुक्रमिक संदर्भों मे मिलते हैं । इसलिए पिगट ने कहा है कि "जब तक उनका स्वतत्र रूप से स्थानीय मूल्याकन नही हो जाता, उनका तिथि निर्धारण मे महत्व सदिग्ध है । इस प्रदेश मे अनेक बाह्य आक्रमणो व देशातरणो के फलस्वरूप यह समस्या और भी जटिल हो गई है । पिगट कहते हैं कि लगभग 2000 ई० पूर्व व कुछ सदियो तक बलूचिस्तान के ग्रामो व सैंधव नगरो के अत काल के समय मे जनसमूहो का देशांतरण होता रहा । दूसरे देशांतरण या उपनिवेशीकरण के प्रमाण एक

सहस्र वर्ष बाद बलूचिस्तान से मिलते है। उदाहरणार्थ 2000 ई० पूर्व के देशांतरण को शाही टुम्प की कब्रो से जोडा जा सकता है, और दूसरे प्रवाह को 900 ई० पूर्व के सगोरा शवाधानो से।

ड सारांश

मेसोपोटामिया के प्रमाणो का सिंहावलोकन करते हुए बूखानन ने कहा है कि प्रौढ सिंधु सभ्यता की तिथि लगभग 2300 ई० पूर्व से प्राचीन नही हो सकती। इराक से इसके लिए कोई प्रमाण नही है। उन्होने इस प्रौढ चरण की अवधि 300 साल से अधिक होने की सभावनाओ पर शका व्यक्त की है। उनके अनुसार यह सभव है कि सिंधु सभ्यता का प्रौढ चरण 2000 ई० पूर्व तक समाप्त हो गया।

उपर्युक्त कालानुक्रमिक महत्व के पुरातात्विक प्रमाणों के विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि सिंधु सभ्यता का पश्चिम एशिया से निश्चित सपर्क केवल सारगन काल (लगभग 2350 ई० पूर्व) और ईसीन लार्सा काल (लगभग 2000 ई० पूर्व) से था। इस आधार पर हडप्पा सस्कृति के प्रारभ की निम्न सीमा लगभग 2350 ई० पूर्व इगित होती है।

च हडप्पा सस्कृति की कार्बन तिथियाँ

1947 के भारत विभाजन के बाद हडप्पा सस्कृति के स्थल पाकिस्तान के अतर्गत चले गये। लेकिन बाद के भारतीय पुराविदो ने इस सस्कृति के कई स्थलो को भारत मे खोज निकाला। लाल व थापड द्वारा कालीबगन, राव द्वारा लोथल व ढाकी द्वारा रोजडी के उत्खनन महत्वपूर्ण हैं। इन विस्तृत उत्खननो के फलस्वरूप काफी मात्रा मे कार्बन नमूने प्राप्त हुए। अब डेल्स द्वारा मोहनजोदडो के उत्खनन से प्राप्त (तलिका 1—आरेख 8) नमूनो पर भी कई कार्बन तिथियाँ मापी गयी हैं। 1964 तक प्राप्त तिथियो के आधार पर अग्रवाल ने हडप्पा सस्कृति के कालक्रमीय विस्तार की सीमा सक्षिप्त कर लगभग 2300-1750 ई० पूर्व के बीच बाधी थी। साथ मे पुरातात्विक प्रमाणो का पुन विश्लेषण कर हडप्पा सस्कृति का पश्चिमी एशिया से सपर्क लगभग 2300 से 2000 ई० पूर्व के बीच निश्चित किया था। इस पर व्हीलर ने भी शुरू मे स्वीकार किया था कि उनका प्रस्तावित काल-विस्तार (2500-1500 ई० पूर्व) दोनो ही सिरो से शायद थोडा-थोडा घटाना पडे।

अब हम काल-विस्तार के अब तक के प्रमाणो की फिर से सक्षिप्त विवेचना करेंगे।

पाकिस्तान के हड़प्पा संस्कृति के प्रारंभिक काल के नमूने प्राप्त न होने के कारण प्राग्हड़प्पा स्थलो की तिथियो के आधार पर ही, इस संस्कृति के प्रारंभ का तिथि-निर्धारण करना पड़ता है। मोहनजोदड़ो के ऊपरी स्तरो से अब सात तिथियाँ (तालिका 1, आरेख 8) प्राप्त हैं। पहली तिथि मोहनजोदड़ो के पुराने उत्खनन से प्राप्त झुलसे हुए गेहूँ (TF-75) पर मापी गयी है। अन्य छ तिथिया हाल ही मे डेल्स द्वारा ऊपरी स्तरो के उत्खनन से प्राप्त नमूनो पर की गयी है। ये सब तिथिया एक मानक विचलन के अतर्गत एकसी हैं। इन सब तिथियो (P-1176,-117 ',-1178 A,-1179,-1180 और 1182 A) की त्रुटियो को सयुक्त कर मोहनजोदडो के ऊपरी स्तर की तिथि 2005± 25 ई० पूर्व अर्थात् लगभग 2000 ई० पूर्व निर्धारित की जा सकती है।

(1) हड़प्पा संस्कृति का केन्द्रीय क्षेत्र

हड़प्पा संस्कृति के केन्द्रीय क्षेत्र की प्रारंभिक तिथि दवसदात और कोटदीजी के ठीक पूर्ववर्ती स्थलो की कार्बन तिथियो के बहिर्वेशन (Exrapolation) से निश्चित की जा सकती है। दवसदात II की तीन तिथियां L-180 C, L-180 E, P-523 हैं। उनकी बडी त्रुटियो को दृष्टि मे रखते हुए, वे परस्पर सुसगत है। अन्य तिथियो की अपेक्षा P-523, 2200±75 ई० पूर्व की तिथि मे न्यूनतम त्रुटि है। इनमे एक मानक विचलन जोडने से इसे लगभग 2300 (2275) ई० पूर्व रखा जा सकता है। इस प्रकार दंवसदात II, हड़प्पा संस्कृति के प्रारभ की पूर्वकाल सीमा निश्चित करता है। कोटदीजी के काल I के ऊपरी स्तरो की तिथि P-195, 2100±140 ई० पूर्व है। और एक मानक विचलन के अतर्गत कोटदीजी के अत की तिथि 2240 से 1960 ई० पूर्व के मध्य स्थिर की जा सकती है। इस आधार पर हड़प्पा संस्कृति का आरंभ मोहनजोदडो मे लगभग 2300 ई० पूर्व निर्धारित कर सकते हैं। मोहनजोदडो की संपूर्ण तिथि-सीमा इस प्रकार लगभग 2300-2000 ई० पूर्व निश्चित होती है।

बिना त्रुटियो को सम्मिलित किये अधिकाश तथाकथित प्राग्हड़प्पा संस्कृतियो के उत्तरकालीन स्तरों की कार्बन तिथिया, लगभग 2100 ई० पूर्व से पूर्ववर्ती नही हैं। यदि भविष्य मे इनमे से कुछ स्थलो की समकालीनता सिद्ध हो जाती हैं, तो हड़प्पा के प्रारभ की संभावना लगभग 2300 ई० पूर्व से पूर्ववर्ती हो सकती है। जब तक हड़प्पा व मोहनजोदडो के प्रारभिक स्तरो का तिथि-

निर्धारण नहीं होता, कोई भी हडप्पा सस्कृति के केन्द्रीय स्थलो की तिथि केवल अनुमान मात्र ही समझी जा सकती है।

(ii) हड़प्पा संस्कृति का परिधीय क्षेत्र

हड़प्पा संस्कृति के परिधीय क्षेत्र गुजरात और राजस्थान हैं। इस क्षेत्र से लोथल, रोजडी और कालीबगन का तिथि-निर्धारण किया जा चुका है। थापड व लाल द्वारा उत्खनित, कालीबगन के न केवल अनेक कार्बन नमूनो का मापन किया गया, बल्कि नमूनो के दूषण से बचाने मे टीले की आच्छादित मिट्टी का क्या श्रेय है, इसका भी विस्तृत अध्ययन किया गया। इन अध्ययनो से ज्ञात हुआ कि इन प्राचीन सस्कृतियो के नमूनो को जितनी अधिक मिट्टी ने आच्छादित रखा, वे उतने ही अधिक दूषण से बचे रहे, क्योकि गले हुए पौधो से रिसने वाला ह्यूमिक अम्ल टीले की परतो के अन्दर प्रवेश कर, कार्बनिक नमूनो को ससिक्त कर देता है और उन्हे तथा उनके तिथि निर्धारण को सदेहास्पद बना देता है। मिट्टी छन्ने का कार्य करती है। इस प्रकार नमूना जितनी गहराई मे होगा, उतना ही इस दूषण से सुरक्षित रहेगा। टीले के परिधीय व ऊपरी भाग से प्राप्त नमूने (TF-138,-244) इसी कारण काफी बाद की कम तिथियाँ देते हैं। नमूनो के जीर्ण और छोटे होने के फलस्वरूप ह्यूमिक अम्ल को साफ करने के लिए कई नमूनो पर क्षार का प्रयोग भी नही हो सका। इसके विपरीत टीले की गहराई से प्राप्त TF-607,-608 की तिथियाँ पर्याप्त सुसगत हैं, और उनसे आशानुकूल पुरानी तिथियाँ मिली हैं।

कालीबगन के टीले II के प्रारम्भिक स्तरो की दो कार्बन तिथियाँ TF-607, 2090±125 ई० पूर्व और TF-608, 2075±110 ई० पूर्व है। एक मानक-विचलन त्रुटि को इन तिथियो के औसत के साथ जोड देने पर, हडप्पा सस्कृति के प्रारम की उच्चतम तिथि लगभग 2200 ई० पूर्व आती है। एक और तिथि भी TF-160, लगभग 2200 ई० पूर्व है। मध्यवर्ती स्तरो की तिथियाँ भी सुसगत हैं, जबकि ऊपरी स्तरो के नमूनो के परिणामो मे विभिन्नता है। सतह के बहुत समीप, (सबसे ऊपरी परत से) मिलने के कारण दूषित दो नमूनो TF-138 और TF-244 की गणना करना निरर्थक है। निचले व मध्यवर्ती स्तरो से प्राप्त कार्बन तिथियाँ होने के कारण हमने TF 143,-946 और -149 नमूनो को ऊपरी स्तरो की प्रतिनिधि तिथियाँ माना है। इसके आधार पर कालीबगन में हडप्पा सस्कृति के अत की तिथि

लगभग 1700-1800 ई० पूर्व कही जा सकती है । ह्यूमिक दूषण और बडी त्रुटियो के फलस्वरूप इन स्थलो मे कार्बन पद्धति इतनी अधिक कारगर नही हो पाती । इसी प्रकार लोथल मे हडप्पा सस्कृति के अंत की तिथि चरण VA से प्राप्त TF-23, 1865±110 और TF-19,1800±140 ई० पूर्व के आधार पर लगभग 1800 ई० पूर्व है जबकि अल्चिन के मतानुसार लोथल मे इस संस्कृति का अतिम चरण IVA है । चरण V को वे उप-हडप्पा काल कहते हैं, जिसमे "आंशिक औपनिवेशिक शासन का अत तथा एक स्वतन्त्र प्रान्तीय (क्षेत्रीय)-संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ ।" लोथल क ल I से प्राप्त केवल एक तिथि TF-136, 2080±135 मे एक मानक विचलन जोडने से इसका काल लगभग 2200 ई० पूर्व निर्धारित किया जा सकता है । यदि चरण V को उप-हडप्पा काल मान लें, तो शुद्ध हडप्पा सस्कृति का अत बहुत पहले ही (1900 ई० पूर्व के आस-पास TF-29, चरण IV) हो गया होगा । इस प्रकार परिधीय हडप्पा सस्कृति का काल विस्तार लगभग 2200-1700 ई० पूर्व रखा जा सकता है । यह उल्लेखनीय है कि हडप्पा सस्कृति के काल विस्तार सीमाओ की तिथियाँ, कालीबगन टीला II, तथाकथित प्राग्हडप्पा के टीले I, से प्राप्त नमूने के आधार पर निश्चित की गयी है । कार्बन तिथियो के प्रत्यक्ष मूल्याकन के आधार पर प्राग्हडप्पा सस्कृति का अतिम काल लगभग 1900 ई० पूर्व तक निर्धारित किया जा सकता है । अत इस कठिन समस्या के दो समाधान हो सकते हैं (i) हडप्पा तथा प्राग्हडप्पा सस्कृतियो के मध्य अति अल्प अतर के फलस्वरूप कार्बन मापन विधि इसे पकड नही पाती और (ii) दोनो ही सस्कृतियाँ कुछ समय तक विभिन्न टीलो मे या अन्य स्थलो मे (जैसा पहले ही उल्लेख किया जा चुका है) समकालीन थी । इसी आधार पर कालीबगन टीला I के मकानो से हडप्पा और प्राग्हडप्पा मृद्भाडो का साथ-साथ मिलना भी समझा जा सकता है ।

सक्षेप मे हडप्पा सस्कृति के केन्द्रीय क्षेत्र मे काल विस्तार लगभग 2300-2000 ई० पूर्व है तो परिधीय क्षेत्र मे लगभग 2200-1700 ई० पूर्व के बीच हडप्पा सस्कृति के प्रारम्भ की यथार्थ तिथि निर्धारण के लिए मोहन-जोदडो के प्रारम्भिक स्तरो के नमूनो का मापन करने की आवश्यकता है । कार्बन-14, व कार्बन-12 के अनुपातो में यदि भूतकाल मे कोई परिवर्तन होता रहा है तो तदनुसार सपूर्ण कालानुक्रमो को थोडा आगे-पीछे हटाया जा सकता है ।

IV ताम्राश्मीय सस्कृतियो का कालानुक्रम

उत्तर पश्चिम इतर-हडप्पा संस्कृतियाँ शीर्षक के अतर्गत हम पहले कुछ प्राक् व समकालीन हडप्पा सस्कृतियो के कालानुक्रम के विषय मे लिख चुके हैं। अब यहाँ पर कुछ उत्तरकालीन सस्कृतियो जैसे, कायथा, बनास, मालवा और जोर्वे आदि का वर्णन करेंगे। उनकी विवेचना यहाँ भारत के मध्य व दक्षिणी, उत्तर-पश्चिमी और पूर्वी क्षेत्रो के अन्तर्गत करेंगे।

क. उत्तर-पश्चिम सस्कृतियाँ

उत्तर-पश्चिम मे हडप्पा सस्कृति के पटाक्षेप के थोडा पहले ही विविध सस्कृतियाँ प्रस्फुटित हुई देखते है। उनकी तिथि का निर्धारण करना कठिन है। फिर भी हम प्राप्त पुरातात्त्विक सामग्री का विश्लेषण करने का प्रयत्न करेंगे।

दक्षिणी बलूचिस्तान मे शाही टूप की कब्रें, एक कुल्ली सस्कृति के ग्राम के भग्नावशेषो के ऊपर अवस्थित मिली हैं। इन कब्रो के विशेषक हैं, पूर्ण शवाधान, हरित या गुलाबी रगीन एक पतला मृद्भाड, विविध प्रकार के कटोरे, काले से भूरे रगो मे चित्रित पट्ट, भाले का एक फल, मरगोल सुए, हत्थे के लिए छेद वाली कुल्हाडियाँ, खानेदार मोहरें आदि। ये सारे उपकरण ताम्र के होने के कारण महत्वपूर्ण हैं। ईरानी समरूपो के आधार पर, इन मोहरो की तिथि हिस्सार IIIB अथवा लगभग 2000 ई० पूर्व कही जा सकती है। कुल्ली सस्कृति की उपलब्ध तिथियाँ लगभग 2000 ई० पूर्व की है। इसके आधार पर शाही टूप सस्कृति की तिथि, लगभग 2000 से 1900 ई० पूर्व के बीच रखनी पडेगी। मुडीगाक मे काल IV और V मे ऐसी ही मोहरें प्रचलित थी। हत्थे के लिए छेदवाली कुल्हाडी प्राय आर्यों के प्रसार के साथ सबधित की जाती है। इस तरह की कुल्हाडियो की तिथि मायकोप और जर्सकाया मे लगभग 1800 ई० पूर्व मानी गयी है। लेकिन मुडीगाक के काल III के स्तर से मिलने के कारण इन्हें तिथि-निर्धारणार्थ प्रयुक्त नही किया गया। इसी प्रकार खानेदार मोहरें, मरगोल सुए और हत्थे के लिए छेदवाली कुल्हाडियाँ आम्री, चाहूदडो और झूकर की परवर्ती सस्कृति वाले स्तरो से मिलती हैं। लेकिन शाही टूंप के मृद्भाड हैं। पूर्ववर्ती हडप्पा सस्कृतियो के स्तरो से इन झूकर स्तरो का एकाएक सबध विच्छेद दृष्टिगोचर नही होता। ताम्र की खानेदार मोहरो व सौन्दर्य प्रसाधन पात्रो की तुलना, हिस्सार काल III से की जा सकती है।

चाहूदड़ो मे झूकर संस्कृति के पश्चात् झांगर संस्कृति का अभ्युदय हुआ। धूसर काले चमकीले चित्रित मृद्भाड झांगर संस्कृति की विशिष्टताए हैं। स्यालक नेकरोपोलिस B के तीन खाने वाले पात्र झागर संस्कृति के अनुरूप हैं। असीरियाई मोहर के आधार पर गिर्शमान ने नेकरोपोलिस B को लगभग 900 ई० पूर्व तिथि दी है। उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर, झागर संस्कृति का काल लगभग 900 ई० पूर्व या थोडा बाद का कहा जा सकता है।

दूसरी महत्वपूर्ण परवर्ती हड़प्पा संस्कृति का उदाहरण हड़प्पा की कब्रगाह-H है। इसके दो स्तर हैं प्रथम स्तर से सीधा शवाधान मिला है तो दूसरे से एक पात्र मे अत्येष्टि सामग्री के अवशेष। लाल ने कब्रगाह R-37 और-H के बीच 2 1 से 2·7 मीटर मलवे की परत और आबादी के क्षेत्र मे भी संस्कृतियो के इन दोनो स्तरो के बीच 1 मीटर मलवे की परत को इंगित करते हुए दोनों संस्कृतियों के बीच व्यवधान सिद्ध किया है। परतु अल्चिन के मतानुसार हड़प्पा स्तर और कब्रगाह H स्तर के बीच अधिक कालातर नही है। वे टेपे गियान (सस्तर II-III) और जमशिदी II के समरूप मृद्भाडो के आधार पर कब्रगाह-H की तिथि 1750 और 1400 ई० पूर्व के मध्य स्थिर करते हैं।

सतह से प्राप्त अवशेषो मे बहुत से ताम्र उपकरण हैं। पश्चिमी एशिया व कैस्पियन के क्षेत्र को समतुल्य उपकरणो के आधार पर इनका काल निर्धारण किया गया है। लेकिन इन अनिश्चित प्रमाणो के आधार पर तिथि-निर्धारण करना कठिन है। केवल मुगल घुडई की कब्रो और सबधित स्थलो की स्यालक नेकरोपोल B से सगोत्रता है। इसके आधार पर इनकी तिथि लगभग 900 ई० पू० मानी जा सकती है।

ख. दक्षिणी और मध्य भारत की संस्कृतियाँ

इस उपशीर्षक के अतर्गत कायथा, बनास मालवा व जोर्वे आदि संस्कृतियो की तिथियो की विवेचना करेंगे। मुख्य स्थल आरेख 1 मे दिखाये गये हैं।

ताम्र संस्कृतियो में जिला उज्जैन मे स्थित कायथा एक महत्वपूर्ण स्थल है, इसका उत्खनन वाकणकर, और बाद मे धवलीकर और अंसारी ने किया। यहाँ पर कायथा, बनास व मालवा संस्कृतियो का परस्पर अनुक्रम स्पष्ट हो जाता है। छोटे-छोटे घर, एक विशिष्ट प्रकार के मृद्भाड, ताम्र तथा उत्कृष्ट प्रस्तर-फलक उपकरणो का सीमित प्रयोग कायथा संस्कृति की विशिष्टताए हैं। काली पृष्ठभूमि पर बैंजनी रग से चित्रित पतले व मजबूत मृद्भाड यहाँ की विशेषता हैं। उत्कीर्ण व तिरछा अलंकरण इसकी अपनी

विशिष्टता है। इन विशेषताओं का पश्चिमी एशिया से सादृश्य अभी तक स्थापित नहीं हो पाया है। अत इनकी तिथि के निर्धारणार्थ हमें कार्बन तिथियों पर ही (आरेख-1) पूर्णत निर्भर होना पड़ेगा।

(1) बनास (अहाड़)

बागोर संस्कृति के प्रथम चरण से ही लघु-अश्म मिले हैं। दूसरे चरण मे ताम्र उपकरणो के साथ लघु-अश्म मिलते हैं। इस विशिष्टता के कारण इसको भी ताम्राश्मीय संस्कृतियो मे माना जाता है। बागोर से कही अधिक विकसित संस्कृति थी बनास की। चाकनिर्मित उत्कृष्ट मृद्भाण्ड, धातु शोधन का ज्ञान, अच्छे मकान, लघु-अश्मो का अभाव अहाड़ संस्कृति की विशिष्टताएँ हैं।

लेकिन बनास संस्कृति की मुख्य विशिष्टता उसके चित्रित काले-लाल मृद्भांड हैं। सकालिया ने इंगित किया है कि रंगपुर काल III से प्राप्त अधिकांश मृद्भांडो का आकार अहाड़ के अनुरूप है। अहाड़ I C के कुछ कटोरो के समरूप नवदाटोली के चरण III मे मिलते हैं। सकालिया के मतानुसार अहाड़ की सपीठ थालियो मे विशेष से रूप हड़प्पा संस्कृति का प्रभाव परिलक्षित होता है। उन्होने यहाँ से प्राप्त पोले तनेदार कटोरे और पशु सिर वाली हत्थो की पश्चिमी एशिया के शाहटेपे तथा टेपे हिस्सार के नमूनो से साम्य की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। तिथि निर्धारण के लिए इन सामान्य समानताओ का उपयोग नही किया जा सकता।

स्तरविन्यास की दृष्टि से कायथा-उत्खनन से ज्ञात होता है कि बनास संस्कृति मालवा संस्कृति से पूर्ववर्ती है। इस निष्कर्ष की पुष्टि कार्बन तिथि से भी होती है।

(ii) मालवा और जोर्वे

1963 मे सकालिया ने मालवा और जोर्वे संस्कृतियो का सिंहावलोकन कर अनेक ईरानी व भारतीय मृद्भांड प्रकारो मे सादृश्य स्थापित किया। उदाहरणार्थ टोटीदार पात्र नवदाटोली काल III, दैमाबाद, गिलूंद, पाडु राजार ढीबी, चिरान्द और ओरियप से मिले हैं। शर्मा ने आन्ध्र प्रदेश मे कुर्नूल जिले के कुछ स्थलो से प्राप्त इसी प्रकार के छोटी टोटीवाले पात्रो का हवाला दिया है।

(iii) नवदाटोली

नवदाटोली के मृद्भांडो पर बाहर से जालीदार समचतुर्भुज व भीतर से सरस मानव चित्र भी बने हैं। इन मृद्भांडो के समरूप लगभग 900 ई० पूर्व

डिजाइनो के बीच भी साम्य है। परन्तु इस प्रकार के डिजाइन हड़प्पा मृदभाडों पर नही पाये जाते । अन्य उल्लेखनीय अनुरूपता प्रकाश और दैमाबाद के तथा हिस्सार और स्यालक III के विंदु चित्रित दीर्घाकार पशुओ के चित्रण मे हैं । यह डिजाइन भी हड़प्पा संस्कृति मे नही मिलता। चदोली तथा निवासा के मृद्भाडो पर अंकित दौडते हुए कुत्तों के चित्रण की तुलना सकालिया ने गियान और बाकुन से प्राप्त डिजाइनो से की है ।

ग अन्य तुलनात्मक विशेषक

सकालिया के मतानुसार निवासा से प्राप्त पकी मिट्टी की बनी एक मातृका की समरूपता हिस्सार काल III की प्रतिमाओ से है । नवदाटोली के रीढ़दार ताम्र फलक के टुकडे तथा चदोली की शृंगिका युक्त कटार की तुलना कुछ पश्चिमी एशियाई उदाहरणो से की जा सकती है । अहाड और ट्रॉय मे प्राप्त मिट्टी के तर्कु चक्कर के उत्कीर्ण डिजाइनों मे समानता है । नागदा से भी डिजाइन वाले ऐसे तर्कु चक्कर मिले हैं, यद्यपि सकलिया के मतानुसार वे एकमात्र अहाड़ मे पाये जाते हैं ।

गुप्ता ने बताया है कि ज्यादनेप्राव्स्की के अनुसार फरगना घाटी की चुस्त सस्कृति और मालवा सस्कृति के मध्य सबध था । जबकि श्काटको यहाँ की ताम्राश्मीय सस्कृतियो को शुद्ध भारतीय मानते हैं और कोई समानता इन संस्कृतियो मे नही पाते । गुप्ता भी सामान्य समानताओ के आधार पर चुस्त और मालवा सस्कृतियो के बीच सादृश्य स्थापित करना गलत समझते हैं । गुप्ता के मतानुसार इन सस्कृतियो के बीच वैभिन्य अधिक है । दोनो की अत्येष्टि प्रथाओ मे महत्वपूर्ण अतर है भारत मे पात्र शवाधान व विस्तारित शवाधान प्रचलित थे, तो फरगना घाटी मे मुडे हुए शवाधान । चुस्त सस्कृति मे किलेबंदी थी, परतु मालवा संस्कृति मे नहीं । डुलवर्जिन स्थल की कार्बन तिथि 2720±120 और 3050±120 वर्ष पुरानी ही हैं । स्पष्ट है कि यह सस्कृति बाद की थी । इस प्रकार हम देखते हैं कि चुस्त सस्कृति भी भारतीय ताम्राश्मीय सस्कृतियो के कालानुक्रमण मे सहायक सिद्ध नही होगी ।

उपर्युक्त विस्तृत प्रमाण भारतीय ताम्राश्मीय सस्कृतियो पर विशेष रूप से मालवा सस्कृति पर ईरानी प्रभावो को स्पष्ट करते हैं । लेकिन ये प्रमाण इन संस्कृतियों के तिथि निर्धारण के लिए पर्याप्त नही हैं । सक्षेप में हम कह सकते हैं कि भारतीय ताम्राश्मीय सस्कृतियो व पश्चिमी ईरानी मृद्भांडो मे काफी

सादृश्य होते हुए भी अधिकतर प्रमाण काल और स्थान दोनो दृष्टियो से एक दूसरे से दूर हैं।

घ ताम्राश्मीय संस्कृतियों का आपेक्षिक कालानुक्रम

अब हम भारतीय संस्कृतियो के तुलनात्मक विश्लेषण के आधार पर उनका काल निर्धारण करने का प्रयत्न करेंगे।

काले-लाल चित्रित मृद्भांड, रगपुर (काल II से आगे), लोथल A और B, सुरकोटडा IC, अहाड IA नवदाटोली प्रकाल I (काल III), नागदा I, एरण IIC और III मे परस्पर सबध जोडने वाली कडी हैं। जालीदार त्रिकोण, वक्र रेखाएँ आदि रंगपुर तथा नवदाटोली में समान रूप से चित्रित हैं। अत: नवदाटोली III की तुलना रगपुर IIC और III से की जा सकती है। काले-लाल चित्रित मृद्भाड गिलूद के सभी स्तरो से मिलते हैं, जब कि नवदाटोली के केवल चरण (काल III मे) से। नृत्य-चित्र और बिंदु-अकित पशु डिजाइन वाले दूधिया स्लिप वाले मृद्भाड जहाँ गिलूद की सबसे ऊपरी सतह से मिले हैं, वहाँ ये नवदाटोली के केवल प्रारभिक प्रकाल मे ही सीमित है। अत स्पष्ट है कि गिलूद में बनाम सस्कृति, नवदाटोली की अपेक्षा पूर्ववर्त्ती है।

मालवा मृद्भाडो का काल विस्तार व्यापक है। ये नवदाटोली के प्रकाल I से IV (काल III), नागदा I, बाहल I B, दैमाबाद प्रकाल II, चदोली I, और प्रकाश I A काल मे प्रचलित थे।

जोर्वे मृद्भाड प्रकाश I B, नवदाटोली चरण III-IV, बाहल I B, निवासी II, सोन गाँव I, चदोली, जोर्वे I, ईमाम गाँव II, अहाड I B और दैमाबाद III के काल स्तरों से मिले हैं। सर्वप्रथम प्रकाश के उत्खनन के स्तरीकरण से सिद्ध हुआ है कि जोर्वे मृद्भांड, मालवा से बाद के हैं। इसी तथ्य की पुष्टि हम कालातर मे दैमाबाद, बाहल तथा नवदाटोली उत्खननो से पाते हैं।

घटिया किस्म के काले लाल तथा दूधिया स्लिप वाले मृद्भाड मिलने के कारण, चदौली नवदाटोली की अपेक्षा परवर्त्ती है। चदोली मे जोर्वे मृद्भाड (कुल के 37%) की मालवा मृद्भाडो की अपेक्षा बहुलता है। नित्रासा मे दूधिया स्लिप वाले मृद्भाडो के न मिलने से प्रतीत होता है कि यह स्थल चदोली की अपेक्षा परवर्त्ती है। देव के मतानुसार "चदोली नवदाटोली के प्रारभिक प्रकाल से परवर्ती और सभवत निवासा से थोडा पूर्ववर्ती है।"

रगपुर II C और III, प्रकाश II A, नवदाटोली प्रकाल IV (काल

ताम्राश्मीय स्थलों की कार्बन तिथियाँ

स्थल	कार्बन तिथियाँ ई० पूर्व (अर्धायु 5730 वर्ष)	स्थल	कावन तिथियाँ ई० पूर्व (अर्धायु 5730 वर्ष)
अहाड़ (राजस्थान)	TF31, 1270±110 TF32, 1550±110 TF34, 1725±140 TF37, 1305±115 V-56, 1875±100 V-55, 1990±125 V-54, 2000±100 V-58, 2055±105 V-57, 2145±100	ईनामगाँव (महाराष्ट्र)	TF-923, 1025±170 TF-996, 1070±185 TF-922, 1345±100 TF-1085,1440±110 TF-924, 1370±200 TF-1087,1405±105 TF-1086,1535±155 TF-1000,1375±85 TF-1001,1565±95 TF-1235,1275±95 TF-1330,1225±105
बागोर (राजस्थान)	TF-1005, 1006 2110±90 TF-1009,2765±105	कायथा (मध्य प्रदेश)	TF-776, 1605±115 TF-974, 1635±100 TF-778, 1705±95 TF-777, 1780±100 TF-780, 1835±100 TF-779, 1840±110 TF-781, 1880±105
चन्दोली (महाराष्ट्र)	TF-43, 1040±105 TF-42, 1170±120 P-474, 1240±190 P-472, 1300±70 P-473, 1330±70	(डक्कन कालेज के उत्खनन से)	
एरण (मध्य प्रदेश)	TF-326, 1040±110 TF-324, 1270±110 P-525, 1340±70 P-528, 1050±65 P-526, 1280±70 TF330, 1365±100 TF327, 1425±105 TF329, 1445±110 TF331, 1500±95		

स्थल	कार्बन तिथियाँ ई० पूर्व (अर्धायु 5730 वर्ष)
कायथा (मध्य प्रदेश) विक्रम विश्वविद्यालय के उत्खनन से	TF-679, 1300±135 TF-676, 1305±105 TF-401, 1335±105 TF-402, 1380±100 TF-405, 1465±100 TF-397, 1500±100 TF-398 1675±100 TF-678 1685±100 TF-399, 1675±100 TF-396, 1730±110 TF-680, 2015±100
मालवन (गुजरात)	TF-1084, 800±95
नवदाटोली (मध्यप्रदेश)	P-205, 1445±100 TF-59, 1525±110 P-204, 1600±130 P-200, 1610±130 P-475, 1610±70
नवदाटोली (मध्यप्रदेश)	P-201, 1645±130 P-202, 1660±130 P-476, 2300±70

स्थल	कार्बन तिथियाँ ई० पूर्व (अर्धायु 5730 वर्ष)
सिवासा (महाराष्ट्र)	TF-40, 1250±110 P-181, 1250±125
सोनगाव (महाराष्ट्र)	TF-379, 1290±95 TF-383, 1330±100 TF-Z82, 1340±100 TF-380, 1375±100 TF-384, 1565±110
चिरान्द (बिहार)	TF-444, 715±105 1F-334, 845±125 TF-1029, 1050±90 TF-445, 1650±110
महिषदल (पश्चिम बगाल)	TF-390, 855±100 TF-391, 1380±105 TF-392, 1385±110
पाडुर राजार ढीबी (पश्चिमी बगला)	? 1012±120
प्रभास पाटन (गुजरात)	TF-1284,1615±100 TF-1286, 1755±95 TF-1287,2455±100

तालिका 2 : राजस्थान, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, बिहार, गुजरात और ब गाल की ताम्राश्मीय सस्कृतियो की कार्बन तिथियाँ

III), प्रकाश I B, अहाड़ I C और बाहल I B से प्राप्त चमकीले लाल मृद्भांड इनके परस्पर संबंधों को इंगित करते हैं।

ताम्राश्मीय संस्कृतियों के स्तरीकरण तथा कार्बन तिथियों के आधार पर, कालानुक्रम की दृष्टि से, सर्वप्रथम कायथा, द्वितीय बनास, तत्पश्चात् मालवा और अंत में जोर्वे संस्कृति आती हैं। मालवा संस्कृति के स्थल नवदाटोली (प्रकाल I) के पश्चात्, नागदा, एरण, रंगपुर II B प्रकाश, जोर्वे, ईनाम गांव I चंदोली और सबसे अंत में निवासा इस कालानुक्रम में आते हैं। यद्यपि मालवा मृद्भांड प्रकाश में प्रारंभ से ही उपलब्ध हैं, लेकिन काल IA में च० ला० भांड के भी मिलने से उपर्युक्त क्रम में इसका स्थान कुछ परवर्ती प्रतीत होता है।

संगनपल्ली (जिला कुरनूल) तथा अन्य कुछ स्थलों से नवाश्मीय अवशेषों के साथ चित्रित मृद्भांड व चक्र मनके प्राप्त हुए हैं। राव के मतानुसार इस संस्कृति पर मालवा संस्कृति का प्रभाव है। सकालिया इस (कुरनूल की) संस्कृति में आरी से काटे गये किनारे वाली पशव की कुल्हाड़ी मिलने के आधार पर, इस संस्कृति पर पूर्वी (पांडु राजार धीबी) प्रभाव बतलाते हैं, और इसलिए इसकी तिथि लगभग 1000 ई० पूर्व निर्धारित करते हैं।

साली ने ताप्ती घाटी में स्थित सेवाल्दा से एक विशिष्ट प्रकार का लाल मृद्भांड खोजा है, जिसकी पृष्ठभूमि के रंग कई प्रकार के हैं। हथियारों का चित्रण इसकी विशिष्टता है। सेवाल्दा तथा संगनपल्ली दोनों ही महत्त्वपूर्ण संस्कृतियाँ हैं। दोनों ही संस्कृतियों का कार्बन तिथिकरण होना बहुत आवश्यक है।

ङ. ताम्राश्मीय संस्कृतियों की कार्बन तिथियाँ

ताम्राश्मीय संस्कृतियों की तिथियाँ आरेख 9 में अंकित हैं और तालिका 2 में दी गयी हैं।

कायथा से कई कार्बन तिथियाँ प्राप्त हैं। बाद के उत्खनन से ज्ञात तिथियों की आंतरिक संगति के आधार पर हमने पूर्ववर्ती उत्खनन की संगत तिथियों पर भी विचार किया है। यदि TF-680, 2015±100 को कायथा संस्कृति का प्रारम्भ माने तथा ऊपरी सतह से प्राप्त TF-780, 1835±100 ई० पूर्व और TF-779, 1840±110 ई० पूर्व के आधार पर इस संस्कृति का अंत लगभग 1800 ई० पूर्व माने, तो इस संस्कृति का काल-व्यापन लगभग

2000 से 1800 ई० पूर्व मान सकते हैं। सगत तिथियो के आधार पर TF-776,-777,-399 और-678 बनास सस्कृति का काल-विस्तार इस स्थल पर लगभग 1800 से 1600 ई० पूर्व कहा जा सकता है। बनास सस्कृति के पश्चात् आने वाली मालवा सस्कृति का काल-विस्तार TF-974,-398,-397,-402,-676 के आधार पर लगभग 1600 स 1300 ई० पूर्व रखा जा सकता है। अहाड की नौ कार्बन तिथियाँ हैं (तालिका 2, आरेख 9)। विक्टोरिया प्रयोगशाला की पाँच-तिथियो की त्रुटियो की औसत तिथि 1995 ±45 ई० पूर्व अर्थात् लगभग 2000 ई० पूर्व बैठती है। काल IB एक तिथि TF-34, 1725±140 ई० पूर्व है और काल I C की TF-31,± 1270±110 है। TF-31 की तिथि मे एक मानक विचलन जोडा जाय तो अतिम सीमा 1380 या 1400 ई० पूर्व निर्धारित होती है। बनास सस्कृति का कुल काल-विस्तार इस प्रकार लगभग 2000 से 1400 ई० पूर्व कहा जा सकता है।

नवदाटोली के काल III के प्रकालो की आठ कार्बन तिथियाँ उपलब्ध हैं। प्रकाल I की अधिकाश तिथियाँ 1600 ई० पूर्व के आसपास की हैं। यदि इसमे एक मानक विचलन को जोड दिया जाय तो मालवा सस्कृति के प्रारभ की अधिकतम तिथि लगभग 1700 ई० पूर्व होगी। प्रकाल IV की तिथि P-205, 1445±130 है। यदि बीच-की तिथि को लें तो नवदाटोली की मालवा सस्कृति का काल विस्तार लगभग 1700 से 1450 ई० पूर्व के बीच माना जा सकता है। प्रकाल IV से जोर्वे सस्कृति का प्रादुर्भाव होने लगता है।

मध्य प्रदेश के महत्वपूर्ण स्थल एरण की तिथिया अधिक उतार-चढ़ाव दिखलाती है। तालिका 2, आरेख 9, TF-327, 329, और-331 की सगति पूर्ण तिथियो के अनुसार काल I की तिथि लगभग 1500 ई० पूर्व है। इस स्थल पर ताम्राश्मीय युग का अत संभवत लगभग 1000 ई० पूर्व (TF-326) हो गया।

पूना जिले में स्थित मालवा सस्कृति के स्थल ईनामगाँव से अनेक कार्बन तिथियाँ प्राप्त है (तालिका 2)। काल I का विस्तार लगभग 1500 से 1300 ई० पूर्व प्रतीत होता है। काल II जोर्वे सस्कृति का है। जिसका काल विस्तार लगभग 1300 से 800 ई० पूर्व तक है। निश्चित रूप से इससे अधिक कुछ कहने के पहले इस स्थल की पूर्ण उत्खनन रिपोर्ट का इन्तजार करना होगा।

इसके अतिरिक्त सोन गाव, निवासा और चन्दोली से जोर्वे सस्कृति का तिथि मापन किया गया। सोनगांव की चार संगतिपूर्ण तिथियों (TF-379,-383,-382,-380) के अनुसार इस संस्कृति का काल-व्यापन इस स्थल पर लगभग 1400 से 1300 ई० पूर्व है। चदोली से प्राप्त तिथियो (TF-43, -42 और P-474,-472,-473) के अनुसार इस सस्कृति का काल-मीमा इस स्थल पर लगभग 1300 से 1000 ई० पूर्व के बीच है। निवासा के दो नमूनो TF-40 तथा P-181 की तिथियाँ क्रमश 1250±110 तथा 1250±125 ई० पूर्व हैं। अत जोर्वे सस्कृति के पूर्ण काल-विस्तार को लगभग 1400 से 800 ई० पूर्व स्थिर किया जा सकता है।

अल्विन और जोशी ने गुजरात के एक स्थल मालवन का उत्खनन किया। यहाँ से केवल मात्र-तिथि TF-1084, 800±95 ई० पूर्व है। उत्खनको ने प्राप्त स्तर की तुलना रगपुर II C से की है। राव ने रगपुर मे इस चरण की तिथि लगभग 1000 ई० पूर्व निर्धारित की है।

च पूर्वी ताम्राश्मीय संस्कृतियाँ

प्राप्त सामग्री और चित्रित मृद्भाडो की अनुपस्थिति के आधार पर, बी० एन० मिश्रा ने अपने लेख मे पूर्वी ताम्राश्मीय सस्कृतियो को दो भागो मे विभाजित किया है। इस विभाजन का आधार है, काकेरिया तथा सोनपुर मे सादे (अचित्रित) काले-लाल मृद्भाड तथा चिराद, महिषदल, पाडुर राजार ढीबी से चित्रित काले-लाल मृद्भाड।

महिषदल और पाडुर राजार ढीबी पश्चिमी बगाल के दो महत्वपूण ताम्राश्मीय सस्कृतियो के स्थल हैं। महिषदल के काल I के मुख्य विशेषक नेगल और मिट्टी के झोपडे, लघु अश्म, एक चपटी ताम्र कुल्हाडी, हड्डी के उपकरण, जले हुए चावल और विविध प्रकार के मृद्भाड हैं। यहाँ चित्रित और सादे दोनो ही प्रकार के लाल मृद्भाड प्रचलित थे। लेकिन काले-लाल मृद्भाड ही यहाँ की मुख्य परपरा है। प्राप्त अवशेषो की समानता पाडुर राजार ढीबी के काल II और III से है। टोटीदार कटोरे, सपीठ थालियो और अत्येष्टि विधियो से ज्ञात होता है कि महिषदल का महाराष्ट्र तथा मध्य भारतीय ताम्राश्मीय सस्कृतियो से सबध रहा होगा। इन सस्कृतियो के तिथि निर्धारणार्थ पुरातात्विक प्रमाण उपलब्ध न होने से, हमें पूर्ण रूप से कार्बन तिथियो पर ही निर्भर रहना होगा।

बिहार मे चिरांद के काल IIA से ताम्राश्मीय संस्कृति के अवशेष मिले हैं। उत्खनक धर्मा व सिन्हा के अनुसार काल I नवाश्मीय संस्कृति का है जबकि संकालिया इसे ताम्राश्मीय संस्कृति की प्रावस्था मानते हुए धातु के मिलने की आशा रखते हैं। (संकालिया के अनुसार सभी मृद्भांड चाकनिर्मित हैं, जबकि वर्मा अधिकांश मृद्भांडो को हस्तनिर्मित मानते हैं। संकालिया के विचार से प्राप्त पकी मिट्टी की प्रतिमा में और नवदाटोली तथा ईनामगांव से प्राप्त प्रतिमाओ मे समानता है। अध्याय 3 के अंतर्गत हम चिरांद काल का वर्णन कर चुके हैं। काले-लाल, लाल तथा स्याह स्लिप वाले मृद्भांड और ताम्र उपकरण काल II की अन्य विशिष्टताएँ हैं। सपीठ थालियां एक प्रमुख बरतन है। बिना निश्चित आकार के उत्खनक ने एक लघु शव पेटिका (Sarcophagus) का सादृश्य पश्चिम से बतलाया है। पश्चिमी बंगाल व बिहार की ताम्राश्मीय संस्कृतियो के काले-लाल मृद्भांड, काला स्लिप वाला मृद्भांड, टोंटीदार कटोरे, तथा सपीठ थालियां दोनो क्षेत्रो की संस्कृतियो की समानताओं को परिलक्षित करते हैं।

तालिका 2 में उल्लिखित कार्बन तिथियो के आधार पर, चिरांद का काल विस्तार लगभग 1800-1200 ई० पूर्व निर्धारित होता है। काल IIA के तीन नमूनो, TF-444,-334 और -1029 (तालिका 2 आरेख 9) के मापने से इस संस्कृति का अधिकतम सीमा विस्तार लगभग 1200 से 800 ई० पूर्व निश्चित होता है। (TF-1029 की तिथि में एक मानक विचलन जोड़ने से उपर्युक्त काल-विस्तार प्राप्त हुआ)। काल IIB से लोहा भी उपलब्ध हुआ। TF-336, 765±100 ई० पूर्व (तालिका 7) के एकमात्र नमूने के आधार पर IIB की तिथि लगभग 750 ई० पूर्व है।

महिषदल की चार कार्बन तिथियां उपलब्ध हैं। काल I के ताम्राश्मीय युग के तीन नमूने (TF-392,-391 और-390), इसका अधिकतम काल-विस्तार लगभग 1300 से 800 ई० के पूर्व दर्शाते हैं। ये तिथियां आत्मसंगत अनुक्रम इंगित करती हैं। काल II में लोहा प्रयुक्त होने लगा था। इस काल की तिथि लगभग 750 ई० पूर्व (TF-330) है। संभवत. जादवपुर विश्व-विद्यालय से प्राप्त, मात्र एक नमूने के आधार पर पांडुर राजार ढीबी ताम्राश्मीय काल की तिथि 1012±120 ई० पूर्व दी गयी है।

(V) ताप-सदीप्तिक तिथियाँ

मुख्यत. दोआब क्षेत्र मे, चित्रित धूसर तथा काले-लाल मृद्भांडो से पूर्व

गेरुए मृद्भाड प्रचलित थे। इनके विषय मे बहुत मतभेद है। कुछ विद्वान गेरुए भाडो का सबंध ताम्र सचय (Copper Hoard) से तो अन्य सैंधव शरणार्थियो से जोडते हैं। कुछ विद्वान् समझते हैं कि यह किसी एक सस्कृति का द्योतक न होकर अनेक गेरुए व लाल मृद्भाड प्रयोग करने वाली सस्कृतियो का द्योतक है। अभी तक इस सस्कृति की कोई भी कार्बन तिथि उपलब्ध नही है।

आक्सफोर्ड पुरातत्त्व अनुसधानप्रयोगशाला के डा० हक्सटेबल ने गेरुए मृद्भाडो की निम्नलिखित ताप-सदीप्तिक तिथियां भेजी हैं :—

लाल किला	1800 ई० पूर्व	±10%
अतरंजी खेडा	1690 ई० पूर्व	
झिझना	2070 ई० पूर्व	
नसीरपुर	1340 ई० पूर्व	

उपर्युक्त सभी स्थल दोआब (उत्तर प्रदेश) मे हैं।

अध्याय—4 सदर्भिका

इस अध्याय विषयक मुख्य ग्रन्थ

D P Agrawal — The Copper Bronze Age in India, 1971 (Delhi)

D P Agrawal and Sheela Kusumgar — Prehistoric Chronology and Radiocarbon Dating in India, 1973 (Delhi)

D. P Agrawal and A. Ghosh (Eds) — Radiocarbon and Indian Archaeology, 1973 (Bombay)

B & F R Allchin — Birth of Indian Civilisation, 1968 (Harmondsworth)

J M. Casal — Fouilles de Mundigak, 1961 (Paris)

J. M. Casal — Fouilles de Amri, 1964 (Paris)

J. M Casal — La Civilisation de l'Indus et see Enigmes, 1969 (Paris).

W. A. Fairservis — Excavation in the Quetta Valley, West Pakistan, 1956 (New York)

W A. Fairservis — Archaeological Survey in the Zhob and Loralai Districts, West Pakistan, 1959. (New York)

D H Gordon	The Prehistoric Background of Indian Culture, 1960 (Bombay)
D Mandal	Radiocarbon dates and Indian Archaeology 1972 (Allahabad)
V N. Misra and M. S Mate (eds)	Indian Prehistory 1964, 1965 (Poona)
S. Piggott	Prehistoric India, 1961 (Hormbondsworth)
H. D Sankalia	Prehistory and Protohistory in India and Pakistan, 1962 (Bombay)
H. D Sankalia, B. Subba Rao and S B Deo	Excavation at Maheshwar and Navadatoli 1952-53, 1958 (Poona).
H D. Sankalia, S B Deo and Z. D. Ansari	From History to Prehistory at Nevasa, 1960 (Poona).
H D Sankalia, S. B. Deo and Z D Ansari	Excavation at Ahar (Tambavati), 1969 (Poona).
H. D Sankalia, S B Deo and Z. D Ansari	Chalcolithic Navdatoli (Excavation at Navdatoli 1957-59), 1971 (Poona, Baroda),
R E. M Wheeler	The Indus Civilisation, 1968 (Cambridge)

इस अध्याय विषयक मुख्य लेख
पाकिस्तानी पुरातत्व पर

F. A. Khan	Pakistan Archaeology, Vol 2, 1965.

कालीबगन व सैंधव सस्कृति के
कालानुक्रम पर

B B Lal and B K. Thapar.	Cultural Forum, Vol. IX, No 4, p 78-88, 1967.

खानेदार कुटी-माडलो पर

F A Durrani	Ancient Pakistan, Vol. I, p. 51, 1964.

मोहरो पर :

B. Buchanan : Archaeology, Vol. 20, p. 107, 1967.

T. C. Bibby : Antiquity, Vol. 32, p. 243, 1958.

C. J. Gadda Proc. of British Academy, Vol. 18, p. 191 1932.

P. V Glob and T. C. Bibby . Scientific American, Vol. 203, p. 62, 1960.

S. R. Rao : Antiquity, Vol. 37, p 96, 1963.

अन्य ताम्राश्मीय सस्कृतियो पर ·

M. K. Dhavalikar : World Archaeology, Vol 2, No. 2, p. 337-346, 1971.

K N Dikshit : Bull of the National Museum, No. 2, p. 21-28, 1971.

J. P. Joshi : The Eastern Anthropologist, Vol. XV, No 3, p 2-5, 1963.

H. D. Sankalia : Artibus Asiae, Vol. 26, p 322, 1963

H D. Sankalia · Indica, Vol 6, No. 2, p 59 80, 1969.

B K. Thapar · Ancient India, Nos, 20 and 21, p. 5-167, 1964-65

उत्तरी व पूर्वी भारत की :
पुरैतिहासिक सस्कृतियो पर :

D. P. Agrawal : Asian Perspectives, Vol. XII, 1971.

S. P Gupta : Jour. Bihar Res. Soc., Vol. 51, p. 1-7, 1965.

B. B. Lal : Ancient India, No. 7, p. 20-39, 1951.

B. B Lal : American Anthropologist, Vol. 70, No. 5, p 857-863, 1968.

V. N Misra : The Eastern Anthropologist, Vol 23, No 3, p, 243-257, 1970.

अध्याय 5

लौहकालीन संस्कृतियों का कालानुक्रम

पुरैतिहासिक व ऐतिहासिक काल के बीच के समय मे, लौह-तकनीक के प्रादुर्भाव और प्रयोग ने अतिरिक्त उत्पादन द्वारा समाज मे चौमुखी विकास का मार्ग खोल दिया। बिना लौह अयस्को की बहुलता की केवल तकनीक का ज्ञान ही पर्याप्त नही। ताम्र की अपेक्षा लौह की विशिष्टता उसकी कठोरता के कारण नही बल्कि प्रचुरता के कारण थी। हिट्टाइट साम्राज्य की शक्ति का आधार लौह धातुकर्म पर एकाधिकार था। उसी प्रकार मगध साम्राज्य की शक्ति का स्रोत राज्य द्वारा सचालित खानें तथा अयस्को का शोधन तथा लौह व्यापार पर एकाधिकार भी था।

लगभग 1200 ई० पूर्व हिट्टाइट साम्राज्य के टूटते ही लौह तकनीक बडी तेजी से पश्चिमी एशिया मे फैल गयी। इस उपमहाद्वीप के उत्तर पश्चिम मे लगभग 1000 ई० पू० में अल्प मात्रा में लोहा मिला है। लेकिन उत्तर भारत मे इसके पूर्ण प्रभाव को हम 600-500 ई० पू० में ही देखते हैं। दक्षिण भारत में लोहे का प्रादुर्भाव काफी पूर्ववर्ती लगता है। नीचे हम लौह तकनीक के प्रसारण तथा काल निर्धारण पर प्रकाश डालेंगे—सर्वप्रथम उत्तरी-पश्चिमी पर, फिर दोआब पर, अन्त मे दक्षिणी क्षेत्र के उन्ही स्थलो को लेंगे जिनके प्रमाण तिथि-निर्धारण की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

1 उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्र

क स्वात घाटी

स्टाकुल के नेतृत्व में इटली के पुरातत्ववेत्ताओ तथा दानी ने स्वात तथा बाजौर घाटी के अनेक क्षेत्रो का उत्खनन किया। यहाँ से अधिकाशत शवाधान तथा अन्त्येष्टि सामग्री उपलब्ध हुई। इसके आधार पर इतालवी विद्वानो (दानी की तिथियो के विपरीत) ने इन्हें तीन कालो, (I पुरातन, II मध्य, तथा III अर्वाचीन) मे बाटा। इन कालो का उन्होने गालीगाई अनुक्रम से निम्न सबंध स्थापित किया है :—

I काल पुरातन	=	V काल
II काल मध्ययुग	=	VI काल
III काल अर्वाचीन	=	VII काल

इस क्षेत्र मे गधार शवाधान सस्कृति के मुख्य स्थान लोएवान्र, तीमारगढ, बुटकारा, काटेलाई और गालीगाई हैं। स्टाकुल के मतानुसार चारसद्दा के सबसे प्रारंभिक स्तर की तुलना भी गालीगाई के काल V से की जा सकती है। इस काल की कब्रें खडे पत्थरो व फर्श की बनी हैं। समकोण इमारतें, कुए, हस्त-निर्मित मृद्भाड व मुख्यत ताम्र (व बहुत कम लोह) उपकरण भी मिले हैं। लोहे का मिलना स्टाकुल अपवाद समझते है। इस काल मे शवाधानो की अपेक्षा मुर्दे जलाये जाते थे। उनके अनुसार इस काल की तीमारगढ़ कब्रें है . न० 102, 104, 142, 149, 192, 197। कब्र न० 101 के सामान का काल V निर्धारित किया गया है। स्टाकुल ने उस काल की समानता हसानलू लोह-युग के काल I प्रकाल 5 (लगभग 1300-1000 ई० पू०) और गालीगाई काल V से प्राप्त घु डीदार पीठवाले धूसर भांड से की तथा काल VI की समानता हसानलू IV से की है। इस काल की बस्ती तथा कब्रें काल V के सदृश हैं। लेकिन इस काल मे मुर्दों को जलाने की अपेक्षा उन्हें दफनाने की प्रथा अधिक प्रचलित थी। विविध प्रकार के चाकनिर्मित उत्कृष्ट धूसर मृद्भाड प्रचलित थे, जिन पर मुख्यत ज्यामितिक डिजाइन उत्कीर्ण थे। इस काल से धातुओ मे ताम्र ही मिला है। लोहा केवल चाकनिर्मित अलकृत लाल मृद्भाडो के साथ काल VII से मिला। इस काल की अन्य विशेषताएँ हैं . मानव मृण्मूर्तिया, व काफी मात्रा मे लोह उपकरण। स्टाकुल इस काल की तुलना हसानलू IIA और दीर, बुनेर और चितराल की कब्रो से करते है। इस प्रकार हसानलू के आधार पर काल VII का तिथि-निर्धारण लगभग 500-400 ई० पू० निर्धारित होता है।

यद्यपि स्वात घाटी की बहुत सी कार्बन तिथियाँ (तालिका 3) प्राप्त है, यहाँ हम केवल उन्ही तिथियो को लेंगे जो गालीगाई काल V तथा उसके बाद के काल की हैं। लोह के उद्भव की तिथि निर्धारणार्थ, लोएबान्र I और तीमारगढ कब्रो की पाँच कार्बन तिथियाँ प्राप्त हैं। कब्र न० 101 की अत्येष्टि सामग्री के आधार पर स्टाकुल इसे काल V की बताते हैं। वास्तव मे इस कब्र के प्रथम शवाधान मे पूर्ण शव था, जो कि बाद के आंशिक शवाधान द्वारा विक्षप्त हो गया। इसकी दो तिथिया उपलब्ध हैं। प्रारंभिक शवाधान की तिथि 1530 ई० पू० व बाद की कब्र की 940 ई० पू० है। लोएबान्र I की तीन

स्वात क्षेत्र के स्थलों की कार्बन तिथियाँ

स्थल		कार्बन तिथियाँ ई० पूर्व अर्धायु 5730 वर्ष			गालीगाई अनुक्रम पर आधारित
गालीगाई	17	R—379,	2422±55	काल I	
		R—379a,	2355±70	,,	नवाश्मीय
		R—380,	2376±140	,,	
,,	18	R—378a,	1923±55	काल II	सैंधव सादृश्यता
		R- 377a,	1608±50	काल III	बुर्जहोम I सादृश्यता
बुट कारा		R—194,	547±41	काल IV	
लोएवान्न	IT—28	R—276,	583±52	,,	
	T—87	R—278,	501±52	,,	बुर्जहोम II सादृश्य
कोटलाई I	—39	R—279,	233±46	,,	
लोएवान्न	I, T—54	BM—195,	1120±154	काल V	
,,	T—61	BM—196,	985±154	,,	
तीमारगढ़ कब्र 101, कब्रगाह		?	1531±62	,,	न्यून मात्रा मे लोहा
		?	940±62	,,	
लोएवान्न	I,T—21	R—474,	510±72		
काटेलाई	I,T—48	R—477,	1006±62		
,,	T—48	R—477a,	872±52		अनिश्चित
,,	T—64	R—476,	1294±154		सांस्कृतिक
,,	T—39	R—479,	367±52		कालानुक्रम
बुरामा	I, 5 A	R—195,	440±46		
,,	8	R—196,	712±83		

तालिका 3—स्वात घाटी तथा बाजौर क्षेत्र के नवाश्मीय तथा उत्तरकालीन स्थलों की कार्बन तिथियाँ

तिथियां BM 195,-196 और R-474 हैं। इन पांच तिथियो मे से तीन लगभग 100 ई० पू० के आसपास बैठती हैं। अत हम स्वात घाटी में लोह के उद्भव की तिथि इसी काल मे मानते हैं। ईरान के प्रारंभिक स्थलो के लोह युग की तिथि (1200-1000 ई० पू०) से यह तिथि ठीक बैठती है। परन्तु यह कार्बन तिथियाँ काल V मे लोह उपकरणो के प्रथम आगमन को ही निर्धारित करती हैं। अत स्टाकुल काल VII (लगभग 500-400 ई० पू० को ही पूर्ण विकसित लोह युग मानता है। इस मत के विपरीत दानी कहते हैं कि चूँकि टुक्सी ने इन्हें अश्वकायन-अस्सकानोइ का शवाधान माना, सभी इटालवी पुराविद इनकी तिथि चौथी शताब्दी ई० पू० तक लाने का प्रयास करते हैं। वे स्टाकुल की चारसद्दा की सामग्री से तुलना पर शका व्यक्त करते हुए कहते हैं कि विभिन्न सस्कृतियों की सामग्री को बेतरतीब तुलना करने से समस्या और उलझ जाती है जैसा कि इस समस्या के साथ हुआ।

दानी ने तीमारगढ़ लोह युग को दो कालो III और IV में बांटा है। काल IV की विशेषताएँ हैं—विविध प्रकार के शवाधान, लोह उपकरण, मानव लघु मृण्मूर्तियाँ, लाल और धूसर दोनों प्रकार के मृद्भाड। वे काल IV को (स्टाकुल के) गालीगाई काल III के समकक्ष रखते हैं। यद्यपि स्वात मे लोहा अल्प मात्रा मे मिला, तीमारगढ़ काल III मे अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित हो गया था। दानी इस काल की तुलना स्टाकुल के काल IV से करते हैं जिसकी तिथि 940±62 ई० पू० है। इस आधार पर दानी का काल IV गालीगाई के काल VIII के समतुल्य हुआ।

इस स्तर पर, लोह के उपकरणो की सख्या तथा उनके आर्थिक महत्व की बहस को छोड हम सक्षेप मे कह सकते हैं कि इस क्षेत्र मे लोहे का उद्भव लगभग 1000 ई० पू० हुआ।

च बलूचिस्तान

स्वात के दक्षिण मे बलूचिस्तान के अनेक स्थलो से स्टाइन तथा मोकलन को सगोरा शवाधान मिले। मुगल घुडई के संगोरा शवाधान के साथ पत्ते के आकार के, छोटे, नुकीले, तिकोने, कटीले वाणाग्र, कटार और चाकू मिले। जीनवरी से एक मोटा लोह का मत्स्य कांटा मिला। इसी समूह के अन्य स्थल जान्गीयान और नसीराबाद हैं। इन सगोरा शवाधानो के विशेषक हैं—टोंटीदार और हत्थेदार सुराही, त्रिभागी वाणाग्र और हस्तनिर्मित मृद्भांड। लौंडो मृद्भाडो के समान इन भाडो पर सर्किल या पास रूप के डिजाइन बने हैं

जिनकी सकालिया ने आम्री तथा टोगाउ के प्रारंभिक काल के डिजाइनो से तुलना की है। अल्चिन के विचार से यह डिजाइन एक ऐसा काकेशियन प्रभाव है, जिसे आर्यों के साथ जोडा जा सकता है। बनर्जी हडप्पा सस्कृति के विजेताओ की सस्कृति को इस प्रकार के हीन उत्तराधिकारियो के अवशेषों को मानने के विरुद्ध हैं। स्यालक B से सादृश्य के आधार पर पिगट इन शवाधानो का काल लगभग 1100-1000 ई० पू० निर्धारित करते हैं, बनर्जी लगभग 800 ई० पू० व अल्चिन लगभग 1100 से 750 ई० पूर्व के बीच। स्यालक B कालानुक्रम के पुन सिंहावलोकन के आधार पर गिर्शमान इसे लगभग 900 ई० पू० की तिथि देते हैं। हमारे मतानुसार इन सगोरा शवाधानों की तिथि स्यालक B से कुछ बाद की, लगभग 800 ई० पू० है। अभी तक इनकी कोई भी कार्बन तिथि प्राप्त नही हुई।

पिराक दब की विशिष्टताएँ हैं दूधिया या पाडु स्लिप पर द्विरंगी चित्रण, तिरछे, अनेक प्रकार के त्रिभुज, जटिल जालीदार डिजाइन का अलकरण। अधिकाश सादे मृद्‌भांड हस्तनिर्मित हैं। राइक्स इसकी तुलना सामार्रा के स्तर (ईराक), निनेवेह III और अपीचियाह से करते हुए इस सस्कृति की तिथि लगभग 5000 ई० पू० बताते हैं। अधिकाश लोग इतनी पूर्ववर्ती तिथि पर शका व्यक्त करते हैं। यद्यपि डेल्स इसके मृद्‌भाडो में पूर्ववर्ती छाप देखते हैं तो भी वह इसे अपने चरण D के अतर्गत ही रखते हैं। कजाल इसका काल 1000 ई० पूर्व से पूर्ववर्ती नही समझते। इसके ऊपरी स्तरो से लौह उपकरण मिले हैं।

हमने पिराक के ऊपरी स्तरो के तीन नमूनों को मापा (तालिका 7) जो कजाल के अनुसार प्रथम सहस्राब्दी के हैं। इनकी तीन सुसगत कार्बन तिथियाँ (TF-861-1108 और-1109) हैं। इनकी औसत तिथि लगभग 800 ई० पू० थी, जो कि कजाल के अनुमान को पुष्ट करती है।

II. उत्तरी व पूर्वी भारत

इसी शीर्षक के अतर्गत हम उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल की लौह सस्कृतियो की विवेचना करेंगे। पश्चिमी दोआब में लोहा चि० धू० मृद्‌भाड के साथ और बिहार तथा बगाल में काले-लाल मृद्‌भांड के साथ सर्वप्रथम प्राप्त हुआ। पश्चिमी एशिया से इनके कोई भी पुरातात्विक समतुल्य प्रमाण नहीं मिले। अत. हमारी विवेचना स्तरविन्यास तथा साहित्यिक तथ्यो पर आधारित है।

क चि० धू० मृद्भाड सस्कृति का कालानुक्रम

लाल के मतानुसार हस्तिनापुर मे काल III पर्याप्त लबे अतराल के बाद आया। इस अंतराल काल मे चि० धू० मृद्भाड पूर्णत विलुप्त हो गया तथा एन० बी० पी० प्रचलित हो गयी। साथ ही सादे धूसर मृद्भाड का ह्रास भी शुरू हुआ। कच्ची मिट्टी की ईंटो के स्थान पर पक्की मिट्टी की ईंटें प्रयुक्त होने लगी तथा लोह के साथ मुद्रा का चलन भी हुआ। अत इन सब परिवर्तनो के लिए लगभग दो सौ साल लगे होगे। लाल के अनुसार चि० धू० मृद्भाड का अत हस्तिनापुर मे लगभग 800 ई० पू० हुआ और एन० बी० पी० का प्रारम लगभग 600 ई० पू०। काल II के 2 1 मीटर आवासी निक्षेप को 300 साल देकर चि० धू० मृद्भाड के प्रादुर्भाव की तिथि लाल लगभग 1100 ई० पू० निर्धारित करते हैं।

तिथि निर्धारण मे चि० धू० मृद्भाड और एन० बी० पी० के साथ मिलने वाले लाल भाडो के आकारो का अध्ययन भी महत्वपूर्ण है, वस्तुत समय के साथ लाल सादे भाड के आकार मे चि० धू० भाड एव एन० बी० पी० की अपेक्षा अधिक परिवर्तन हुए। अतरजीखेडा मे चि० धू० भाड केवल 3-10% तथा हस्तिनापुर मे भी परिमाण की दृष्टि से अधिक नही मिले जबकि काल III से एन० बी० पी० के केवल 101 ही ठीकरे मिले।

लाल ने चि० धू० मृद्भाड को सभवत हडप्पा सस्कृतिक के अत तक पहुंचाने के लिए प्रत्येक अतराल को एक लबा समय दिया, जिस पर गोर्डन तथा व्हीलर दोनो ने शका व्यक्त की है। गोर्डन काल IV की तिथि 50 ई० पूर्व से 400 ई० के बीच रखते हैं तथा एन० बी० पी० कालानुक्रम अधिकतम 400 ई० पू० रखते हैं। गोर्डन चि० धू० मृद्भाड की 700 और एन० बी० पी० के प्रारभ की 350 ई० पू० तिथि निर्धारित करते हैं। व्हीलर के विचार से यदि गंगा की घाटी मे एन० बी० पी० को पाँचवी सदी ई० पू० रखा जाय तो चि० धू० भाड का प्रारभ आठवी ई० पू० निर्धारित किया जा सकता है।

लाल ने निम्न आधारो पर चि० धू० मृद्भाड का तिथि निर्धारण किया था।

(i) हस्तिनापुर की बाढ को महाभारत की घटनाओ से सबधित करना।
(ii) चि० धू० मृद्भांड स्तर से लोहे का न मिलना।
(iii) चि० धू० मृद्भाड तथा एन० बी० पी० के मध्य का अतराल।
(iv) एन० बी० पी० की प्रारभिक पूर्ववर्ती तिथि।

हस्तिनापुर मे इस सस्कृति को महाभारत की घटनाओ से जोडना इस समय तक विवादास्पद ही है। टडन को आलमगीर से, गौड को अतरजीखेडा तथा लाल और पाडे को अपने ही वाद के उत्खनन से हस्तिनापुर से चि० धू० भाड स्तरो से लोहा प्राप्त हुआ। अत अब सर्वमान्य है कि चि० धू० भाड एक लोहयुगीन सस्कृति थी।

हडप्पा तथा चि० धू० भांड के मध्य एक लबा अतराल है। काले-लाल भाड उत्तर प्रदेश मे अभी भी एक पहेली है। लेकिन गौड द्वारा अतरजीखेडा के उत्खनन से महत्वपूर्ण तथ्य सामने आया कि एक विशिष्ट प्रकार के काले-लाल भाड ने चि० धू० भाड का स्थान ले लिया। चि० धू० भाड के पश्चात् एक बडी बाढ के निशान मिलते हैं। हस्तिनापुर के अत की कहानी इससे सटीक बैठती है। लाल ने पुराणिक तथ्यो के आधार पर कहा कि जब हस्तिनापुर को गगा बहा ले गयी तो निचक्षु ने इसे त्याग दिया और कौशावी जाकर बस गये। यहाँ पर इस बाढ के प्रकोप के बाद एन० बी० पी० का काल प्रारभ होता है जब कि अन्य स्थलो पर जैसे अतरजीखेडा, श्रावस्ती आदि मे चि० धू० भाड और एन० बी० पी० की भाड परम्परा के मध्य निरतरता मिलती है। अत हस्तिनापुर के अतराल को केवल स्थानीय ही समझना चाहिए। इसी सिलसिले मे हम चि० धू० भांड तथा एन० बी० पी० केन्द्रीय तथा परिधीय क्षेत्रो तथा सबधित लाल प्रकार के भाडो की विवेचना करेंगे।

चि० धू० भाड एक विस्तृत क्षेत्र मे सिंध के लखियावीर से गिलूद तक और कन्नौज और रोपड तक मिला है। दूसरी ओर एन० बी० पी० दक्षिण मे ब्रह्मपुरी से लेकर उत्तर मे रोपड तक, पश्चिम में प्रभास पाटन से पूर्व मे बानगढ़ और चद्रकेतुगढ़ तक। अत कहा जा सकता है कि चि० धू० भाड का विस्तार मुख्यत उत्तर प्रदेश तथा पजाब मे था, तो एन० बी० पी० का सभवत बिहार मे। बिहार के लौह अयस्को का विस्तृत उपयोग तथा एन० बी० पी० का प्रसार सभवत सबधित था। इस सदर्भ मे एन० बी० पी० की विशिष्ट प्रकार की लौह सदृश्य काचाभ स्लिप लौह सबध की सूचक सी लगती है।

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर निम्नलिखित सभावनाएँ उभरती हैं—

(i) दोआब के मूलभूत लाल भाड क्षेत्र मे चि० धू० भा० ने पश्चिमी से और एन० बी० पी० भांड ने पूर्व से अतिक्रमण किया।

(ii) कुछ विशिष्ट लाल भाडो के आकार पश्चिम मे चि० धू० भाड के साथ और पूर्व मे एन० बी० पी० भाडो के साथ मिलते हैं। यह तथ्य उनके

बीच समकालीनता दर्शाता है और साथ ही चि० धू० भांड का प्रारंभ पूर्ववर्ती होना भी।

(iii) जिस क्षेत्र मे चि० धू० भांड और एन० बी० पी० साथ मिलते हैं वहाँ पर एन० बी० पी० चि० धू० भांड के बाद आती हैं। यह तब सभव हुआ जब दोआब के जगल साफ हो चुके थे और कोई पारिस्थितिकीय व्यवधान न रहा था।

(iv) राजघाट, वैशाली और कोशांबी का घटिया व अनगढ़ चि० धू० भांड पश्चिमी क्षेत्रो की अपेक्षा पूर्ववर्ती है।

(v) पूर्व के अपने समकक्ष भांडों की अपेक्षा पश्चिम और दक्षिण के एन० बी० पी० का काल परवर्ती है। इसकी पुष्टि पश्चिम में एन० बी० पी० के साथ पूर्व के एन० बी० पी० परवर्ती लाल भांडो के मिलने से होती है।

(vi) यदि तिलोराकोट (नेपाल), श्रावस्ती तथा कन्नौज के मध्य सीधी रेखा खीची जाय तो यह चि० धू० भांड तथा एन० बी० पी० संस्कृतियो को दो विशिष्ट क्षेत्रो मे विभाजित करेगी।

संपूर्ण भांड परिमाण मे चि० धू० भांड तथा एन० बी० पी० की मात्रा बहुत कम है। यह इस बात का द्योतक है कि ये भांड एक प्रकार शाही पात्र (deluxe ware) थे। पूरी सांस्कृतिक सज्जा का अध्ययन आवश्यक है, जो पूरे क्षेत्र तक पहुँचे।

हस्तिनापुर मे नासपाती के आकार के पात्र (अहिच्छत्र 10A प्रकार), किनारेदार (Carinated) हांडी, छोटे कटोरे वाले लाल मृद्भांड हस्तिनापुर, अहिच्छत्र तथा प्रकाश मे एन० बी० पी० के साथ मिले। लेकिन यही आकार श्रावस्ती तथा राजघाट मे उत्तर कालीन एन० बी० पी० के साथ हैं जबकि हस्तिनापुर काल II के लाल भांड के आकार श्रावस्ती मे एन० बी० पी० भांड के साथ, व राजगीर और वैशाली मे भी मिले हैं। सिन्हा के मतानुसार लहरदार कटोरे इस बात की पुष्टि करते हैं कि चि० धू० भांड काली स्लिप वाले भांड और एन० बी० पी० आधारभूत रचना की दृष्टि से एक ही परंपरा का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस दृष्टि से काल का अतराल महत्वपूर्ण नहीं रहता। लेकिन निम्नलिखित तथ्य इस मत के विपरीत पड़ते हैं। (i) मूलभूत रूप से चि० धू० भांड और एन० बी० पी० के वितरण क्षेत्र भिन्न हैं, (ii) चि० धू० भांड पर विशिष्ट चित्रण है; (iii) चि० धू० भांड के निर्माण मे विशिष्ट प्रकार का धूसर रंग देने के लिए ताप व हवा को नियंत्रित किया गया (iv) एन० बी० पी० भांड मे विशिष्ट प्रकार की कांचाभ स्लिप है। दोनो भांडो मे रचना की

समानता इन भांडो मे दोआब की समान जलोढक मिट्टी के प्रयोग के कारण है। अत' हस्तिनापुर मे चि० धू० भांड और एन० बी० पी० का अल्पकालीन अनुक्रमण आंशिक रूप से सही हो सकता है। यदि वितरण क्षेत्रो को भी ध्यान में रखा जाय तो इन दो भाडों को कुछ सदियो तक समकालीन माना जा सकता है।

लौह प्रयोग, आशिक रूप से एन० बी०पी० की समकालीनता तथा दोआब मे नागरीकरण के प्रारंभिक चरण मे मिलने के कारण, चि० धू० भांड को ताम्राश्मीय सस्कृति के अतर्गत नही रखा जा सकता। चि० धू० भांड के प्रारंभिक काल की तिथि 1100 ई० पू० की अपेक्षा पुरातात्त्विक प्रमाणो के आधार पर लगभग आठवीं सदी ई० पू० निर्धारित की जा सकती है, जो कि व्हीलर के अनुमान (लगभग 800-500 ई० पू०) से भी ठीक बैठती है।

राजस्थान मे नोह तथा यू० पी० मे अतरजीखेडा और हस्तिनापुर के चि० धू० भांड स्तर से कार्बन की 14 तिथियां (तालिका 4) प्राप्त हैं। यद्यपि कायथा तथा अहिच्छत्र से भी (लगभग 400 ई० पू०) अनेक कार्बन तिथियां प्राप्त हैं पर उनका चि० धू० भा० से सबध निश्चित न होने के कारण महत्व नहीं है। नोह में इस भांड की प्रारंभिक तिथि TF-993, 725±150 और UCLA-703 B, 820±225 के अनुसार लगभग 800 ई० पू० निर्धारित की जा सकती है। हस्तिनापुर की कार्बन तिथियो के अनुसार इस सस्कृति का अत लगभग चार सदी ई० पू० है। अतरजीखेडा से छठी सदी ई० पू० की दो अन्य तिथियां शायद और हैं (विदेशी प्रयोगशालाओं से) TF.191 1025± 110 प्राचीन तिथि होने के कारण अन्य तिथियो से असगत हैं। ये तिथियां हस्तिनापुर तथा अतरजीखेड़ा की अपेक्षा नोह में इस सस्कृति की तिथि और पहले निर्धारित करती है। कार्बन तिथियां इस सस्कृति के कालविस्तार को लगभग 800 से 350-400 ई० पू० के मध्य सीमित करती हैं।

III. एन० बी० पी० मृद्भाड सस्कृति का कालानुक्रम

भारत में कार्बन तकनीक के प्रयुक्त होने से पूर्व समझा जाता था कि एन० बी० पी० भांड लगभग 600 से 300 ई० पू० प्रचलित थे और ये प्रमाण पुरातात्त्विक कालानुक्रम के लिए प्रयुक्त होते थे। सर्वप्रथम हम दोआब के महत्त्वपूर्ण स्थल हस्तिनापुर से अपना सर्वेक्षण प्रारभ करते हैं।

काल III के अंत के पश्चात्, काल IV मे, लाल के अनुसार लगभग 200 ई० पू० मथुरा मे मुद्रा प्रचलित हुई। काल III तथा IV के मध्य, लाल 100

चित्रित धूसर भाड स्थलों की कार्बन तिथियाँ

स्थल	कार्बन तिथियाँ ई० पूर्व (अर्धायु 5730 वर्ष)
नोह (राजस्थान)	TF-1144, 490±90
	UCLA-703A, 605±260
	TF-993, 725±150
	UCLA-703B, 820±225
हस्तिनापुर (उत्तर प्रदेश)	TF-83, 335±115
	TF-112, 375±100
	TF-90, 390±115
	TF-85, 505±130
	TF-91, 570±125
अतरंजीखेडा (उत्तर प्रदेश)	TF-291, 535±100
	TF-191, 1025±110
खलौआ (उत्तर प्रदेश)	TF-1228, 530± 95

तालिका 4—चित्रित धूसर भांड स्थलो की कार्बन तिथियाँ

वर्ष का अतराल बताते हैं। हस्तिनापुर-1 मे 1 5 से 2·7 और हस्तिनापुर II मे 2 7 मीटर के निपेक्ष के आधार पर वे काल III के छह प्रकाल निर्धारित करते हैं। प्रत्येक प्रकाल की अवधि 50 वर्ष मानकर वे काल III का सपूर्ण काल विस्तार 300 वर्ष बताते हैं। इस प्रकार एन० बी० पी० की सस्कृति का प्रारभ लगभग 600 ई० पू० निर्धारित करते हैं जबकि गोडंन सिक्को व मृण्मूर्तियो के आधार पर इस संस्कृति की उच्चतम सीमा लगभग 400 ई० पू० मानते हैं।

अपने मत की पुष्टि मे लाल ने कौशाम्बी के प्रमाणो का उद्धरण दिया। वहाँ पर प्राकृतिक मिट्टी के ऊपर तीन सतहो (स्तर 24 से 27 तक) से धार घूसर ठीकरें मिले। इन स्तरो के ऊपर 6′ से 7′ मोटी ऊसर मिट्टी थी। इस ऊसर तह के ऊपर 8 से 16 स्तर से एन० बी० पी० भांड मिले। इन स्तरों की कुल मोटाई आठ फुट थी। इनमे छह आवासी प्रकालो से कच्ची या पक्की ईंटो की इमारतों के अवशेष मिले। सातवी सतह के बाद कौशाबी के मित्र वश के सिक्के मिले जिन्हें दूसरी सदी ई० पू० का बताया गया है जिसके अनुसार एन० बी० पी० काल का अत दूसरी सदी के प्रारभ मे हुआ होगा। इसके पहले के आठ आवासी प्रकालो को ध्यान में रखते हुए लाल ने कौशांबी मे एन० बी० पी० का प्रारंभ छठी ई० पू० निर्धारित किया। एन० बी० पी० की प्रारभिक तिथि के निर्धारणार्थ लाल ने तक्षशिला के प्रमाण भी प्रस्तुत किये। सिरकाप के प्रारभिक स्तर से प्राप्त दो एन० बी० पी० की ठीकरें मिले, जिनमे से एक का काल लगभग 200 ई० पू० है, जबकि दूसरा ठीकरा अस्तरित है। भीर टीले के 13 ठीकरों मे 12 केवल 2 4 मीटर की गहराई से मिले। सिकदर का एक एकदम नया (बिना घिसा हुआ) सिक्का सतह से 2 मीटर की गहराई से मिला। इस आधार पर 2.1 मीटर गहरे निक्षेप की तिथि लगभग 300 ई० पू० तथा उसके नीचे 2 मीटर के मलवे को और 300 वर्ष का काल देकर, एन० बी० पी० का काल लगभग 600 ई० पू० रखा गया है। लाल ने भीड टीले के 2 1 मीटर, कौशांबी के 2.4 मीटर और हस्तिनापुर मे 2.7 मीटर की मलवे की अलग-अलग सब गहराइयो को एकसा 300 वर्ष का काल दिया है।

इन्ही प्रमाणों का विश्लेषण करते हुए व्हीलर का कथन है कि चूंकि तक्षशिला का स्तर विन्यास पद्धति से उत्खनन नही हुआ था, अतः यह गहराइयाँ कोई खास माने नही रखतीं। उनके विचार से एन० बी० पी० का काल 5 से 2 सदी ई० पू० निर्धारित होना चाहिए। चारसद्दा और उदेग्राम के प्रमाणो के आधार पर वे उत्तर पश्चिमी एन० बी० पी० काल को 320-

150 ई० पू० रखते हैं, परन्तु यह मानते हुए कि दोआब में यह तिथि कुछ पहले की भी हो सकती है।

एन० बी० पी० तिलौराकोट से दक्षिण-पश्चिम में प्रभास पाटन तक और चारसद्दा (पेशावर) से नासिक और ब्रह्मपुरी तक मिलती है। थापड़ तथा व्हीलर के अनुसार एन० बी० पी० का प्रसार मौर्य काल में हुआ होगा, पर इसके विपरीत सिन्हा समझते हैं कि गंगा के दोआब में इसका चलन मौर्य काल से कहीं पहले हुआ, तथा 300 ई० पू० के पश्चात् इसका चलन बहुत कम हो गया। कुमडाहार (प्राचीन पाटलीपुत्र) से एन० बी० पी० का न मिलना, इस भांड का संबध केवल मौर्य काल-से ही होने के विरुद्ध जाता है जबकि दूसरी ओर राजवीर (मौर्यकाल से पहले) से पर्याप्त मात्रा में एन० बी० पी० भांड मिले हैं। सिन्हा के विचार से इसके प्राथमिक क्षेत्र कौशांबी, राजगीर, वैशाली तथा श्रावस्ती थे। हस्तिनापुर, रोपड, उज्जैन, कुमडाहार, आदि द्वितीयक क्षेत्र थे। तक्षशिला व्यापार केन्द्र होने के कारण प्राथमिक क्षेत्र माना गया है। अतः उनके अनुसार केवल एन० बी० पी० का निश्चित तिथि निर्धारण के लिए विशेष महत्व नही, इसलिए अन्य सामग्री का भी अध्ययन आवश्यक है। यह भांड बडी मात्रा मे केवल प्राथमिक स्थलो से ही पाया गया है।

हम एन० बी० पी० के आगमन को दोआब के मानसूनी जगलो की सफाई व कृषि उत्पादन के साथ जोडते हैं। यह विकास बिहार के लोहे की प्राप्ति तथा लौह उपकरणो के प्रसार के साथ जुडा है। एन० बी० पी० का प्रसारण मुख्यत दो प्रकार से हुआ (i) व्यापार या व्यापारियों द्वारा, व (ii) एन० बी० पी० सस्कृति के प्रसार के साथ। उत्तरापथ तथा दक्षिणापथ के व्यापारिक मार्गों पर स्थित स्थलो में हम काल की दृष्टि से इसे प्राथमिक क्षेत्रों के समकक्ष रख सकते हैं। लोहे के बढ़ते हुए प्रयोग के साथ दोआब में बडे पैमाने पर कृषि उत्पादन ही यहाँ पर नागरीकरण प्रारभ का कारण है। एन० बी० पी० संस्कृति के व्यापन की गति स्वाभाविक रूप से धीमी रही होगी क्योंकि ये प्रक्रियाएँ धीमी थीं।

एन० बी० पी० का श्रावस्ती में पहले मिलना और हस्तिनापुर मे बाद को, इस परिकल्पना की पुष्टि करता है। हस्तिनापुर में चि० धू० भांड संबंधित लाल भाड श्रावस्ती तथा पूर्व में एन० बी० पी० के साथ मिलते हैं। पूर्वी दोआब तक पहुँचते-पहुँचते चि० धू० भांड अनगढ़ व मोटे हो गये। उस पर काली रेखाएँ ऐसी लगती हैं जैसे स्याही फैली हो। पूर्व में ये धू० भाड इतने भिन्न हैं कि इन्हें चि० धू० भांड की सज्ञा देना ही गलत होगा।

एन.बी.पी. स्थल
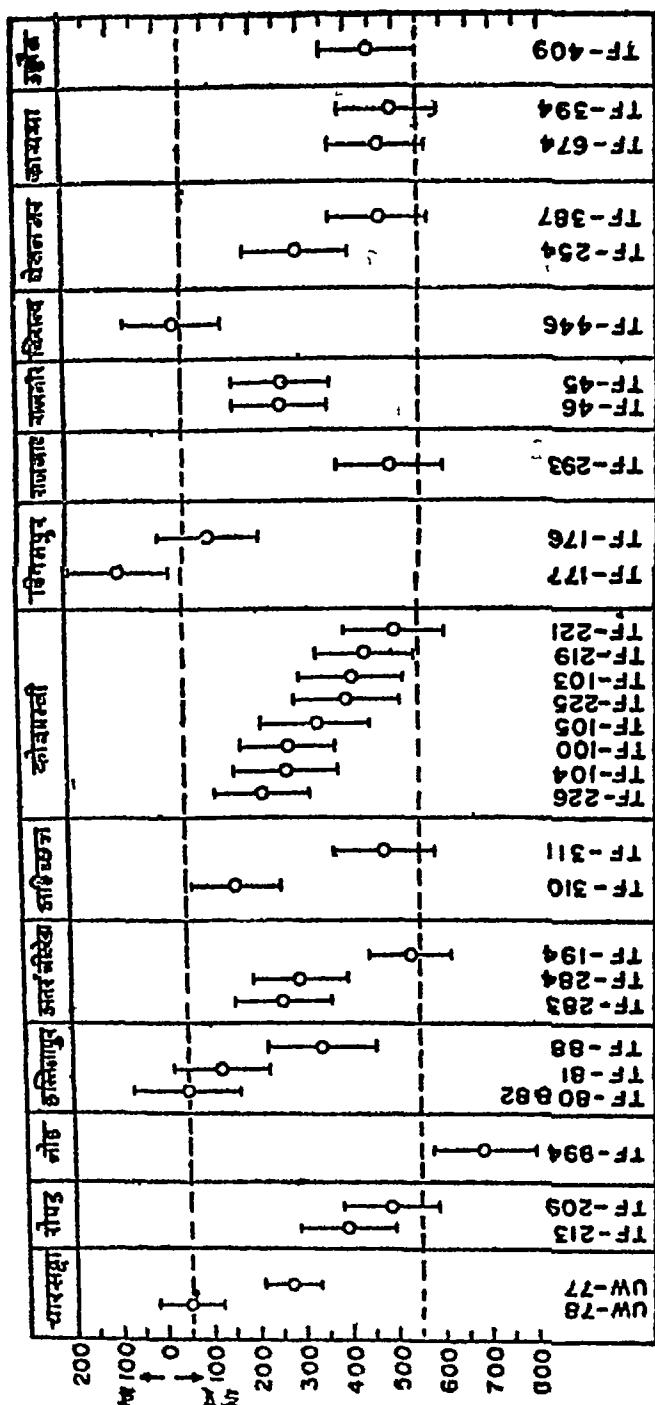
आरेख 10—एन० बी० पी० स्थलों की कार्बन तिथियाँ

एन० बी० पी० मृद्भांड स्थलों की कार्बन तिथियाँ

स्थल	कार्बन तिथियाँ ई० पूर्व (अर्धायु 5730 वर्ष)	स्थल	कार्बन तिथियाँ ई० पूर्व (अर्धायु 5730 वर्ष)
चारसद्दा (पाकिस्तान)	UW-78, 50±70 UW-77, 270±60	कौशाबी (उत्तर प्रदेश)	TF-226, 220±100 TF-104, 270±100 TF-100, 275±100 TF-105, 335±115 TF-225, 400±110 TF-103, 410±110 TF-219, 440±110 TF-221, 500±105
रोपड (पजाब)	TF-213, 390±105 TF-209, 485±100		
नोह (राजस्थान)	TF-994, 685±105	हेतिमपुर (उत्तर प्रदेश)	TF-177, 80±105 A D TF-176, 105±105
हस्तिनापुर (उत्तर प्रदेश)	TF-80+ TF-82, 50±115 TF 81, 125±100 TF-88, 340±115	राजघाट (उत्तर प्रदेश)	TF-293, 490±110
		राजगीर (बिहार)	TF-46, 260±100 TF-45, 265±105
		चिरान्द (बिहार)	TF-446, 35±105
अतरजीखेडा (उत्तर प्रदेश)	TF-283, 260±105 TF-284, 295±110 TF-194, 530±85	वेसनगर (मध्य प्रदेश)	TF-254, 295±110 TF-387, 470±105
		कायथा (मध्य प्रदेश)	TF-674, 470±100 TF-394, 495±100
अहिच्छत्र (उत्तर प्रदेश)	TF-310, 160±95 TF-311, 475±105	उज्जैन (मध्य प्रदेश)	TF-409, 450±95

तालिका 5 - एन० बी० पी० मृद्भांड स्थलों की कार्बन तिथियाँ ।

उपर्युक्त सर्वेक्षण से स्पष्ट होता है कि दोआब के पूर्वी प्राथमिक क्षेत्रो मे ही वास्तविक एन०बी०पी० भाडो का प्रचलन था। एन०बी०पी० भाड निश्चित ही पूर्व मौर्य व बुद्धकालीन रहे होगे जबकि पश्चिमी क्षेत्रो मे यह मौर्य काल या उससे थोडा पहले प्रचलन मे आये होगे। दूरस्त प्रदेशो मे यह ईसा की प्रारम्भिक सदी तक प्रचलित रही। उत्तरापथ तथा दक्षिणापथ के स्थलो मे इस संस्कृति का अधिक काल विस्तार होगा और इसकी शुरुआत प्राथमिक केन्द्रो के साथ ही हुई होगी।

हमने अब तक विभिन्न एन० बी० पी० भाड स्थलो की 32 कार्बन तिथियाँ मापी (आरेख 10, तालिका 5) हैं। अधिकाश कार्बन तिथियो का विस्तार 550 से 50 ई० पू० के बीच है। पश्चिमी दोआब मे TE-283, TE-284, TE-88 नमूनो द्वारा हस्तिनापुर और अतरंजीखेडा मे इसका प्रारम्भ 350-300 ई० पू० हुआ है। TE-311 अहिच्छत्र से तथा TE-194 अतरजीखेडा के नमूने हैं। उत्खनक के विवरण के अनुसार इस स्तर पर चि० धू० भाड व एन० बी० पी० भाड साथ साथ मिलते हैं। कौशाम्बी की कई तिथियो का कालव्यापन 500 से 200 ई० पू० बैठता है। राजघाट की तिथि TE-293 के अनुसार लगभग 500 ई० पू० है। चारसद्दा की तिथि UW-77 और-78 थोडी परवर्ती है जैसा कि स्वाभाविक है। रोपड की दो तिथियो का औसत लगभग 400 ई० पू० दिया जा सकता है। यह बडी दिलचस्प बात है कि बेसनगर, कायथा और उज्जैन के चार नमूनो TE 387,-674-394, 409 की तिथियाँ लगभग 450 ई० पू० बैठती हैं। वे सभी स्थल दक्षिणापथ पर पडते हैं। इन तिथियो से लगता है कि लगभग पाँचवी सदी ई० पू० मे ही लम्बी दूरियो पर स्थित स्थलो से व्यापार शुरू हो गया था।

ग काले-लाल मृद्भाड सस्कृतियाँ

बिहार तथा पश्चिमी बगाल मे ताम्राश्मीय सस्कृति व्याप्त थी जिसकी मुख्य विशेषता काले-लाल भाड थे। चिरांद मे लोहा काल IIB मे प्रकट हुआ। लेकिन इस सस्कृति की अन्य काल IIA विशेषताएँ पूर्ववत रही। यही क्रम हम पाडुर राजार धीबी और महिषदल (बगाल) मे पाते हैं। यद्यपि महिषदल के काल II से लोहा तथा प्रगलन के प्रमाण मिले हैं, काल II को काल I से प्राप्त धूसर भाड तथा भाडो की अनगढ़ता के कारण अलग किया गया है।

इन पूर्वी स्थलो से केवल तीन कार्बन तिथियाँ (तालिका 7) मिली हैं। सोनपुर (बिहार) मे लोहा काले-लाल भाडो के साथ मिला है जिनकी तिथि

635±110 ई० पू० है। चिराद काल II के नमूने TF-336 की 765± 100 ई० पू० व महिषदल के नमूने TE-389 की तिथि 690±105 ई० पू० है। इन सुसंगत तिथियों के अनुसार इस क्षेत्र में लौह युग के प्रारंभ की तिथि लगभग 700 ई० पू० रखी जानी चाहिए।

III भारत के दक्षिणी प्रायद्वीप का लौह युग

दक्षिण के महाश्मीय लौह युग पर विचार करने से पूर्व हम मध्य तथा उत्तरी दक्कन के पूर्व-एन०बी०पी० लौह स्थलों की विवेचना करेंगे। मध्य भारत के पूर्व एन०बी०पी० स्तर से लोहे के उपकरण नागदा, उज्जैन, एरण तथा उत्तरी दक्कन में प्रकाश तथा बाहल से मिले हैं। नागदा के काल I का सादृश्य मालवा संस्कृति से है। बनर्जी के अनुमान से आवासी निक्षेप के एकत्र होने की दर 30 से० मी० प्रति 40 वर्ष है जिसके अनुसार नागदा काल II की तिथि लगभग 750 ई०पू० है। काल II में यद्यपि लोहा प्रयोग होने लगा तो भी काल I के ही मृद्भाड प्रकार और लघु-अश्म प्रचलित रहे। हमारे विचार से इस आधार पर नागदा काल II की तिथि लगभग 900-800 ई० पू० निश्चित की जा सकती है। उज्जैन के काल I से लौह उपकरण उपलब्ध हुए हैं। काल II का एन०बी० पी० से सम्बन्ध होने से उसकी तिथि लगभग 450 ई० पू० निश्चित की गयी है। काल I के 2 मीटर गहरे निक्षेप से बनर्जी के अनुसार कुछ चि० धू० भाड तथा दोहरी स्लिप वाले लाल भाड मिले (जो अहिच्छत्र मे चि०धू० भाड के साथ मिला है)। इस गणना के अनुसार हम उज्जैन काल I की अ तिथि लगभग 700 ई० पू० रखेंगे। लघु अश्मों तथा चित्रित लाल मृद्भाडों की अनुपस्थिति के कारण उज्जैन काल I को नागदा काल II के बाद रखा जाना चाहिए। प्रकाश से 4 मीटर गहरे निक्षेप एन०बी०पी० भाडो के स्तर से पहले का मिलता है। इस स्तर से लोहा मिला है। प्रकाश काल I की यदि मालवा संस्कृति का परिधीय स्थल भी मानें तो काल II को प्रथम सहस्राब्दी ई०पू० के प्रारंभ मे रख सकते हैं। बाहल के लौह युग की तिथि भी लगभग यही होगी। देशपांडे को टेकवाडा में एक विशिष्ट प्रकार का शवाधान मिला जिसका फर्श पत्थरो का था। शवाधान मे महाश्मीय काले-लाल तथा जोर्वे मृद्भाड रखे मिले। उपर्युक्त सर्वेक्षण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि दक्कन में लोहे का प्रादुर्भाव जोर्वे संस्कृति के अंतिम काल में हुआ।

दक्षिणी प्रायद्वीप मे विविध प्रकार के महाश्मीय स्थल हैं। दूर दक्षिण के

मालावार तट-प्रदेश मे शवाधान के लिए लेटराइट चट्टानो को काट कर कक्ष बनाये गये थे जो कि पत्थर से ढके हुए थे । मैसूर मे सिस्ट (Cist) कब्रें ग्रेनाइट पत्थर की बनी थी जिन पर, कुछ पर, गवाक्ष (port-holes) बने थे । कब्रें एक या अधिक पत्थरो से ढकी थी । अत्येष्टि सामग्री सिस्ट के अदर तथा बाहर मिली । ये सिस्ट अधिक गहराई मे नही गाडे जाते थे । कुछ नगी चट्टानो के ऊपर भी बनाये गये थे । गाडे हुए सिस्ट के चारो ओर एक से तीन तक पत्थरो के वृत्त बनाये जाते थे । एक अन्य प्रकार के खुले गर्त मे शव के मास को गलने के लिए छोड दिया जाता था । तत्पश्चात् गर्त को ढक कर पत्थर का वृत्त बना दिया जाता था । एक दूसरे प्रकार मे महाश्म खडे पत्थरो की कतार से चिह्नित किये गये जिनमे कभी-कभी 6 मीटर से भी ऊँचे पत्थर लगाये जाते थे । गुलबर्गा जिले से इस प्रकार के सैकडो महाश्म मिले हैं । हड्डियो को अस्थि कलशो मे रखकर गर्त्त मे दवाने की प्रथा भी प्रचलित थी । इन पर कभी-कभी पत्थरो के वृत्त भी बना दिये जाते थे । इस प्रकार के शवाधान पूर्वी तट पर आमतौर से प्रचलित थे । विविध प्रकार के अस्थि-कलशो पर पाये भी लगे थे इसलिये इन्हें शव पेटिका (Sarcophagi) कहा जाता है । इनमे से कुछ पर ही जानवरो के सिर बने मिले । उपर्युक्त मुख्य महाश्मो के अतिरिक्त कुछ अन्य छोटे प्रकार के भी महाश्म प्रचलित थे ।

महाश्मो के विविध प्रकार होने के कारण उनका वर्गीकरण करना कठिन है । दूर-दूर स्थलो से जैसे आगरा जिले तथा कोडिया (इलाहाबाद) से भी महाश्म मिले हैं । कुछ कोटिया के महाश्मो की कार्बन तिथि निर्धारित की जा चुकी है लेकिन इनमे इतना वैविध्य होते हुए भी कुछ ऐसे विशेषक हैं जो इन सब स्थलो को एक महाश्मीय संस्कृति मे बाध देते हैं—जैसे एक विशिष्ट प्रकार के काले-लाल भाड, कुछ खास प्रकार के मृद्भाडो के समान आकार तथा बडी संख्या मे समान लोह उपकरण । आवासी स्तरो से प्राप्त मृद्भाड महाश्मीय सस्कृति के अतर्गत बाधते प्रकार शवाधानो से भी मिले हैं । लेकिन शवाधानो के मृद्भाड कुछ विशिष्ट प्रकार के भी हैं, शायद उनका अत्येष्टि सस्कार की दृष्टि से महत्व रहा होगा ।

महाश्मों को केवल उनके आतरिक प्रमाणो को दृष्टि मे रखकर ही उनका तिथि निर्धारण करना सम्भव नही है । नागराज, आल्चिन तथा बनर्जी ने इनकी तिथि निर्धारण में पहल की है । पहले लिखा जा चुका है कि बाहल, नागदा और टेकवाडा मे उत्तरकालीन ताम्राश्मीय तथा प्रारभिक लौह-युग के आसार मिलते हैं । हल्लूर, हाल्गिली और पैयमपल्ली मे नवाश्मीय तथा महाश्मीय

सस्कृतियो के काल परस्पर-व्यापी हैं । सौंदरा को नवाश्मीय शवाधान के साथ चमकदार (Burnished) धूसर मृद्भाड, दो चद्राकार लघु अश्म, एक ताम्र की चूडी और कुछ काले-लाल मृद्भाड के ठीकरे मिले । हल्लूर के काल II के विषय में नागराज राव का मत है कि काल I प्रकाल 2 के विशेपक, फलक उद्योग के अलावा, चलते रहे । लोह-युग संस्कृति की विशिष्टता है—विशिष्ट प्रकार के काले-लाल मृद्भाड, पूरे काले मृद्भाड, सफेद और चित्रित प्रकार के भाड और लोह उपकरण । पैयमपल्ली का विस्तृत विवरण प्राप्त नही है । दक्षिण मे नवाश्मीय सस्कृति के अतिम चरण मे बडी सख्या मे ताम्र उपकरण तथा जोर्वे प्रभाव पाया जाता है । इस प्रकार उत्तरी दक्कन मे, टेकवाडा तथा कर्नाटक क्षेत्र (उदाहरणार्थ हल्लूर) मे लोहे का उद्भव जोर्वे सस्कृति के अत मे या अंत के बाद हुआ ।

यहाँ हम यह मान कर चल रहे हैं कि आवास तथा महाश्मो से प्राप्त काले लाल मृद्भाड एक ही सस्कृति से सबधित हैं । इस प्रकार काले-लाल मृद्भाड के चलन के साथ ही महाश्म के चलन का प्रारभ माना जायगा । गोर्डन के मतानुसार दक्षिण अरब के कुछ व्यापारियो ने भारत के दक्षिण मे लगभग 700 से 400 ई० पूर्व के मध्य लोहे का प्रचलन आरंभ किया । यदि हम यमन के पाये वाली शवपेटिका (Sarcophagi) और चट्टान काटकर बनाये गये शवाधानो की समानता मालाबार के नमूनो से करें तो गोर्डन का तर्क महत्व-पूर्ण लगता है । अल्चिन ने पेरुमल के उत्खनन से प्राप्त लबी खुली टोटी वाले जग और कटोरे व सपीठ छोटे कटोरो के प्रकारो को स्यालक B के अनुरूप बताया है । घोडो के साज के धातु निर्मित भाग भी स्यालक B की ओर इगित करते हैं । *स्थल मार्ग से दक्षिण भारत मे लोह प्रसारण की अपेक्षा समुद्र द्वारा* इस भाग मे प्रसारण होना अधिक सभव लगता है । उत्तरी आर्कोट जिले मे सगामेडू के उत्खनन से लोह के प्रारभिक चलन के प्रमाण मिलते हैं । यहाँ पर काले-लाल मृद्भांड के 3 मीटर के निक्षेप के पश्चात् रूलैटड (Rouletted) मृद्भाड का आगमन हुआ ।

काले-लाल भाड मे अल्चिन ने कालानुक्रम का अतर देखा है । उनके अनुसार लोह-युग का प्रथम चरण पिकलीहाल (स्थल VI, 3 स्तर) और हल्लूर (स्तर 4-7) मे है, जो कि ब्रह्मगिरि के पत्थर के फर्श वाले शवाधान-गर्तों के समकक्ष है । इन शवाधानो से काले-लाल तथा जोर्वे प्रकार के मृद्भाड के साथ लोह उपकरण भी सबसे पहले यही इनके साथ मिले । इनके अतिरिक्त इस चरण की अन्य विशिष्टताए हैं—सफेद चित्रित काले-लाल मृद्भाड, पत्थर की कुल्हाडी

तथा फलक जो इस काल मे भी चलते रहे, जबकि हल्लूर के इस चरण से ये नही मिलते। द्वितीय चरण की विशिष्टताएँ हैं घिस कर चमकाये हुए काले-लाल, काले और लाल भाड। अल्विन के मतानुसार ब्रह्मगिरि का महाश्मीय काल, पिकलीहाल लोह स्तर, और मास्की II सभी इसी चरण में आते हैं।

तृतीय चरण की विशिष्टताएँ हैं—गेरुआ लेपी (Russet coated) या आध्र मृद्भाड और रूलेटेड मृद्भाड। अरीकामेडू मे रूलेटेड मृद्भांड एर्रेटाईन (Arretine) मृद्भांड के नीचे मिले थे। रूलेटेड भांडो की थालियो की एन० बी० पी० भाडो से उल्लेखनीय समानता है। यह कुछ नही कहा जा सकता कि पुरातात्विक दृष्टि से इस समानता का क्या महत्व है। दक्षिण के इस लोह-युग के तृतीय चरण को पहली-दूसरी सदी मे रखा जा सकता है। इस चरण के अतर्गत ब्रह्मगिरि के महाश्मीय काल, मास्की काल II और पिकलीहाल लौहयुग के ऊपरी स्तर आते हैं।

IV विदर्भ की महाश्मीय सस्कृति

देव को पौनार और कौडिंयपुर के उत्खनन से लाल रग से चित्रित काले भाड (मालवा-जोर्वे भांडो के विपरीत) मिले थे। उन्होने नागपुर क्षेत्र (विदर्भ) मे तकलाघाट तथा खापा का भी उत्खनन किया। ये सभी स्थल एक ही सस्कृति के भाग हैं। इन सब स्थलो की समान विशिष्टताएँ हैं। मृद्भाडो की बनावट और प्रकार ताम्र तथा लौह उपकरणो के आकार एक से ही है। यहाँ के महाश्मीय शवाधानो के गर्त्तों से मानव अस्थियो के साथ घोडे की सी हड्डियाँ भी मिली है। गर्त्त के चारो ओर पत्थर के वृत्त मिले थे। गर्त्त मिट्टी तथा पत्थर से भर गये थे। खापा महाश्मीय व तकलाघाट आवासी स्तर के अवशेषो के बीच पूर्ण समानताएँ हैं। मुख्य असमानता केवल शवाधानो में चित्रित मृदभाडो की अनुपस्थिति है। देव के अनुसार विदर्भ और ब्रह्मगिरि, मास्की, सानूर और आदिचन्नालूर के महाश्मों के बीच मृत्तिका शिल्प भांड आकार, लोहे के हथियारो तथा मनकों मे समानताएँ हैं। यहाँ तक कि दोनो क्षेत्रो के काले-लाल मृद्भाडो पर रेखाकन और निक्षारित तामडा पत्थर के मनको के प्रतिरूपो मे बहुत समानता है।

V महाश्मीय सस्कृति की कार्बन तिथियाँ (आरेख 11, तालिका 6)

वाराणासी जिले में चद्रप्रभा घाटी के महाश्मो को, उत्खनक ने ताम्राश्मीय सस्कृति के अतर्गत रखा है। काकोरिया के ऐसे ही महाश्मीय स्थल से सगोरा
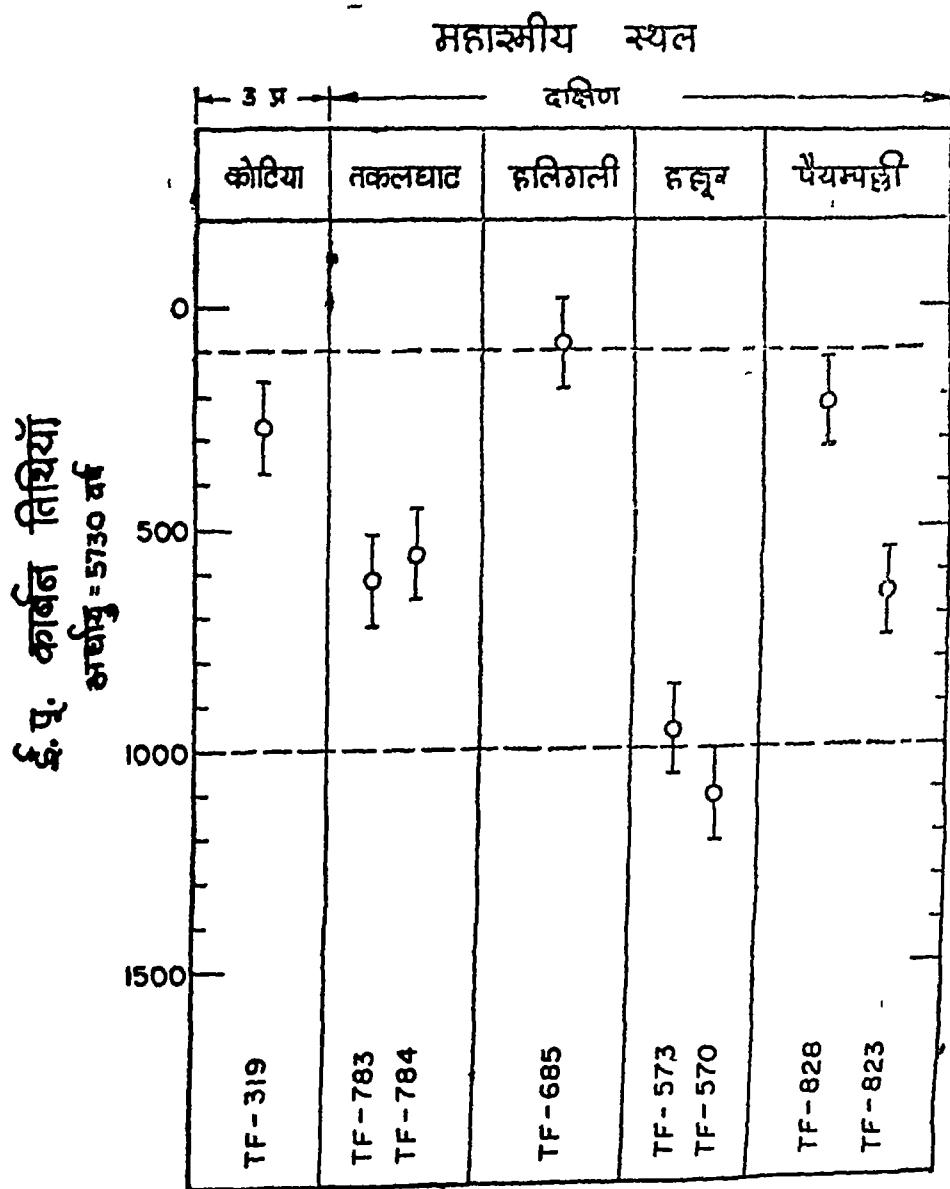
आरेख 11

महाश्मीय स्थलों की कार्बन तिथियाँ

महाश्मीय स्थलों का कार्बन तिथियाँ

स्थल	कार्बन तिथियाँ ई० पूर्व (अर्थात् 5730 वर्ष)	
कोटिया (उत्तर प्रदेश)	TF—319	270±105
तकलाघाट (विदर्भ, महाराष्ट्र)	TF—783,	615±105
	TF—784,	555±100
हालिंगाली (मैसूर)	TF—685,	80±100
हल्लूर (मैसूर)	TF—573,	955±100
	TF—570,	1105±105
पैयमपल्ली (तामिलनाडु)	TF—828,	210±100
	TF—823,	640±105

तालिका 6—कोटिया, हालिंगाली के महाश्मीय और काले-लाल भांडो के लौहयुग के स्थलों की कार्बन तिथियाँ।

वृत्त और सिस्ट मिले। इन शवाधानों में मानवी हड्डियाँ नहीं मिली बल्कि इनमें बैल की हड्डियाँ और मृद्भाण्ड और एक पात्र में से सोने की चूड़ी भी मिली। लघुअश्मों की प्राप्ति तथा मध्य भारत की ताम्राश्मीय संस्कृतियों से तथाकथित सादृश्य तथा एन० बी० पी० भांड और लोहे की अनुपस्थिति के कारण इन महाश्मों को ताम्राश्मीय कहा गया है। इनसे प्राप्त कोयले की

कार्बन तिथि के अनुसार काकोरिया का महाश्मीय काल केवल 300 वर्ष पुराना है। यह कब्र बाद की या विशृंखलित हुई, कुछ कहा नही जा सकता। उत्खनक के अनुसार इलाहाबाद जिले के काकोरिया और कोटिया महाश्मो के बीच कोई सम्बन्ध नही है। कोटिया के महाश्म लौह-युग के हैं। इस स्थल के एक महाश्म की तिथि TF – 319, 270±105 है। हालिगली महाश्म की तिथि TF—685, 80±100 ई० पू० है। परन्तु उत्खनक के अनुसार शवाधान बाद मे विशृंखलित हुए और इसमे बाद मे कोयला गिरा होगा। अब तक महाश्मीय संस्कृति की दो ही निश्चित कार्बन तिथियाँ हैं।

लौह-युग की बस्तियो मे पैयामपल्ली (तामिलनाडु) के नमूने TF 828 और-823 के अनुसार इसकी तिथि लगभग 600 200 ई० पू० है। हल्लूर की नवाश्मीय व महाश्मीय परस्पर-व्याप्त स्तरो की तिथियाँ लगभग 1000 ई० पू० (TF-573 और-570) हैं। यह सबसे पूर्ववर्ती तिथि है। यह उल्लेख करना आवश्यक है कि यदि हल्लूर मे नवाश्मीय संस्कृति का अंत अचानक हो गया और लौह काल का उद्भव कुछ अंतराल के बाद हुआ तो ये तिथियाँ नवाश्मीय काल I_2 की भी हो सकती हैं। काल I_2 की तीन तिथियाँ हैं। प्रकाल II की TF-575, 1030±105 और TF-570, 1105±105 तिथियाँ एक मानक विचलन के अन्दर एक ही हैं। काल II मे प्रस्तर फलक उद्योग का अचानक अन्त नवाश्मीय और लौह स्तरो के बीच अन्तर्व्यापन और निरन्तरता को संदिग्ध बना देता है। दक्षिण मे लौह के उपयोग का तिथि निर्धारण केवल हल्लूर की TF-573 और 570 तिथियो पर निर्भर करता है। अत कालानुक्रम के पुष्टिकरण के लिए और भी तथ्य और तिथियाँ आवश्यक हैं। यदि दक्षिणी महाश्मीय काल लगभग 1000 ई० पू० या बाद तक चला तो हमे आवासी निक्षेप काफी गहरे मिलने चाहिए। अभी तक के निक्षेप के पतलेपन से इतने लम्बे काल विस्तार पर शका व्यक्त की जा सकती है। तकलाघाट की दो कार्बन तिथियाँ TF-783, 615±105 और TF-784, 555±100 ई० पू० हैं।

यदि हम हल्लूर, तकलाघाट और कोटिया की सबसे प्रारंभिक तिथियाँ क्रमश लगभग 1000 ई० पू०, 600 ई० पू० व 3000 ई० पू० मानें तो ऐसा लगता है कि महाश्मीय संस्कृति का प्रसार दक्षिण से उत्तर की ओर हुआ।

VI. भारत मे लौह-युग

यद्यपि दूसरी सहस्राब्दी ई० पू० के प्रथम भाग से ही टर्की मे लौह तकनीक

का ज्ञान था लेकिन उसके आस-पास के क्षेत्रो मे लगभग 1200 ई० पू० से पहले यह तकनीक ज्ञात न थी। आमतौर से यह माना जाता है कि श्राको-फ्राईजियनो की हिट्टाइटो पर विजय के बाद लौह तकनीको पर हिट्टाईट का एकाधिकार खत्म हो गया। परतु प्रजेक्वंसकी का मत है कि लौह तकनीक का विकास कई पश्चिमी देशो के लम्बे समय तक सतत सयुक्त प्रयत्नो के बाद हुआ। भारत की पश्चिमी सीमा पर, स्याल्क नेकरोपोलिस B मे सर्वप्रथम लौह का प्रादुर्भाव हुआ। इस काल मे लोहे की अपेक्षा ताम्र मुख्य धातु था। स्याल्क B काल से प्रचुरमात्रा मे लोहे के बर्तन, तलवारें, कटारें, बाणाग्र, घोडे का साज आदि मिले। ग्रिशमान ने स्याल्क नेकरोपोलिस B की तिथि लगभग 900 ई० पू० बतायी है। अफगानिस्तान के स्थलो की लोहे के उद्भव की तिथियाँ व अन्य सामग्री अधिक उपलब्ध नही है। लेकिन अक्कुपरुक काल IV से लोहे के बाणाग्र, कटोरे और घोडे के साज मिले। इन उपकरणो की तुलना स्याल्क B से की जा सकती है।

स्वात घाटी व बाजौर के अनेको कब्रो का उत्खनन किया जा चुका है। (उनकी कार्बन तिथियो का विवेचन पहले ही किया जा चुका है) लगभग 1000 ई० पू० लोहा इस क्षेत्र मे प्रगट होने लगा था। पिराक (बलूचिस्तान) मे कार्बन तिथियो (तालिका-7) द्वारा लौह काल का प्रारभ लगभग 800 ई० पू० निश्चित होता है तथा स्यालक B से समानता के आधार पर मुगल घुंडई और जीवन्ती सगोरा का काल लगभग 900-800 ई० पू०। जार्गियन सगोरा शवाधानो की कोई भी कार्बन तिथियाँ नहीं हैं।

राजस्थान की लौह-कालीन चि० धू० मृद्भाड संस्कृति की कार्बन तिथि लगभग 800 ई० पू० है (आरेख 12, तालिका 4)। दोआब के पूर्वी स्थलो सोनपुर, चिरान्द (बिहार) और महिषदल (पश्चिमी बगाल) की कार्बन तिथियो के अनुसार लोहे का प्रारभ लगभग 700 ई० पू० (आरेख 12) हुआ। दक्षिण मे हल्लूर की तिथि लगभग 1000 ई० पू० है (तालिका 8)।

उपर्युक्त कुछ कार्बन तिथियो का विश्लेषण करने पर लगता है कि उत्तर मे लौह तकनीक का प्रसार ईरान से स्थल मार्ग से लगभग सौ-दो सौ साल मे हुआ होगा। स्टाकुल के मतानुसार गालीगाई V की अनेको सास्कृतिक विशिष्टताओं की समानता डेन्यूब घाटी की सस्कृतियो से है। स्वात घाटी के काल V मे लोहे के साथ धूसर मृद्भाड का चलन व इसी प्रकार भारत के चि० धू० भाड के साथ लोहे का मिलना महत्वपूर्ण समझा जा सकता है। यदि हम लौह तकनीक के प्रसारण को स्वात घाटी से होते हुए मानें तो राजस्थान मे नोह की तिथि

प्रारंभिक लौह काल के स्थलो की कार्बन तिथियाँ

स्थल	कार्बन तिथियाँ ई० पूर्व (अर्धायु 5730 वर्ष)	संस्कृति व काल
लोएबान्न 1 स्वात	BM-195, 1120±154	गालीगाई II
,,	BM-196, 985±154	,,
,,	R 474, 510±72	,,
तीमारगढ (बाजौर)	? 1530±62	,,
,,	? 940±62*	,,
नोह (राजस्थान)	UCLA-703B 822±225	चि० भू० भाण्ड
	TF-993, 725±150	,,
सोनपुर (बिहार)	TF-376, 635±110	काले-लाल भाण्ड
चिरान्द (बिहार)	TF-336, 765±100	,,
महिषदल (पश्चिमी बंगाल	TF-389, 690±105	,,
हल्लूर (मैसूर)	TF-573, 955±100	नवाश्मीय-महाश्मीय संक्रान्ति काल
	TF-570, 1105±105	,,
पिराक बलूचिस्तान	TF-1108, 775±105	लौह युग
	TF-1201, 775±155	,,
	TF-861, 785± 05	,,
	TF-1109, 830±125	अज्ञात
	TF-1202, 1075±80	,,

तालिका 7—प्रारंभिक लौह युग के स्थलो की तुलनात्मक कार्बन तिथियाँ

*दानी ने इसकी तुलना गालीगाई काल VI से की ।

ई पू कार्बन तिथियाँ
अर्धायु - 5730 वर्ष

1500 1000 500

R -474
BM-196
BM-195

?
?

TF-1108 चरण III
TF-1201 ?
TF-861 चरण III
TF-1109 चरण III
TF-1202 ?

TF-993
UCLA-703B

TF-376

TF-336

TF-389

TF-573
TF-575

पाकिस्तान: पिराक
भारत: नोह, सोनपुर, चिरांद, महिषदल, हल्लूर

आदि लौह काल

आरेख 12—आदि लौह काल की कार्बन तिथियाँ

नवाश्मीय स्थलो की कार्बन तिथियाँ

स्थल	कार्बन तिथियाँ ई० पूर्व (अर्धायु 5730 वर्ष)	स्थल	कार्बन तिथियाँ ई० पूर्व (अर्धायु 5730 वर्ष)
गालगाई (पाकिस्तान)	R-377a, 1608±50 R-379a, 2355±70 R 379, 2422±55 R-380, 2376±140	उत्नूर (आंध्र प्रदेश)	TF-168, 2040±115 TF-167, 2050±115 BM-54, 2295±155
किलीगुल मोहम्मद (पाकिस्तान)	UW-61, 3470±83 P-524, 3690±85 L-180a, 3510±515	तरदल (मैसूर)	TF-683, 1770±120 TF-684, 1935±100
बुर्जहोम (कश्मीर)	TF-15, 1535±110 TF-129, 1825±100 TF-13, 1850±125 TF-14, 2025±350 TF-127, 2100±115 TF-123, 2225±115 TF-128, 2375±120	टेक्कलाकोटा (मैसूर)	TF-239, 1540±105 TF-262, 1610±140 TF-237, 1615±105 TF-266, 1780±105
कोडेकल (आंध्र प्रदेश)	TF-748, 2460±105	संगनकल्लू (मैसूर)	TF-359, 1550±105 TF-355, 1585±105 TF-354, 1590±110
पलावाय (आंध्र प्रदेश)	TF-700, 1540±100 TF-701, 1965±105		
हल्लूर (मैसूर)	TF-573, 955±100* } TF-570, 1105±105 } TF-575, 1030±105 TF-586, 1195±110 TF-576, 1425±110 TF-580, 1710±105	चिरान्द (बिहार)	TF-1035, 1270±105 TF-1127, 1375±100 TF-1125, 1515±155 TF-1033, 1540±110 TF-1034, 1570±115 TF-1030, 1580±100 TF-1031, 1675±140 TF-1032, 1755±155
पैयमपल्ली (तामिलनाडु)	TF-833, 1360±210 TF-349, 1485±100 TF-827, 1725±110	बारूदीह (बिहार)	TF-1099, 750±110 TF-1100, 1055±210 TF-1101, 595±90 TF-1102, 660±90
टी० नर्सीपुर (मैसूर)	TF-413, 1495±110 TF-412, 1805±110		

तालिका 8—पश्चिमी पाकिस्तान, कश्मीर, दक्षिणी भारत और बिहार की नवाश्मीय संस्कृतियों की कार्बन तिथियाँ।

*नवाश्मीय और महाश्मीय परस्पर व्यापी हैं।

लगभग 800 ई० पू० सगतपूर्ण बैठती है। सम्भवत लोह तकनीक का विहार में प्रसार, प्रारंभ मे कुछ साहसी आदि जातियो द्वारा हुआ हो, जो लोह अयस्को की खोज मे निकले थे। इस सदर्भ मे कोशावी का कथन महत्वपूर्ण है कि आर्यों की मुख्य बस्तियों का पूर्ववर्ती प्रसार हिमालय के गिरिपादो के साथ दक्षिणी नेपाल मे तत्पश्चात (विहार मे) चपारन जिले से दक्षिण की ओर गगा की घाटी तक हुआ। जगल जलाकर साफ किये गये। परतु यह मैदानी प्रसार गडक नदी के पश्चिम तक ही हो पाया, जैसा कि शतपथ ब्राह्मण के साक्ष्य से भी ज्ञात होता है। इसकी तिथि 700 ई०पू० होनी चाहिए। लेकिन चम्पारन से दक्षिण की ओर मुडने का अर्थ अयस्को की खोज के लिए था। इस प्रकार यदि हम विहार मे लोहे के प्रयोग की 700 ई० पू० तिथि निर्धारित करें तो इसके सास्कृतिक महत्व का आभास होता है।

यदि दक्षिण मे लोह-युग के प्रारभ की तिथि (लगभग 1000 ई० पू०) की पुष्टि अन्य कार्बन तितियो से हो जाती है तो यही समझा जा सकता है कि यहाँ इसका प्रसार समुद्री मार्ग से ही हुआ होगा। स्यालक B की पेरुमूल पहाडियो के अवशेपो से समानता तथा महाश्मो का यमन से सादृश्य भी समुद्री व्यापार द्वारा ही इन समान सास्कृतिक विशिप्टताओ के प्रसार को दर्शाता है।

दक्षिण मे महाश्मीय सस्कृति प्रबल थी परतु विभिन्न प्रकार के महाश्म हिमाचल प्रदेश, अल्मोडा, आगरा, इलाहाबाद व वाराणसी के जिलो से तथा आसाम से भी मिले हैं। कोटिया (उत्तर प्रदेश), खापा विदर्भ) और प्रायद्वीप के अन्य गर्त वृत्तो (Pit circles) के मृद्भाडो और लोह उपकरणो के बीच समानताएँ हैं। हल्लूर की तिथि लगभग 1000 ई० पू०, टाकलाघाट की लगभग 600 ई० पू० और कोटिया की लगभग 300 ई० पू० है। अत काल-स्थान दोनों दृष्टियो मे दक्षिण से उत्तर मे महाश्म प्रसारण की सभावनाएँ तर्क-सगत लगती है। भौगोलिक दृष्टि से भी खापा के महाश्म कर्नाटक और उत्तर प्रदेश के मध्य पडते हैं।

प्राप्त सीमित तथ्यों से उक्त परिकल्पनाओ द्वारा भारत मे लोह प्रसार और महाश्मीय सचरण को समझा जा सकता है। परतु पूर्ण और अधिक प्रामाणिक व्याख्या के लिए अधिक उत्खनन और नये व पुराने सर्वेक्षणो तथा उत्खननों की रिपोर्टों का शीघ्र प्रकाशन नितात आवश्यक है।

अध्याय 5 सदर्भिका

इस अध्याय विपयक मुख्य ग्रन्थ

D. P. Agrawal and Sheela Kusumgar	. Prehistoric Chronology and Radio-carbon Dating In India, 1973 (Delhi)
B & F. R. Allchin	Birth of Indian Civilisation, 1968, (Harmondsworth)
N. R. Banerjee	The Iron Age in India, 1965 (Delhi)
D D. Kosambi	The Culture and Civilisation of Ancient India in Historical Outline, 1965 (London)
K S. Ramachandran	: Bibliograph of Indian Megaliths, 1971 (Madras).
G. R Sharma	: Excavation at Kausambi, 1960 (Allahabad)
K. K. Sinha	. Excavation at Sravasti 1959, 196L (Varanasi)
Vibha Tripathi	· Unpublished Thesis (Banaras Hindu University)

इस अध्याय विषयक मुख्य लेख

G. Stacul	East and West, Vol XVI, p 37-39, and p 261-274, 1966

काटेलाई कब्रो और गालीगाई उत्खनन पर

G Stacul	East and West, Vol XVII, p 185, 219, 1967.
G. Stacul	: East and West, Vol XIX, No 1-2, p 43-91, 1969

कलाम कब्रो पर

G. Stacul	: East and West, Vol XX, Nos 1-2, p 87-102, 1970

तीमारगढ़ और दीर कब्रो पर

A. H. Dani	Ancient Pakistan, Vol III, 1967
A. H. Dani	Asian Perspectives, Vol VIII, 1, 1966

R L. Raikes — East and West, Vol XIV, p. 1, 1963.

उत्तरी भारत, हस्तिनापुर आदि पर :

B B Lal — Ancient India, Nos 10 & 11, 1954 55.

विविध स्थलो के उत्खनन पर .

Indian Archaeology—A review Nos. 1954-1973

चित्रित धूसर मृद्भाड पर .

D P Agrawal — Proc Aligarh Seminar, 1968.

K. N Dikshit : In Radiocarbon and Indian Archaeology, (Eds) D P Agrawal and A. Ghosh, 1973 (Bombay)

Vibha Tripathi —do—

अध्याय 6

प्राचीन विश्व व भारत में धातुकर्म

1—ताम्र-उत्पादन का प्रारंभ*

सर्वप्रथम मानव ने प्राकृत ताम्र का उपयोग किया होगा जो कि व्यापक रूप से उपलब्ध था। इसे ठीक कर इच्छानुसार आकार देना आसान रहा होगा लेकिन अधिक हथौडियाने से ताम्र भगुर होकर, चटक कर टूट जाता है। पुन उपयोग के लिए इसे तपा कर लाल करना पडता है। किस प्रकार इस तापानुशीतन (annealing) प्रक्रिया की शुरुआत हुई होगी, इसका केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। टौमसन का अनुमान है कि टूटे हुए ताम्र के टुकडे को क्रोधावेश मे आग मे फेंक देना स्वाभाविक है और तत्पश्चात् उसे निकालने का प्रयत्न भी स्वाभाविक है। इस प्रकार तपित ताम्र तापानुशीतन द्वारा फिर उपयोग योग्य हो गया होगा।

किसी पुरातात्विक निक्षेप से प्राप्त थोडे से धातु के आधार पर उस काल को ताम्र या कास्य युग के अंतर्गत नहीं रखा जा सकता। ताम्र या कास्य युग के अतर्गत आने वाली सस्कृतियो मे धातु तकनीको का ज्ञान केवल ताम्र के उपयोग की अपेक्षा अधिक अनिवार्य है। विविध धातु तकनीको का विकास एक कालानुक्रमिक विकास की प्रक्रिया है।

जबसे अयस्क से ताम्र निकाला जाने लगा, तभी से धातुकर्म प्रारभ हुआ होगा। प्रश्न है कि सर्वप्रथम इस प्रक्रिया का प्रारम कहाँ हुआ? एचिसन के अनुसार आक्साइड अयस्क से गलन की सर्वप्रथम खोज निम्न प्रकार के सयोग से हुई होगी। मृद्भाड अलकृत करने के लिए मैलेकाइट प्रयुक्त होता था। दो मजिले मृद्भाड भट्टे मे 1083° सेंटीग्रेड से अधिक तापमान आसानी से पहुँच

*इस अध्याय मे वर्णित प्रमाणो के तकनीकी विस्तृत विवरण के लिए अग्रवाल की The Copper Bronze Age in India देखें।

सकता था। यदि भूल से किसी ने इस भट्टे मे मैलेकाइट डाल दिया होगा, तो वह ताम्र मे परिवर्तित हो गया होगा। कौगलन ने इस अनुमान को प्रयोग द्वारा सिद्ध किया है परन्तु गोलैंड के मतानुसार इसकी खोज 'कैंपफायरो' मे हुई होगी। लेकिन 'कैंपफायरो' मे ताम्र के प्रगलाक (1083°C) तक ताप का पहुँचना असभव है।

प्राचीन संसार मे धातु-विज्ञान के जन्म-स्थान की खोज के लिए हमे अनातोलिया से आर्मेनिया के पहाडो के पूर्व में अफगानिस्तान तक के क्षेत्र का अवलोकन करना होगा। ये क्षेत्र प्राकृत ताम्र व इसके अयस्को से परिपूर्ण हैं। एचिसन के मतानुसार एल्बुर्ज पर्वत और कैस्पियन सागर के मध्य का क्षेत्र ताम्र शोधन की शुरुआत के लिए अधिक सभावित क्षेत्र है। इस खोज की तिथि उसने लगभग 4300 ई० पू० निर्धारित की है। इस क्षेत्र मे जगली पिस्ता व अन्य वृक्ष (Haloxylon amodendron आदि) उगते थे, जो कि धातुकर्म के ईंधन के लिए बहुत उपयोगी थे, हाल मे पराग अध्ययन से भी सिद्ध हुआ है कि जगरोस पर्वतो के पार्श्व में 10,000 से 5000 ई० पूर्व जगली पिस्ते के जगल थे।

कुछ विद्वान् विश्वास करते हैं कि लगभग 4000 ई० पूर्व मे केवल उत्तर पूर्वी ईरान मे ही ताम्र धातु-विज्ञान का सर्वप्रथम प्रादुर्भाव हुआ। हेगडे इस विश्वास को प्रमाणित तथ्य मानते प्रतीत होते हैं। हाल मे ही माशिज घाटी (किरमान पर्वतमाला) के ताल-ए-इब्लिस स्थल से लगभग 4000 ई० पूर्व के अयस्क प्रगलनार्थ प्रयुक्त होने वाली मूषाएँ (Crucibles) मिली हैं। अत इस स्थल को सर्वप्रथम ताम्र प्रगलन केन्द्रो मे से एक कहा जा सकता है। मिस्र मे धातुकर्म का इतिहास बहुत अच्छी तरह ज्ञात है। लगभग 5000 ई० पूव तासियन काल मे धातु का वर्णन नहीं मिलता। बादरियन लोग (जो सभवत एशिया से आये थे) प्राकृत ताम्र के पिन, सुइया, मछली के कांटे आदि प्रयोग करते थे। अमरासियन लोग (लगभग 4000 से 3700 ई० पूर्व) ताम्र के ही बने मत्स्य भालो (Karpoons), चिमटी और छेनी जैसे प्राकृत उपकरणो का काफी मात्रा मे प्रयोग करते थे। गार्जियन काल मे (लगभग 3000 ई० पूर्व) मिस्र का मेसोपोटामिया, फिलिस्तीन व क्रीट से सपर्क था। मात्रा की दृष्टि से गार्जियन काल मे ताम्र की अधिक प्रचुरता थी। इस काल मे ताम्र को प्रगलित कर बसूले, कगन, छल्ले और छेनी बनाये जाते थे। इसी काल मे चित्रित मृद्भाड भी प्रचलित हुए। पूर्व राजवंश (Pre-Dynasty) के उत्तर काल मे (लगभग 3200 ई० पूर्व) अधिक उपयोगी उपकरण जैसे कटोरे, चपटी कुल्हाडियाँ,

नुकीले भालाग्र, बसूले, चाकू और मत्स्य भाले प्रचलित हुए। मेसोपोटामिया में सबसे पहले प्रचलित ताम्र अल्-उबैद काल (लगभग 4000 ई० पूर्व) से मिला है। उरुक काल मे ताम्र काफी प्रचलित हो गया था और अधिक कठिन उपकरण जैसे हत्थे के लिए छेद वाली कुल्हाड़ियाँ सफलतापूर्वक बनाई जाने लगी। यह उल्लेखनीय बात है कि उस काल मे धातुकर्म के साथ-साथ हड़प्पा की ही भाति, नागरीकरण का भी प्रादुर्भाव हुआ। कुछ काल बाद खफाजे मे, ताम्र-पात्र समाधि मे रखे जाने लगे। 'उर के चाल्डीज' की राजकीय समाधि से प्रचुर मात्रा मे उत्कृष्ट ताम्र भडार उपलब्ध हुआ है। हड़प्पा की अपेक्षा, सुमेरिया मे उर के प्रारम्भिक राजवश (Early Dynasty) काल से ही धातुकर्म की कही अधिक विकसित तकनीको के प्रमाण मिलते हैं। मेसोपोटामिया का धातुकर्म मिस्र की अपेक्षा पूर्ववर्ती है, पर ईरान की अपेक्षा थोडा बाद का है। ईरान मे सूसा से (लगभग 4000 ई० पूर्व) मैलाकाईट से बने ताम्र के उपकरण जैसे छेनी,सूइयां, दर्पण प्राप्त हुए हैं। यहाँ पर इस काल मे खुले साचे प्रयुक्त होते थे।

II—ताम्र धातुकर्म का प्रसार

धातु युगो के सम्बन्ध मे फोर्ब्स ने उनकी तकनीक के महत्व पर ही बार-बार बल दिया है। ताम्र की सुघट्यता (Plasticity) और आघातशीलता की सहज प्रारम्भिक खोज अनेक स्थलो पर स्वतत्र रूप से सभव थी। लेकिन अयस्क प्रगलन, धातु की गढाई और ढलाई आदि अधिक जटिल धातु शिल्पो का प्रसारण, सभवत केवल एक या कुछ केन्द्रो से ही हुआ होगा। ऐसी जटिल खोज बहुत से स्थानो मे स्वतत्र रूप से सभव नही हो सकती।

ताम्र शिल्प की अपेक्षा ताम्र का प्रचार व प्रसार व्यापारियो द्वारा दूरस्थ प्रदेशों मे पहले हुआ होगा। स्वाभाविक था कि शिल्पियो की अपेक्षा व्यापारी और पैकार विभिन्न क्षेत्रो मे पहले पहुँचते।

नीचे हम ईरानी केन्द्रों से पश्चिम मे और पूर्व मे भारतवर्ष की ओर धातुकर्म प्रसारण का वर्णन करेंगे।

ताम्र शिल्प का प्रसार ईरान से मेसोपोटामिया तथा अनातोलिया तक फैला था। मेसोपोटामिया मे इसके विकास का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। ट्राय से धातुकर्म के उदाहरण स्तरीकृत रूप मे मिले हैं। ट्राय की ऊपरी सतह से (लगभग 4000-2800 ई० पूर्व) ताम्र की सूइयाँ व चाकू मिले, तो द्वितीय काल (लगभग 2800-3200 ई० पूर्व) से कास्य (8-11 % टिन)

तथा अन्य धातु उपकरण उपलब्ध हुए। वे धातु उपकरणो के गढ़ने मे कुशल होते हुए भी स्वय ताम्र प्रगलन नही करते थे। पूरी तीसरी सहस्राब्दी भर अनातोलिया मेसोपोटामिया की ताम्र शिल्पविधियो व प्रवीणता का सग्रह-केन्द्र बना रहा।

3000 ई० पूर्व से कांस्य धातुकर्म की तीव्रगति से विकास होने के फलस्वरूप अयस्क भण्डारो की खोजो को बल मिला। ट्राय तथा निकटवर्ती केन्द्रो ने डेन्यूब तटीय लोगो को धातुकर्म मे अधिक प्रभावित किया। 2200 ई० पूर्व तक ट्राय के व्यापारी वियना तथा बोहेमिया तक पहुँचने लगे। यह तकनीक योरोप मे डेन्यूब के मुहाने पर स्थित हाल्सपॉट से प्रसारित हुई। ट्रासकाकेसिया से हगरी के मैदानो मे धातुकर्म का प्रसार और भी पहले शुरू हो गया था। पश्चिम मे धातुकर्म ज्ञान स्पेन तथा पुर्तगाल तक फैला। 2500 ई० पूर्व तक आईबेरियन प्रायद्वीप मे पूर्णत ताम्र आधारित सस्कृति स्थापित हो चुकी थी। लगभग 2200 ई० पूर्व तक मध्य योरोप मे ताम्र की वस्तुओ का क्रय-विक्रय होने लगा था। लगभग 2200 से 2000 ई० पूर्व ट्रासिल्वानिया और स्लोवाकिया की कोर्पेथियन पहाडियो, पूर्वी आल्प्स, बाल्कन और बोहेमिया और सैक्सोनी की पहाडियों मे ताम्र प्रगलन के केन्द्र व्यापक रूप से स्थापित होने लगे थे। इस प्रकार मध्य योरोप के विशाल क्षेत्र मे ताम्रयुगीन सस्कृति प्रसारित हो गयी। इगलैड मे लगभग 1900 ई० पूर्व के बाद ही ताम्र का प्रसार हुआ। सभवत आइबेरिया के ताम्रकर्मियो द्वारा ही ब्रिटेन मे धातुकर्म का प्रादुर्भाव हुआ। टाइलकोट का कथन है कि दो सहस्र ई० पूर्व के लगभग आईबेरिया परपरा के धातुकर्मियो का एक समूह आयरलैड मे आकर बस गया। इन्ही के साथ दक्षिणी और पूर्वी इगलैड के 'बीकर' आक्रामक सपर्क मे आये। हाल मे रैंफ्रू ने योरोप मे धातुकर्म की उत्पत्ति एशिया से भी प्राचीन प्रतिपादित की है। उनका मुख्य आधार कार्बन तिथियो का शोधन है जो कि अभी तक एक विवादास्पद विषय बना है।

अब हम पूर्व की ओर धातुकर्म के प्रसार पर दृष्टिपात करेंगे। सिंधु और बलूचिस्तान की प्राग्हडप्पा सस्कृतियो की अपेक्षा ईरान मे धातुकर्म के क्रमिक विकास का अध्ययन विस्तारपूर्वक किया गया है। स्यालक में कौगलन ने धातु कर्मीय विकास का पूर्ण अनुक्रम खोज निकाला है। स्यालक काल I व II के प्रारभ मे ठडे धातु को ही हथौडिया कर हथियार बनाये जाते थे। प्रकाल III_4 मे खुले सांचो में ताम्र ढाला जाने लगा था। बद मुँह के दोहरे सांचो का चलन काल III_5 से हुआ। काल IV में लुप्त मोम (Lost wax) पद्धति द्वारा भी

ढलाई की जाने लगी। स्यालक के काल 1 की तिथि लगभग 5000 ई० पूर्व व काल IV की लगभग 3000 ई० पूर्व है। स्पष्टत धातुकर्म भारतवर्ष की अपेक्षा ईरान मे अधिक प्राचीन है।

पूर्व व पश्चिम दोनो दिशाओ मे ताम्रकर्मीय तकनीको के प्रसार में ताल-ए-इब्लिस की सबसे प्राचीन केन्द्र के रूप मे निर्णायक भूमिका रही है। किरमान की पहाडियाँ ताम्र अयस्क से भरपूर हैं। ताल-ए-इब्लिस से प्राप्त मेसोपोटामिया के जैसे (लगभग 2800 ई० पूर्व) प्रवणित किनारे वाले (bevelled rim) कटोरो से ज्ञात होता है कि अयस्क और धातुओ का व्यापार दूरस्थ प्रदेशो मे परस्पर होने लगा था।

ताल-ए-इब्लिस के पूर्व मे, वालुक घाटी मे स्थित दाम्ब और तप्पा ए-नूरामाद से स्टाइन को कुछ मृद्भाण्ड मिले थे, लावर्ग-कार्लोवस्की के मतानुसार उनकी समानता चाह हुसैनी (वामपुर) और राना घुण्डई काल I और II के मृद्भाड से की जा सकती है। इन प्रमाणो से ज्ञात होता है कि इन केन्द्रो का सपर्क भारत-पाक उपमहाद्वीप से था तथा इन्ही केन्द्रो से होते हुए ताम्रकर्मीय तकनीको का प्रसार भारतवर्ष मे हुआ।

यह ज्ञात नही है कि बलूचिस्तान मे इन तकनीको का आगमन मकरान से हुआ या अफगानिस्तान से। डेल्स के चरण C के अतर्गत (हमारे मतानुसार लगभग 3300-3000 ई० पूर्व) इस क्षेत्र मे धातु की खोज हो चुकी थी। दम्बूपरी को देह मोरासी प्रकाल III_2 से खोखली ताम्र की नलिएँ मिली हैं जो हिस्सार काल II के समतुल्य हैं।

पहले ही उल्लेख किया गया है कि अफगानिस्तान में मुंडीगाक से धातुकर्म का विकास एक पूर्ण अनुक्रम मे मिला है। काल I के स्तर से ताम्र के मोडदार फलक व प्रकाल I_5 से एक सूआ उपलब्ध हुआ है। प्रकाल II_3 से भालाग्र, मरगोल सिरे वाले सुए (internally voluted spiral-headed pin) व छेदवाली सूइया मिली हैं। इस प्रकार के भाले की नोकें काल IV तक प्रचलित रही। लावर्ग कार्लोवस्की ऐसे हथियारो को रीढदार डासवाली कटार (tanged dagger with mid rib) के नाम से सबोधित करते हैं, जबकि उसमे रीढ़ है ही नही। काल III_6 काल मे टिन-मिश्रण के प्रमाण मिले हैं, लेकिन विश्लेषण से ज्ञात होता है कि प्रकाल I_5 मे, प्रकाल III_6 की अपेक्षा अधिक टिन की मात्रा थी। काल III से अधिक ताम्र उपकरण मिले हैं जैसे हत्थे के लिए छेद वाले कुल्हाडे, बसूले (III_6), बिना रीढ़वाली भाले की नोकें, एक हसिया फलक आदि, काल IV_3 से द्विमरगोल सिरे वाले सुए, नतोदर चक्रिका,

(IV_1) मत्स्य काटे और भाले के मोडदार फलक के साथ (IV_2) अन्य उपकरण मिले हैं। काल V के स्तर से अधिक धातु उपकरण उपलब्ध नही हुए। प्राप्त उपकरणो में अधिक बाणाग्र हैं। बलूचिस्तान से बहुत थोडी सख्या मे स्तरित धातु-उपकरण मिले हैं। इस्पेलेन्जी टीला I और क्वेटा से क्वेटा-मृद्भाडो के साथ ताम्र शिल्प उपकरण भी उपलब्ध हुए हैं। कुछ ताम्र के टुकडे दब सदात काल II और काल III के स्तर से प्राप्त हुए।

डेल्स ने अपने चरण D के अतर्गत मुख्यत सिंधु की प्राग्हडप्पा सस्कृतियो के स्थलो जैसे कोटदीजी, कालीबगन तथा बलूचिस्तान को रखा है। कोटदीजी के प्राग्हडप्पा स्तर से ताम्र की केवल एक वस्तु मिली है। आम्री से हस्तनिर्मित मृद्भाडो और टोगाउ C ठीकरो के साथ केवल एक धातु का टुकडा, कालीबगन काल I से दो-तीन टुकडे, कुल्ली से एक दर्पण, पिन और चपटी कुल्हाडी, और निंदोवारी से केवल एक चूडी मिली है। अन्य स्थलो से धातु के उपयोग मात्र का आभास होता है। नाल की कब्रो और D और F क्षेत्रो से पर्याप्त मात्रा मे धातु के चाकू, फलक, चूडियाँ, कुल्हाडियाँ आदि मिले हैं।

उपर्युक्त सर्वेक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि सिंध मे ताम्रकर्मीय तकनीको का प्रसार, ईरान से अफगानिस्तान होते हुए बलूचिस्तान के माध्यम से हुआ होगा। ताम्र धातुकर्म का ज्ञान सिंध में ईरान से 1500 साल बाद लगभग 2400 ई० पूर्व हुआ। प्राग्हडप्पा सस्कृतियो की अपेक्षा हडप्पा काल में एकाएक प्रचुर सख्या मे विविध प्रकार के हथियारो का प्रादुर्भाव हुआ। धातुकर्म प्रसार के उपर्युक्त स्पष्ट मार्ग एव हडप्पा सस्कृति की अपेक्षाकृत परवर्ती तिथि से सिद्ध होता है कि हडप्पा मे धातुकर्म की स्वतत्र उत्पत्ति नही हुई। इसकी पुष्टि इस बात से होती है कि हडप्पा सस्कृति मे प्रारभ से ही धातुकर्म तकनीकें पूर्ण रूप से विकसित अवस्था मे पायी गयी हैं इसलिए स्वतत्र विकास का प्रश्न हो नही उठता।

III—प्राचीन भारत मे अयस्क और खनन

क—ताम्र अयस्क

ताम्र जल, मिट्टी व अयस्को मे मिलता है। प्राकृत ताम्र ताम्र और लोह अयस्को की ऊपरी सतहो से उपलब्ध होता है। भारतवर्ष मे मुख्यत निम्नलिखित ताम्र खनिज मिलते हैं।

1—कैल्कोपाइराइट ($Cu_2SFe_2S_3$) 34 6% ताम्र
2—कैल्कोसाइट (Cu_2S) 79·8% ताम्र

3—बोरनाइट (Cu_3FeSO_4)	55 5% ताम्र
4—टेट्राहेड्राइट ($4Cu_2S$ Sb_2S_3)	52.1% ताम्र
5—कोवेल्लाइट (CuS)	66 5% ताम्र
6—मैलाकाइट $CuCO_3Cu(OH)_2$	57 3% ताम्र
7—एज्युराइट $2CuCO_3$ $Cu(OH)_2$)	55 1% ताम्र

सिंगभूमि की ताम्र पट्टी 130 किलोमीटर लंबे और 8 कि०मी० चौडे क्षेत्र मे फैली है। 1959 में किये गये अनुमान के अनुसार इसके 38 लाख टन ताम्र अयस्क मे औसतन 2 47% ताम्र हैं। नवीन खोजो के अनुसार पत्थरघोरा, सूर्दा, केंडडोह, रोअम-सिद्धेश्वर के ताम्र खानो का पता चला है। आंध्र मे भी गुंटूर के दक्षिण आरकोट और हसन जिले मे ताम्र अयस्क मिला है। गुंटूर की ताम्र भडार पट्टी 4 8 किलोमीटर लंबी है। जबलपुर के क्षेत्र मे डोलोमाइट मे पतली कैल्कोपाइराइट और टेट्राहेड्राइट खनिजो की नसें हैं। राजस्थान से लगभग सभी क्षेत्रो मे ताम्र अयस्क मिलते हैं। इस प्रदेश की झुनझुना जिले की खेत्री सिंघाना खान जो कि लगभग 80 किलोमीटर लंबी है, सबसे महत्वपूर्ण है। इस पट्टी के मर्दान कुरान क्षेत्र मे, 2 करोड 80 लाख टन के अयस्क भडार मे 0 8% ताम्र है, और दरीबो क्षेत्र के 3 लाख टन अयस्क भंडार मे 2.5 ताम्र है। इस क्षेत्र मे चालकोपाइराइट खनिज पाया जाता है। मजूमदार और राजगुरु और श्री निवास आदि के विवरणों के आधार पर महत्वपूर्ण राजस्थानी ताम्र अयस्क भडारो का नीचे थोडा विस्तार से वर्णन करेंगे।

ख—मुख्य ताम्र अयस्क भंडार

(i) खेती सिंघान (जिला जयपुर) के बाहर लाखो टन धातुमल के ढेर लगे हैं। यहाँ पर कैल्कोपाइराइट अयस्क का प्रयोग किया जाता रहा जिसमे ताम्र 0 75 से 4% तक मिलता है।

(ii) खोदरीजर (जिला अलवर) मे अयस्क फाईलाइट चट्टानो मे नसो के रूप मे मिलता है और प्राचीन धातु-मल के ढेर भी मिलते हैं।

(iii) दिल्वारा किरौली (जिला उदयपुर) क्षेत्र से दिल्वारा कोवी, बिलोटा और किरौली मे प्राचीन खुदानें मिली हैं। दिल्वारा और किरौली मे प्रचुर मात्रा मे धातुमल के ढेर प्राप्त हुए हैं। कैल्कोपाइराइट और मैलेकाइट (6 8% ताम्र) यहाँ के मुख्य खनिज हैं।

(iv) देवारी (जिला उदयपुर) क्षेत्र से चैल्कोपाइराइट, क्यूप्राइट, एजुराइट और मेलाकाइट मिलते हैं। राजगुरु और मजूमदार ने इस क्षेत्र में कई अन्य स्थलों का भी वर्णन किया है। राजस्थान के भ्रंश मंडल (fault zone) में होने के कारण ही यहाँ अधिकांश अयस्क भंडार स्थित हैं। अधिकांश प्राचीन खानें क्वार्ट्जाइट (स्फटिक) चट्टानों पर स्थित हैं। राजगुरु व मजूमदार के अनुसार इस क्षेत्र से मिला धातुमल विभिन्न आकार, माप, रचना, गठन आदि का है। यह फेन सदृश कांच जैसे हल्के रूप से लेकर भारी लौह युक्त प्रकार तक है। इन ढेरों से ताम्र प्रगलन के अन्य प्रमाण (मूषा आदि) भी मिले हैं। इसी प्रकार का फेनम काचाभ धातुमल अहाड़ में भी पाया गया, जिसका विश्लेषण हेग्डे ने किया है।

श्री निराम्न के अनुसार मौर्य काल से खेत्री ताम्र भंडार का खनन होता रहा है। अब्दुल फजल (1590 ई०) ने भी इन खानों का वर्णन किया है और वर्तमान काल में कैप्टन पैल्यो (1830 ई०) ने सर्वप्रथम इन खानों का पता लगाया। सनाह उल्लाह के मतानुसार सिंधु सभ्यता के संभावित ताम्र स्रोत, बलूचिस्तान में शाह बल्लाउल, रावात, रासकूह और कोशक उमरान, अफगानिस्तान में शाह मकसूद और कालिहुजेरी, ईरान में अनारक और भारतवर्ष में अजमेर, सिरोही, मेवाड़ और जयपुर हो सकते हैं। इनके अतिरिक्त पास्को ने भी अन्य स्थलों का वर्णन किया है। उनके विचार से सान्निध्य के कारण से जयपुर जिला, शाह मकसूद और रावात संभवतः सिंधु सभ्यता के ताम्र के स्रोत रहे हो। फोर्ब्स के मतानुसार प्राचीन काल में ताम्र प्रगलन खान राज्य, दक्षिण नैलोर, किस्तना जिले में काठियावाड़ में गावती, उत्तरी गुजरात में अंबर माता और कुंभारिया और नेपाल में होता था। पर यह निश्चित नहीं है कि ये धातुकर्म यहाँ यूनानी काल से पूर्व भी होता था। कुंभारिया की खानों की कार्बन तिथि केवल एक हजार साल पुरानी है। ताम्र भंडार की ये पट्टी पूर्व में ईरान से होती हुई कैस्पियन सागर और ट्रासकाकेसिया से भी आगे तक चली गयी है। इसके अन्तर्गत काबुल के निकट वाघिस्तान, काफिरिस्तान आदि प्राचीन खानें हैं। अस्तराबाद के निकट, कालेह और एल्बुर्ज पहाड़ियों में ताम्र खाने हैं। कशान, कोहरुद और इस्फहान जिलों में भी अनेक महत्वपूर्ण खानें हैं। मैलोवन ने मगन के प्राचीन ताम्र पूर्ति केन्द्र जगरोस पहाड़ों और ईरान की खानों को माना है। मैके का विचार है कि सिंध में ताम्र का आयात संभवत ईरान से हुआ, क्योंकि वहाँ टीन व ताम्र

अयस्क बहुलता से उपलब्ध है। डेस्क ने मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक आक्साइड अयस्क का विश्लेषण किया था।

ताम्र की ढलाई को सुधारने के लिए उसमें टिन और सखिया मिलाया जाता था। अब हम टिन, सखिया और सीसे के अयस्क भडारो का वर्णन करेंगे।

ग. टिन अयस्क

टिन का मुख्य अयस्क कैस्सिटेराइट है जिसमे 78 6% तक टिन होता है। लेकिन यह अयस्क, स्फटिक के अंदर पतली नसो के रूप मे ऐसा मिला होता है कि केवल 0 2 से 2 0% टिन तक ही इसमे उपलब्ध हो पाता है। ऐसी नसो के रूप मे टिन ग्रेनाइट चट्टानो मे भी काफी होता है और धीरे-धीरे चट्टानो के विघटन से मिट्टी मे घुल-घुलकर नदियो की मिट्टी मे मिलता रहता है।

एशिया माइनर मे दारमन लार, मुरादबाग और कस्तमुनि, काकेशस और ट्रासकाकेमिया क्षेत्र मे वेलारिया नदी की घाटी, एल्बुर्ज और टेरेक पहाडियो के मध्य के क्षेत्र, गौरी क्षेत्र, और कारादाग पर्वत, ईरान मे टाबरिज के निकट कूह-सेहेंद, अस्तराबाद और दमगन के निकट कूह-ए वेनान और एशिया मे वेकल झील के समीप, बर्मा और मलाया से बिल्लोटोन तक टिन की मुख्य प्राचीन खानें थी।

घ भारतवर्ष के टिन अयस्क

यद्यपि देश मे प्रतिवर्ष टिन की खपत 4500 टन से भी ज्यादा है, तथापि यहाँ टिन का उत्पादन नही के बराबर है। बिहार मे हजारीबाग, राची, गया, गुजरात मे बनासकाटा, मैसूर मे धारवार, राजस्थान मे भिलवाड़ा मे टिन अयस्क भडारो का पता चला है। परतु ये सब खानें आर्थिक दृष्टि से लाभदायक नही हैं। प्राचीन भारत मे टिन खदान का कोई सकेत नही मिलता। सभवत. नदी की बालू मे मिली टिन ही का प्रयोग किया जाता था। यह भी सभव है कि सिंध मे खुरासान और कारदाग की खानो से टिन का आयात हुआ हो।

ङ संखिया के अयस्क

संखिया के दो अयस्क मैनसिल और हरताल आज भी देश मे आयात होते हैं। पश्चिमी बगाल राजस्थान, कश्मीर और बिहार मे सखिया उपलब्ध है। लेकिन ये अयस्क आर्थिक दृष्टि से खनन योग्य नहीं हैं।

सिंधु सभ्यता के ताम्र उपकरणो मे भी,संखिया पर्याप्त मात्रा मे है। यदि संखिया 1% से कम हो तो यह निश्चित नहीं किया जा सकता कि यह ताम्र अयस्क के कारण है या लोलिंगाइट जैसे अयस्को के लेकिन 1% से अधिक संखिया का मिश्रण निस्संदेह पूर्वआयोजित समझा जा सकता है।

घ सीसे का अयस्क

कहा जाता है कि राना लखन सिंह (1382-97 ई०) के समय से जावर मे सीसे का खदान होता रहा है। यद्यपि सीसे की खाने कुनु ल, आग्निगु डाला (गुंटूर), कश्मीर, बरोला व अलमोडा आदि मे भी है पर आर्थिक दृष्टि से जावर की खान ही उपयोगी है।

ताम्र को अधिक गलनीय बनाने के लिए ताकि ढलाई मे सुगमता रहे उसमे सीसा मिलाया जाता था। हडप्पा तथा अन्य ताम्राश्मीय स्थलो के ताम्र उपकरणो मे यह पर्याप्त मात्रा मे मिलता है।

सिंधु सभ्यता के स्थलो से अनेक सीसे के उपकरण व अयस्क मिले हैं। मोहनजोदडो के अयस्क के हमारे विश्लेषण से ज्ञात हुआ है कि उसमे केवल एंटिमनी और सीसा है।

IV—प्राचीन अयस्को और खनन क्षेत्रो की खोज

पहले हम अयस्को के प्रकारो को निश्चित करने का प्रयत्न करेंगे (इन आपेक्षित संभावनाओ के परिकलन का वर्णन अग्रवाल की पुस्तक (Copper Bronze Age in India) में किया गया है।)

हडप्पा मे केवल आक्साइड अयस्क (मैलाकाइट) के प्रयोग की संभावनाएँ अधिक हैं। परन्तु मोहनजोदडो के प्रारम्भिक काल मे ही सल्फाइड अयस्क का प्रगलन किया जाता था। मोहनजोदडो और रंगपुर मे संभवत प्राकृत और आक्साइड अयस्क सामान्यत प्रयोग किया जाता था। मोहनजोदडो से (D K. क्षेत्र, कमरा न० 51 के एक गढे मे) प्रचुर मात्रा मे ताम्र आक्साइड अयस्क के साथ कुछ सीसा भी मिला है। यद्यपि प्रारंभ से ही सल्फाइड अयस्क से शुद्ध ताम्र निकाला जाता रहा था, फिर भी इस खोज से स्पष्ट हो जाता है कि सिंध में आक्साइड अयस्क का प्रयोग प्रगलन के लिए आमतौर पर किया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि सैंधव लोग प्राकृत और आक्साइड अयस्को का प्रयोग शायद नयी-नयी खानो के सुलभ होने के कारण करते थे। साधारणतया ताम्र के प्राकृत और आक्साइड रूप, खान की ऊपरी सतह से प्राप्त होते हैं। अत

प्राकृत व आक्साइड रूपो की प्रचुरता नयी खानो के उपयोग का आभास देती है। रगपुर मे केवल प्राकृत व आक्साइड धातुओ का प्रयोग नयी खानों (काठियावाड मे रूपवती) के उपयोग की ओर इगित करती है।

ताम्राश्मीय शिल्प उपकरणो मे आक्साइड अयस्को के प्रयोग की अधिक सभावनाए हैं। अब तक प्राप्त 12 उपकरणो के विश्लेषण से सल्फाइड अयस्को के प्रयोग की सभावनाओ का आभास नही मिलता।

ताम्राश्मीय संस्कृतियो का धातुकर्म, इसकी अनगढ़ ढलाई, उपकरणो के सादा आकार, सिंधु सभ्यता की तुलना मे धातु की न्यूनता, सखिया-मिश्रण व सल्फाइड अयस्क प्रगलन की अनभिज्ञता, व टिन के अल्प अंश (5% से कम) आदि के कारण, हडप्पा सस्कृति के विकसित धातुकर्म ज्ञान से काफी भिन्न है। हडप्पा सस्कृति और ताम्राश्मीय सस्कृतियो की धातुकर्म परपराओ की स्पष्ट भिन्नता इस बात का द्योतक है कि हडप्पा संस्कृति ने इस परवर्ती संस्कृतियो को तकनीकी ज्ञान मे विशेष प्रभावित नही किया। सैंधव स्तर की तुलना में ताम्राश्मीय धातुकर्म और शिल्प काफी पिछडा लगता है। चित्रित धूसर मृद्भाड और नवाश्मी युग के ताम्र उपकरणो के विश्लेषण इतने कम हैं कि उनसे अयस्को के उपयोग के विषय मे कुछ पता लगाना दुस्साध्य है।

विभिन्न सस्कृतियो के तत्कालीन क्षेत्रो को निश्चित करने के लिए वडी सख्या मे नमूनो की आवश्यकता है, जबकि अव तक केवल कुछ ही अयस्क प्राप्त हुए हैं जिनकी जाँच की गयी है। केवल खेत्री और सिंगभूम, मद्रास व मोहनजोदडो से प्राप्त अयस्को के ही विश्लेषण अब तक प्राप्त हैं। सिंगभूम के पाइराइट मे सखिया, एटीमनी और सीसा नही है, जब कि ये सैंधव शिल्प उपकरणो मे पर्याप्त मात्रा मे हैं।

सैंधव उपकरणो की विविध अयस्को से तुलना "करने पर ज्ञात हुआ कि खेत्री अयस्को और सैंधव उपकरणो की अशुद्धियो मे निकट का साम्य है। सिंहभूम के कैल्कोपाइराइट और मद्रास के पिरहोटाइट और सैंधव अशुद्धियो मे बहुत सी असमानताएँ हैं। अब तक के थोडे से विश्लेषणो के आधार पर यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि खेत्री ही सभावित सैंधव ताम्र खनन क्षेत्र रहा होगा। इसकी पुष्टि अधिकाशत प्राकृत और आक्साइड अयस्को के प्रयोग से भी होती है, जो कि प्रचुर मात्रा मे एक नवीन खान के ऊपरी हिस्से से ही उपलब्ध हो सकते थे। वैसे भी सिंहभूम की दूरी व दुर्गमता उसके सैंधव ताम्र स्रोत होने की सभावनाओ को असभव बना देती हैं।

दूसरी ओर, ताम्राश्मीय सस्कृतियो के शिल्प उपकरणो और खेती अयस्को की स्पेक्ट्रमी विश्लेषणों की तुलना दर्शाती है कि उनमे भी पर्याप्त समानताएँ हैं। लेकिन निश्चित निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त नमूनो का विश्लेषण करना अति आवश्यक है। उपर्युक्त विश्लेषणो के आधार पर अभी यही कहा जा सकता है कि राजस्थान के ताम्र अयस्को का उपयोग हडप्पा व ताम्राश्मीय दोनो सस्कृतियाँ ही करती रही। पुरालेखो के अनुसार मेसोपोटामिया मे मेलुहा से ताम्र आयात किया जाता था। यदि मेलुहा भारतवर्ष मे था तो राजस्थान के प्रचुर अयस्क भडारो का खनन ही यह सभव बनाता है कि यहाँ से प्राचीन ईराक को ताम्र निर्यात होता रहा हो।

V—ताम्र प्रगलन व धातु मिश्रण

अ प्रगलन

फोर्ब्स के मतानुसार ताम्र धातुकर्म का विकास निम्न चरणो मे हुआ होगा।

प्रथम चरण—प्राकृत ताम्र को हथौडिया कर, काट कर, मोड कर, घिस कर व चमका कर आकार देना।

द्वितीय चरण—प्राकृत ताम्र को गर्म लाल करके हथौडिया कर तापानुशीतन करना।

तृतीय चरण—आक्साइड और कार्बोनेट आयस्को का प्रगलन। मिट्टी से लिपी हुई भट्टी मे कोयले या लकडी जला कर अयस्को का प्रगलन। इस क्रिया मे शुद्ध ताम्र प्राय अलग हो जाता है और धातुमल फेंक दिया जाता है।

चतुर्थ चरण—ताम्र का द्रवीकरण और ढालना। मूषा मे ताम्र गला कर साँचों मे ढाला जाता ।

पचम चरण—सल्फाइड अयस्क पहले गधक निकालने के लिए भूना जाता है। फिर भूना हुआ अयस्क भट्टी मे प्रगलित किया जाता है। भूनने और प्रगलन की प्रक्रियाएँ दोहराई जाती हैं ताकि उत्तरोत्तर शुद्ध ताम्र प्राप्त हो सके और धातुमल निकाला जा सके। अंत मे शुद्ध ताम्र के उपकरण ढालने आदि से बनाए जाते हैं। इस प्रकार 99 5% शुद्ध ताम्र उपलब्ध किया जाता है। हवा धौंकने से ताम्र आक्साइड बनने के कारण ताम्र भगुर हो जाता है अत यदि द्रवित धातु मे कच्चा (हरी) तना या डाल डाला जाय तो यह एकदम आग पकड लेती है और उससे अनेक हाइड्रोकार्बन गैसें निकालने लगती हैं। फलस्वरूप

ताम्र आक्साइड का अपचयन (Reduction) हो जाता है। इस प्रक्रिया को पोलिंग कहते हैं। ताम्र उत्पादन के लिए उचित पोलिंग अति आवश्यक है। हमारी ताम्राश्मीय संस्कृतियो के उपकरणो मे ताम्र आक्साइड की उपस्थिति इस बात का द्योतक है कि उन्हें 'पोलिंग' का पूर्ण ज्ञान नही हुआ था। जब से सल्फाइड अयस्को का उपयोग होने लगा तब से ही ताम्र उपकरणो मे अशुद्धता की वृद्धि होने लगी।

ख धातु मिश्रण

ताम्र की ढलाई के गुणो को सुधारने के लिए उसमें अन्य धातु मिश्रित किये जाते हैं। धातु जब गर्म किये जाते हैं तो वे गैसो को आत्मसात कर लेते हैं। शुद्ध ताम्र ढालने पर ऐसी आत्मसात गैसें छोडता है। इससे ढले हुए उपकरण मे छोटे-छोटे छेद हो जाते हैं। टिन और संखिया मिलाने से ताम्र मे गैस बहुत कम रह जाती है। बिना धातु मिश्रण के जटिल उपकरणो का ढालना सभव नही है।

1·04% सखिया मिलाने से हथौडियाये हुए ताम्र की कठोरता 124 से बढ़कर 127 (ब्रिनेल इकाइयाँ) हो जाती है। केवल हथौडियाने से ही शुद्ध ताम्र की कठोरता 87 से 135 (ब्रिनेल) बढ़ जाती है जो काँसे की कठोरता के समतुल्य है। लेकिन धार तेज करने के लिए बार-बार हथौडियाने की आवश्यकता पडती है जिसके फलस्वरूप हथियार बिलकुल भगुर हो जाता है। शुद्ध ताम्र की अपेक्षा हथौड़ियाने से कास्य अधिक कठोर बन जाता है। 8·12% टिन का मिश्रण ताम्र के लिए सर्वोत्तम है।

प्राचीन काल के कास्य की व्याख्या मे विद्वानो मे मतभेद है। कोगलन के मतानुसार कास्य मे 5 से 15% टिन होना चाहिए। इससे कम टिन की उपस्थिति को वह आकस्मिक समझता है जबकि टाइलकोट सभी धातु मिश्रणो को जिसमे 1% से अधिक टिन हो कास्य की श्रेणी मे रखता है। गोवलैंड और बर्टन के दावे के बावजूद थामसन 1% से कम टिन या सखिया वाले ताम्र को जानबूझ कर बनाया कास्य नही मानता। ऐसा मिश्रण अशुद्ध अयस्को के प्रयोग के कारण हो सकता है।

अब नीचे पश्चिमी एशिया मे कास्य उत्पादन तथा इस तकनीक के सर्व-प्रथम भारत की पश्चिमी सीमा मे प्रसार के इतिहास पर प्रकाश डालेंगे।

(i) एशिया मे धातु मिश्रण

ट्राय प्रथम, थर्मी प्रथम, अलिशार प्रथम और टेपे गावरा अष्टम के 2500 ई० पूर्व से भी पहले के यत्र तत्र फैले कास्य भडारो मे 10% टिन मिश्रण है। इससे स्पष्ट होता है कि इस प्राचीन काल मे भी कुछ क्षेत्रो मे धातु मिश्रण पर प्रयोग होने लगे थे। ग्योय टेपे K काल मे सखिया का उच्च अश, कास्य के लिए धातु मिश्रण का ज्ञान दर्शाता है। सभवतः ताम्र को कठोर बनाने व उचित रीति से ढालने के लिए सखिया जानबूझ कर मिलाने का विचार ग्योय टेपे मे G काल के लोगो के आगमन के साथ हुआ। उर की राजकीय कब्रो के कास्य मे 0 5 से 14·5% तक टिन मिश्रित है। प्रारभिक कास्य मे हर प्रकार की अशुद्धियाँ हैं, जब कि परवर्ती काल मे नहीं हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे ये कास्य शुद्ध गोनिग किये ताम्र व टिन अयस्क मिलाकर बनाये गये थे, सखिया व एटीमनी के स्थान पर टिन का प्रयोग निश्चित रूप से प्रयोगात्मक कहा सकता है।

परवर्त्ती काल मे ताम्रकर्मियो ने ताम्र के साथ सीसा मिश्रण करके द्रवणाक को नीचे लाने की विधि ज्ञात कर ली थी। इसीसे लुप्त मोम की ढलाई सभव हो सकी। लेकिन टिन और कांस्य मिश्रण के उदाहरण कोई नहीं मिले। टिन-कास्य के उदाहरण प्रारभिक राजवश (Early Dynastic) काल के ही मिले हैं। इस काल मे टिन की कास्य मे मात्रा 1 से 11% तक थी। परतु सार्गोन काल के किश और उर में पूर्वकालीन 10% टिन की अपेक्षा केवल 1% से भी कम टिन है। अत इस काल मे टिन की ही मात्रा अशुद्धता के कारण ही है। ऐसा प्रतीत होता है कि पश्चिमी एशिया से टिन का आयात तीन सहस्र ई० पूर्व बंद हो गया था। तीसरी सहस्राब्दी ई० पूर्व के अत मे, बोहेमिया और सैकसोनी टिन अयस्को के उपलब्ध हो जाने से, कास्य का उत्पादन पुन प्रारभ हो गया था। दर्पण की प्रतिबिबन शक्ति प्राप्त करने के लिए रोमनो ने 23 से 28% टिन व 5 से 7% सीसा मिश्रण करने का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। टिन और सीसे का ज्ञान कुल्ली और सिंधु सभ्यता के लोगों को भी था। इन सस्कृतियों से प्राप्त दर्पणो का विश्लेषण करना इसलिए महत्वपूर्ण होगा ताकि उनसे प्रतिबिबन की मात्रा का अनुमान लगाया जा सके।

(ii) भारतवर्ष मे धातु मिश्रण

प्राग्हड़प्पा स्थलो से अधिक विश्लेषण प्राप्त नहीं है। मुडीगाक से एक अल्प टिन (1 06%) कास्य (?) का नमूना मिला है। नाल के एक अन्य

उपकरण मे टिन मिश्रण नही है, जबकि सीसा 2 14% है। हड़प्पा सस्कृति के उपकरणो मे टिन की मात्रा की विविधता अधिक है।

प्रतिशत उपकरण	70%	10%	14%	6%
टिन मात्रा प्रतिशत	1%	8%	8 से 12%	12%

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि 70% उपकरण कास्य के नही थे। केवल 14% उपकरणो मे ही अधिकतम कठोरता और तन्यता सभव थी, क्योकि उनमे 8 से 12% टिन मिश्रण है। एक कास्य छड मे 22% से भी अधिक टिन है। इससे स्पष्ट होता है कि यद्यपि हड़प्पा सस्कृति में धातु मिश्रण किया जाता था पर उपयुक्त अनुपात मे धातु मिश्रण के नियत्रण का ज्ञान नही था। सभवत सखिया अयस्क के रूप मे मिलाया जाता था। नाल से लौह-सखिया अयस्क भी मिला है। अग्रवाल के विश्लेषण के अनुसार मोहनजोदडो से प्राप्त उपकरणो मे ऊपरी सतह वाले 23% उपकरण कास्य के हैं, जब कि निम्न सतहो वाले 6% से भी कम कास्य के हैं। मुख्यत चाकू, कुल्हाडियाँ व छेनियाँ टिन कास्य की बनी है। लेकिन 70% ताम्र उपकरणो मे टिन नही के बराबर है। रंगपुर के छ उपकरणो मे टिन 2 6 से 11 7 है, इनमे से तीन मे 1 8 से 5 8% रागा (निकल) है। इनमे सीसा या सखिया नही है।

अग्रवाल के अनुसार मोहनजोदडो के 117 विश्लेषित शिल्प उपकरणो मे, 8% उपकरणो मे सखिया 1 मे 7% तक, केवल 4% मे निकल (रागा) 1 से 9% तक, 6% मे सीसा 1 से 32% तक मिश्रित था। ह्यौडियाने से 1% सखिया भी ताम्र की कठोरता मे 124 से 177 (ब्रिनेल) वृद्धि कर देता है। हो सकता है कि सखिया के इस गुण का उन्हे समुचित ज्ञान न हो। सभवत· सखिया का उपयोग ढलाई सुधारने के लिए ही किया जाता था।

ताम्राश्मीय स्थलो के ताम्र उपकरणो मे सखिया नही है। लेकिन 1 से 2%तक सीसे का मिश्रण सामान्यत मिलता है जो कि सभवत· उत्तम गलनशील के लिए किया गया था। जोर्वे कुल्हाडी मे 1 78% निवासा की एक छेनी मे 2·7% और नवदाटोली के तीनो उपकरणो मे टीन 3 से 5% तक, और सोमनाथ के कुल्हाडे मे 12 8% है। उपर्युक्त उदाहरणो से स्पष्ट है कि इन लोगो को धातु मिश्रण का ज्ञान था, यद्यपि सोमनाथ के अतिरिक्त अन्य किसी स्थल के उपकरण मे टिन की उच्चतम मात्रा 8% से 12% के बीच नही है। अहाड के उपकरणो मे टीन की अनुपस्थिति महत्वपूर्ण है।

न तो टैक्सलाकोटा की कुल्हाडी और न लाघनाज के चाकू मे टिन या सखिया मिश्रण है, न ही हस्तिनापुर मे नि० धू० भाड स्तर के दो उपकरणो मे। सोनकुर प्रथम काल की एक छड मे टिन 1 4%, और द्वितीय काल की एक चूडी मे 1 9% जब कि चम्मच की एक मूठ मे यह 32% है। चिरांद के तीनो उपकरण शुद्ध ताम्र के हैं।

उपर्युक्त उदाहरणो से स्पष्ट हो जाता है कि टिन, सीसा व सखिया के उच्चतम मिश्रण की दृष्टि से हडप्पा के उपकरण ताम्राश्मीय उदाहरणो स भिन्न हैं, ताम्राश्मीय स्थलो के उपकरणो मे सखिया मिश्रण है ही नही, टिन का मिश्रण भी (सोमनाथ के कुल्हाडे के अतिरिक्त) 5% से अधिक नही है।

लाल के कथनानुसार पश्चिम एशिया के हत्थेदार कुल्हाडे, बसूले आदि के विपरीत ताम्र सचय उपकरण शुद्ध ताम्र के हैं। वैसे स्मिथ ने कांस्य के कुछ सदिग्ध उदाहरण दिये हैं लेकिन लाल ने बिसोली मानवाकृति उपकरण (anthropomorph) का विश्लेषण करने पर उसे शुद्ध पाया (ताम्र 98 77%, निकल 0 66%)। अग्रवाल ने पांच ताम्र संचय उपकरणो के नमूने का परीक्षण किया, लेकिन किसी मे भी टिन नही था। अत अब तक प्राप्त प्रमाण लाल के मत को पुष्ट करते हैं कि ताम्र सचय वाले लोगो को धातु मिश्रण का ज्ञान नही था। स्मिथ के अधिकाश नमूने ब्रिटिश सग्रहालय से लिये गये हैं, जिनका निश्चय स्थान ज्ञात नही है अत ये अधिक विश्वसनीय नही हैं।

प्राप्त सीमित तथ्यो के आधार पर फिलहाल निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

(i) हडप्पा संस्कृति मे टिन, सखिया व सीसे का प्रयोग होता था।

(ii बनास सस्कृति वाले केवल सीसा मिश्रित करते थे।

(iii) मालवा और जोर्वे सस्कृति मे टिन और सीसे का प्रयोग होता था।

(vi) ताम्र-सचय सस्कृति के लोग केवल शुद्ध ताम्र का प्रयोग करते थे।

VI—धातु शिल्प

यहाँ हम धातु गढाई व ढलाई की तकनीको का अध्ययन करेंगे। प्रत्येक सस्कृति की अपनी विशिष्ट तकनीकें हैं जिनके अध्ययन द्वारा ही हम प्रागैतिहासिक सस्कृतियो के बीच समानताओ व असमानताओ को समझ सकते हैं। पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि ईराक व ईरान की अपेक्षा भारत मे धातु शिल्प का ज्ञान बहुत परवर्ती है। सैंधव सस्कृति मे हमे एकाएक पूर्ण विकसित धातु शिल्प तकनीक देखने को मिलती है, अभी तक अपने देश मे

उत्खनन इस प्रकार के धातुकर्मीय और धातुशास्त्रीय विश्लेपण मे रुचि नही लेते रहे, जिसके कारण नमूनो का बहुत अभाव है। इसलिए निम्न अध्ययन प्राप्त सीमित आकडो के आधार पर ही किया है।

मैके ने ताम्र वर्तनो पर पीटने के निशान देखे है। इसी प्रकार चाकुओ, भालो, तीरो, उस्तरो आदि पर भी पीटने और हथौडियाने के चिह्न इन तकनीको के प्रयोग दर्शाते हैं। 'कोल्ड वर्क' अथवा ठढे धातु को पीट कर उपकरण बनाने की तकनीक के प्रमाण सैधव और ताम्राश्मीय दोनो सस्कृतियो में मिलते हैं। तापानुशीतन की तकनीक का प्रयोग हडप्पा सस्कृति व ताम्राश्मीय सस्कृतियो दोनो मे हुआ है। परन्तु ताम्र-सचय सस्कृति के उपकरणो मे अभी तक इस तकनीक के प्रयुक्त किये जाने के उदाहरण नही मिले हैं।

धातु के दो या अधिक टुकडो को जोडने की अनेक तकनीकें प्रचलित थीं। हडप्पा सस्कृति मे रिवेटिंग व लैंपिंग का प्रयोग होता था। यद्यपि ताम्र ढालने के कोई प्रमाण अभी तक नहीं हैं, फिर भी सोने और चादी के ढालने के उदाहरण हड़प्पा सस्कृति से मिलते हैं।

ढलाई कई प्रकार से की जाती थी—खुले साचो मे, सांचो के कई टुकडो वद साचो और लुप्त मोम की प्रक्रिया से। खुले हुए साचे चाहुदडो से मिले हैं जिनमे चपटी कुल्हाडियाँ ढाली जाती थी। ताम्र सचय के कुछ उपकरणो मे दोहरे सांचे प्रयोग करने के स्पष्ट साक्ष्य हैं। सिंधु-सभ्यता से भी प्राप्त नर्तकी की प्रतिमाओ से आभास होता है कि ये लुप्त मोम विधि से ढाली गयी थी। इन सभी सस्कृतियो मे खुले साचे का उपयोग सर्वाधिक है।

VII—विभिन्न सस्कृतियो के धातु उपकरण

मुडीगाक, नाल और मेही के अलावा अन्य प्राग्हडप्पा सस्कृतियो से धातु वहुत कम मात्रा मे मिली है। केवल नाल से ही बसूला, छेनी और आरियो सहित 18 उपकरण मिले हैं। स्याह दब और अजीरा से कोई भी धातु उपकरण अब तक उपलब्ध नही हुआ। दब सदात काल II से केवल कुछ ताम्र टुकडे और एक कटार, कोटदीजी I से केवल एक चूडी और कालीबगन I से तीन उपकरण ही मिले हैं।

उपर्युक्त अन्य सस्कृतियो की अपेक्षा सैधव सभ्यता ताम्र की दृष्टि से अधिक सम्पन्न थी। मोहनजोदडो के D K टीले से ही केवल 14 भालाग्र, 17 बाणाग्र, 18 उस्तरे, 23 कुल्हाडे, 53 छेनियाँ, 11 मत्स्य काटे, 64 चाकू एक कुल्हाडी-बसूला, और दो तलवारें मिली हैं। इसी प्रकार चांहूदडो के केवल

एक टीले के चार बड़े भाडारो से, प्रत्येक मे 16 से 28 उपकरण मिले। इन हथियारो के अतिरिक्त अन्य सैंधव स्थलो से बहुत बड़ी संख्या मे विभिन्न प्रकार के धातु-पात्र मिले हैं।

धातुकर्म की प्रचुरता नागरीकरण की भी सूचक है। मेसोपोटामिया के उरूक काल मे भी एकाएक धातु के प्रचुर प्रयोग के साथ-साथ नागरीकरण का उद्भव देखते हैं। दूसरी ओर ताम्राश्मीय सस्कृतियो मे अपेक्षाकृत धातु कम प्रयोग होने के कारण उनका नागरीकरण नही हो सका। सभवत अविकसित धातु शिल्प ज्ञान के कारण वे अतिरिक्त कृषि उत्पादन न कर सके हो।

निम्न स्थलो से प्राप्त उपकरणो की प्रचुरता के आधार पर उन्हे ताम्राश्मीय सस्कृति के अतर्गत रखना उचित ही है। नवदाटोली—छेनियाँ, 4 चपटी कुल्हाडियाँ, हत्थे के लिए छेदवाली कुल्हाडी, 2 मत्स्य काटे, अधूरे मनके तथा तारो के टुकडे। चदोली से 2 छेनियाँ, 1 कुल्हाडी, 1 कटार, 3 मत्स्य काँटे, 1 ताम्र छड, 14 मनके, 3 चूडियो के टुकडे, 1 छल्ला, और 1 टूटा हुआ पायल। कायथा से 2 मोटे ताम्र कुल्हाडे, बहुत सी चूडियाँ और 1 छेनी। निवासा से 1 छेनी, 1 तश्तरी, 1 छड, 1 पात्र, 2 चूडियाँ, 1 कुरेदनी और 7 मनके। जोर्वे से 6 चपटी कुल्हाडियाँ और 1 चूडी। अहाड़ से प्राप्त धातुमल और चदोली से मिले अनगढ बालू का साँचा आदि से धातुकर्म के ज्ञान का आभास होता है।

ताम्राश्मीय स्थलो की अपेक्षा दक्षिण के नवाश्मीय स्थल की ताम्र दृष्टि से समृद्ध नही हैं। उदाहरणार्थ ब्रह्मगिरि से केवल 1 ताम्र छेनी और 2 छडें मिली हैं।

अब हम हथियारो के विश्लेषणो के आधार पर विभिन्न सस्कृतियो की विशिष्टताओ तथा सबधो का वर्णन करेंगे। शिल्प उपकरणो की उपर्युक्त सूची विभिन्न सस्कृतियो की महत्वपूर्ण विशिष्टताओ को दर्शाने के लिए ही प्रस्तुत की गयी है।

क. प्राग्हडप्पा संस्कृतियाँ

केवल मुडींगाक तथा नाल से प्राप्त हथियारो का वर्गीकरण यहाँ किया गया है। नाल से बसूले, आरियाँ, छेनियाँ और चाकू मिले। हडप्पा की तुलना में नाल की छेनियाँ अधिक अनगढ हैं। मोहनजोदडो के लबे फलको के विपरीत नाल की कुल्हाडियो के सिरे गोल या नुकीले हैं। अन्य प्रकारो का उनका बहुत सामान्य होने के कारण, तुलनात्मक दृष्टि से कोई विशेष महत्व नही है।

हत्थे के लिए छेदवाली कुल्हाडी व वसूला मेसोपोटामियाँ के उरुक काल से, हिस्सार III C और सूसा के पूर्व राजवशीय (Protodynastic) काल से प्रचलित थे। इस प्रकार की हत्थे के लिए छेदवाली कुल्हाडिया वसूला, मुडीगाक के III 6 से मिलते हैं। इन प्रमाणो को दृष्टि मे रखते हुए हडप्पा स्तर से प्राप्त ऐसे कुल्हाडी-वसूला का मिलना बेमेल नही है इसलिए उन्हें उत्तरकालीन स्थानातरण से नही जोडा जा सकता। यद्यपि लावर्ग कार्मोवस्की ने मुंडीगाक काल II से प्राप्त रीढ़दार कटार का वर्णन किया है, लेकिन कजाल, जिसने इस स्थल का उत्खनन किया, द्वारा प्रस्तुत चित्र मे वह चपटी दिखायी गयी है। मुडीगाक काल II की लहरदार सिरे वाली पिन की तुलना सैंधव नमूनो से की जा सकती है।

ख. हडप्पा संस्कृति

कुछ विशिष्ट प्रकार के उपकरण (अध्याय 3 मे वर्णित) सैंधव सभ्यता के विशेषक हैं, जैसे उस्तरे, चाकू, मुडे सिरे के चाकू, चौडी डासवाली छेनियाँ, काटीले बाणाग्र। तराजू के लिए कमानी का प्रयोग भी अपूर्व है। कई प्रकार के उस्तरे मिले हैं जिनमे से द्वि-धार वाले एक विशिष्ट प्रकार के हैं। अन्य प्रकार हैं—L आकार के काटेदार व सादे फलक वाले उस्तरे। चांहूदडो से उस्तरे के दो अन्य प्रकार, U आकार व अर्द्धचन्द्राकार के मिले हैं। चाकुओ के विभिन्न प्रकार हैं, तिकोना और मुडे सिरो के पत्तो के आकार के फलक। पत्ती के आकार, सकरे, और सीधे और मुडे धारवाले दराट के फलक दुष्प्राप्य हैं। मार्शल ने एक, और मैके ने एक अन्य सदिग्धपूर्ण नमूने का वर्णन किया है। मार्शल की दराट की बाह्य सिरे की धार तेज थी, जबकि भीतरी भाग कुंद था। बडी सख्या मे विभिन्न आकार की छेनियाँ मिली हैं। केवल मोहनजोदडो से प्राप्त 15 छेनियो का मार्शल ने वर्णन किया, जबकि मैके ने 67 का। वे आयताकार, वर्गाकार व गोलाकार प्रकार की लबी व छोटी दोनो आकार की हैं। चौडी आयताकार नोक और सकरे फलक के प्रकार हडप्पा सस्कृति की अपनी विशिष्टताएँ हैं।

भालाग्र और बाणाग्र बहुत पतले हैं। चाँहूदडो के बाणाग्र 0 02″ से 0 05″ की मोटी पत्तर के बने हैं। उन पर पीछे की ओर मुडे हुए काटे हैं। वे इतने पतले हैं कि लकडी के सहारे के बिना मुड गये होते। मैके के मतानुसार ऐसे निम्न कोटि के उपकरण सैंधव न होकर किसी अन्य विजित लोगो के रहे होगे, लेकिन इन्हे मोहनजोदडो के सभी स्तरों, हडप्पा, चाहूदडो, कालीबगन और

लोथल से मिलने के कारण हड़प्पा संस्कृति की ही एक विशिष्टता कह सकते हैं।

हड़प्पा, चाहूदडो और लोथल से बिना दाँतो की आरियाँ मिली है, जो बहुत कम हैं। एक नमूने मे दाँते वास्तविक आरो के से लगाये गये थे, जो कि रोमन काल से पूर्व अन्य कही नही मिले। लबे और छोटे दोनो प्रकार की फनक-कुल्हाडियाँ प्रयोग की जाती थी। चपटे और हत्ये के लिए, छेदवाली कुल्हाडियो के सादे प्रकार, सैंधव स्थलो से ही नहीं बल्कि अन्य सस्कृतियो से भी उपलब्ध हुए हैं।

सैंधव संस्कृति के सभी स्थलो से मत्स्य-काटे मिलते हैं। उनके सिरे पर एक छेद है और नुकीले सिरे पर एक काँटा। बिना काँटे के कुछ उपकरण भी मिले हैं। कहा जाता है कि ताम्राश्मीय स्थलो से भी ऐसे मत्स्य काँटे मिले हैं, परतु चंदोली के काँटे सदिग्धपूर्ण नमूने हैं जो कि बिना तीखे सिरे व छेद या काँटे की, मुडी हुई छडें हैं। अत उनके मत्स्य काँटे होने मे सदेह है। मेसोपोटामिया या मिस्र की अपेक्षा सैंधव नमूने अधिक बढ़िया हैं।

कोगलन के अनुसार हड़प्पा के नालिकाकार बरमा प्राचीन ससार के सबसे प्रारभिक उदाहरण हैं। मैके के अनुसार ऐसे बरमे सेलखडी के मनको के बनाने मे प्रयोग किये जाते थे। चाहे वे किसी भी कार्य के लिए प्रयुक्त होते हो, पर इससे इतना तो सिद्ध होता ही है कि उन्हें धातुकर्म मे उच्च कुशलता प्राप्त थी।

हत्थे के लिए छेदवाली कुल्हाडी-बसूला बहुत कम मिले हैं। चाहूदड़ो के झूकर काल से तथा मोहनजोदडो से कुल्हाडी-बसूला की उपलब्धि हुई हैं। मोहनजोदडो के 6′ गहराई से प्राप्त नमूनो को मैके कुषाण कालका बताते हैं। उन्हें मोहनजोदडो के उत्खनन करने पर 4′ की गहराई से पकी मिट्टी का हत्थे के लिए छेदवाली कुल्हाडी का माडल मिला। मुडीगाक के प्रमाण व मोहन-जोदडो के पकी मिट्टी के नमूने इस बात के सूचक है कि सैंधवो को हत्थे के लिए छेदवाले उपकरणो का ज्ञान था। सभवत ढालने की कठिनाइयो या रूढ़िवादिता के कारण ये प्रचलित न हो पाये हो। इतने सर्वव्यापक प्रमाणो के होते हुए इनका सम्बन्ध उत्तरकालीन आर्यों के आगमन के साथ नही जोडा जा सकता।

लोथल, मोहनजोदडो और हड़प्पा से बहुत से जानवरो, कुत्ते, हस, चिडिया, हाथी (?) और साड की लघु मूर्तियाँ मिली हैं। एक मोहनजोदडो से तथा एक लोथल से प्राप्त नृत्य करती हुई नग्न कन्या की लघु मूर्ति, शिल्प

कला की उत्कृष्ट कृतियाँ हैं। पिगट के अनुसार इन लघु मूर्तियो मे कुल्ली कन्या का रूपाकन है। इनकी ढलाई सभवत' लुप्त मोम तकनीक द्वारा हुई थी।

मोहनजोदडो के ऊपरी स्तरो से चार रीढदार तलवारें मिली हैं, जो कि सैंधव हथियारो मे अपूर्व हैं। इन तलवारो की रीढ और फलक के आधार पर या डांस पर छेद है। डास मोटे हैं। ह्वीलर के मतानुसार ये आक्रमणकारियो की तलवारें हैं। लेकिन एक छोटे कमरे मे दबी मिली तलवारों के भंडार और एक अन्य अधूरी बनी तलवार के प्रमाण इन मत के विरुद्ध पडते हैं। मोहन-जोदडो के नमूने अधिक भारी हैं, तथा रीढ़ के आकार के हैं, जबकि नवदाटोली के खडित टुकड़ो के आकार भिन्न प्रकार के हैं।

बहादराबाद ताम्र संचय सस्कृति की तलवार का मोहनजोदडो के प्रकार की तलवारो से साम्य है। बहादराबाद मे छेदो के बजाय एक काटा बना हुआ है। इसी प्रकार के नमूने सरथोली आदि अन्य स्थलो से भी मिले हैं।

अत मे लोथल से प्राप्त खडित मानवाकृति (आरेख 13) का विवेचन आवश्यक है। अग्रवाल ने विभिन्न ताम्र सचय मानवाकृतियो का बडी सख्या मे अध्ययन किया। उनके अनुसार दोआब की मानवाकृतियो के मोटे सिरे हथौडियाए हुए हैं जिसके कारण उनका सिर एक कील के सिरे की तरह लगता है, लेकिन लोथल के नमूनो के सिरे चपटे हैं। एक वास्तविक मानवाकृति मे सिरे के एकदम पास हाथो का टूटना सभव नही था। इस प्रकार का टूटना तभी सभव था जबकि हाथ लबे और सीधे होते, या हाथ इस प्रकार मुडे होते कि वे एक प्रकार का फदा या अर्धचन्द्र बनाते। अत लोथल के नमूने को मानवाकृति का नाम देना उचित नही है। उसे ही मानवाकृति कहना चाहिए जिसके सिरे कील के सिर-सा हो। केवल लोथल के प्रमाण के आधार पर हडप्पा और ताम्र सचय संस्कृतियों के बीच सबध स्थापित करना तर्कसगत नहीं होगा।

ग. अन्य ताम्राश्मीय संस्कृतियाँ

यद्यपि ताम्राश्मीय स्थलो की ताम्र उपकरणो की सूची दक्षिण के नवाश्मीय स्थलो से लम्बी है, पर वह सैंधव उपकरणो की तुलना मे महत्वहीन है। ताम्राश्मीय सस्कृति के हथियारो के कोई विशिष्ट प्रकार नही हैं। कुल्हाडियाँ चपटी हैं जो अन्य संस्कृतियो मे भी पायी जाती हैं। एक स्कधयुक्त कुल्हाडी नवदाटोली से मिली है। निवासा की त्रिकोणाकार कुल्हाडी एक विशिष्ट

प्रकार की है, जिसका सकरा सिरा टूटा हुआ है। यदि यह एक चपटी कुल्हाडी होती तो इसके धार से या बीच के भाग से टूटने की संभावना हो सकती थी, न कि इसके मोटे और सकरे सिरे से, अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि यह ऊपरी सिरे पर हत्थे से टूटा होगा या यह हल्लूर से प्राप्त प्रकार का रहा होगा।

ताम्राश्मीय स्थलो से प्राप्त तथाकथित मत्स्य काटे कील या पिन भी हो सकते हैं। सैंधव उदाहरणों के विपरीत उनमे न तो छेद है न कांटा।
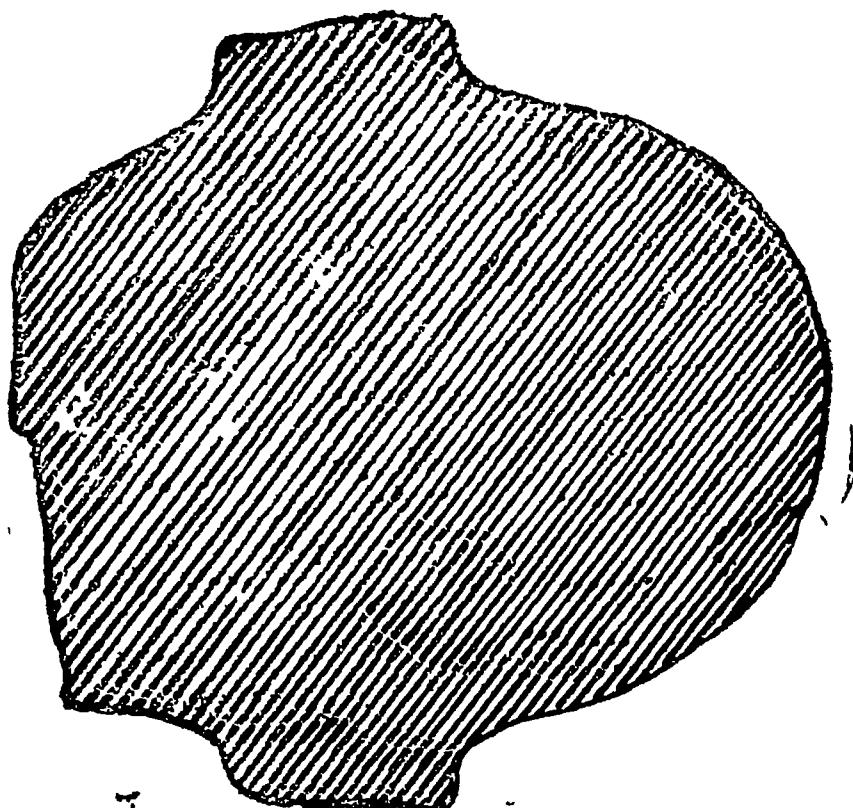
आरेख 13—लोथल से प्राप्त ताम्र-उपकरण।

चंदोली की शृंगिकाकार मूठ वाली कटार की तुलना फतेहगढ़ (उ० प्र०) में मिली इसी प्रकार की तलवार से की गयी। अग्रवाल ने इनकी विषमताओं पर प्रकाश डालते हुए बताया कि चंदोली से प्राप्त नमूना कटार का है, जबकि ताम्र संचय से तलवारें मिली हैं। फतेहगढ तलवार के 5 की तुलना मे चंदोली कटार की पूरी लंबाई का फलक से अनुपात 1 6 है। केवल फतेहपुर तलवार भारी, स्पष्ट रीढ़ वाली और ढाली हुई शृंगिकाकार मूठ वाली है, जबकि चंदोली का नमूना हलका, हलकी रीढ और छेनी तथा हथौड़े द्वारा काटी हुई उसकी मूठ है। उनकी शृंगिका बहुत छोटी है जो संभवत लकड़ी के हत्थे से डास के फिसल जाने को रोकने के लिए बनायी गयी थी। मोहनजोदडो के नमूनो की तीखी रीढ के विपरीत नवदाटोली के नमूनो की हलकी सी रीढ़ थी।

अग्रवाल ने कायथा की प्रारंभिक स्तरो से 1·5 सेंटीमीटर मोटी, और सुदर ढलाई की हुई ताम्र कुल्हाड़ियो का परीक्षण किया जो कि उनके विचार से संपूर्ण प्रागैतिहासिक काल मे शिल्पकारिता की दृष्टि से अद्वितीय व शानदार हैं। इनके अतिरिक्त इस स्थल से छेनिया और बहुत से कड़े भी मिले हैं।

ताम्राश्मीय स्थलो से प्राप्त अन्य उपकरण है : मनके, कीलें, कुरेदनी, छड़ें तार, छल्ले और पायल। सकालिया को जिला नागौर के खुर्दी नामक स्थल के एक ताम्र भडार से एक ताम्र की चपटी कुल्हाडी, एक छड कुल्हाडी, पतले मुड़े हुए फलक और नालिका वाला कटोरा मिला है। कटोरे नवदाटोली के मृद्भाडो के समतुल्य हैं। अन्य ताम्र संचय उपकरणो के समान ही ये सब अस्तरीय उपलब्धियाँ हैं। इन शिल्प उपकरणो के मुड़े हुए फलको की तुलना मोहनजोदडो के नमूनो से की जा सकती है, यद्यपि विस्तृत विवरण उपलब्ध नही हुआ है। नालीदार कटोरे परंपरागत रूप से आज तक यज्ञ के लिए प्रयोग किये जा रहे हैं, अत ऐसे संग्रहो की अति प्राचीनता स्थापित नही की जा सकती।

घ ताम्र-संचय संस्कृति

ताम्र-संचय के उपकरणो के अस्तरित होने के कारण विद्वानो द्वारा कई अटकलें लगायी जाती रही हैं। शिल्प वैज्ञानिक विश्लेषणो पर आधारित हम अपनी कुछ अटकलो को भी यहाँ प्रस्तुत करेंगे। यहाँ ताम्र संचय संस्कृति का अन्य संस्कृतियों के साथ शिल्प समानताओ तथा विषमताओ का उल्लेख करेंगे। सर्वप्रथम हमने इस वर्ग के शिल्प उपकरणो का धातु-विज्ञान, तथा स्पेक्ट्रमी विश्लेषण किया है। लेकिन किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए अभी

बडी मात्रा मे नमूनो की आवश्यकता है । पर इतना तो मानना ही ठीक पडेगा कि ताम्र-संचय समस्या का निदान शिल्प के तकनीकी अध्ययनो द्वारा ही हो सकता है न कि केवल आकृतियो की तुलना द्वारा । हमने केवल उपकरण प्रकारो के अध्ययन के बजाय अधिक बल उनके प्रयोग और तत्कालीन परिस्थितियो पर दिया है ।

समय-समय पर इस सस्कृति के अधिकांश उपकरण भडारो मे मिले हैं अत. इनके लिए ताम्र-सचय (Copper Hoards) पद प्रचलित हुआ । ताम्र सचय स्थलो का क्षेत्र उत्तर पश्चिम मे शालोजोन से लेकर पूर्व मे भागरापीर तक तथा दक्षिण मे कल्लूर (?) तक फैला हुआ है । विविध प्रकार के उपकरण मिले हैं जिनमे तलवारें, हत्थे के लिए छेदवाली कुल्हाडी और कुल्हाडी-वसूला, टेकदार कुल्हाडी (Trunnion axe), चपटी और स्कधयुक्त कुल्हाडियाँ, मत्स्य भाले (Harpoons), बाजूबद, मानवकृतियाँ, शृगिकाकार तलवारें, भालाग्र और छल्ले मुख्य हैं । अब तक लगभग एक हजार से भी अधिक उपकरण मिले हैं । केवल गुंगेरिया से ही 829 पौंड वजन के 424 ताम्र उपकरण मिले हैं । अत धातु उपकरणो की दृष्टि से हडप्पा सस्कृति और ताम्र सचय सस्कृतियो दोनो ही सपन्न हैं ।

पिगट और हाइन गेल्डेर्न ताम्र सचयो का सबध आर्यों के भारत मे आगमन के साथ जोडते हैं । लेकिन बाद मे पिगट ने मत बदला और वे इसका सबध सैधव शरणार्थियो से मानते हैं । हाइन गेल्डेर्न की तिथि केवल प्रकारो के अध्ययन पर आधारित है । समय व स्थान की दृष्टि से सार्डीनीया, ब्रिटिश आईल्स, यूनान और ट्रासकाकेसिया, तथा मिस्र तक बिखरे हुए प्रकारो की उन्होने तुलना की है और निम्न निष्कर्ष निकाले हैं ।

(i) टेकवाली कुल्हाडी लगभग 1200-1000 ई० पूर्व ट्रासकाकेसिया से ईरान होते हुई आयी, (ii) कुल्हाडी-वसूला का डेन्यूब क्षेत्र से ईरान होते हुए लगभग 1200-1000 ई० पूर्व आगमन हुआ, (iii) फोर्ट मनरो तलवार लगभग 1200-1000 ई० पूर्व पश्चिमी ईरान से आयी, और (vi) शृंगिकाकार तलवार पर वे कोबान प्रतिरूपो का लगभग 1200-1000 ई० पूर्व) अधिक प्रभाव देखते हैं ।

लाल ने हाइन गेल्डेर्न की आलोचना करते हुए कहा कि टेकवाली तलवार फोर्ट मनरो तलवार, हत्थे के लिए छेदवाली कुल्हाडी-वसूला और कुल्हाडी दोआब से कभी नही मिले (यद्यपि कुरुक्षेत्र से प्राप्त एक हत्थे के लिए छेदवाले नमूने का उल्लेख हुआ है) । कोबान प्रतिरूपो के विपरीत शृंगिकार---------

एकल टुकड़े मे ढली हुई है। अतः उनकी तुलना कोबान से नही की जा सकती। इसी प्रकार मत्स्य भाले, छड-कुल्हाडियाँ और मानवाकृतियाँ दोआब के पश्चिम मे नही मिलीं। लाल ताम्र सचयो का सदिग्ध आर्यों से पूर्व की आदि जातियो से जोडते हैं, फिर भी अपने पूर्वमत की पुष्टि के लिए हाइन गेल्डेर्न चान्हूदड़ो से प्राप्त गदा-सिर के नमूनो की समानता हिस्सार काल III से, तथा अन्य समानताओ की कामेशक की कोबान संस्कृति, ट्रांसकाकेशिया के गंदशा काराबाग सस्कृति, लूरिस्तान सस्कृति और स्यात्क A और B से करते हैं। उनके मतानुसार आर्यों ने पश्चिम से 1200 से 1000 के बीच आक्रमण कर सिंघ सभ्यता का अन्त किया। ताम्र सचय का सार्डीनिया और मिस्र जैसे दूरस्थ प्रदेशो से सादृश्य स्थापित करने की अपेक्षा, गुप्ता तथा लाल का मत है कि ये इसी भूमि मे जन्मी सस्कृति हैं। यह मत अधिक तर्कसंगत लगता है। बिहार के ताम्र अयस्क भडार व दक्षिणी जगलों से भरे पठार, ताम्र उत्पादन ही नही प्रत्युत धातुकर्म की स्वतत्र उत्पत्ति के लिए भी बहुत अनुकूल थे। दोआब के ताम्र सचय के तीन विशिष्ट प्रकार मत्स्य-भाला, मानवाकृति और शृगिकाकार तलवारें (आरेख 14) हैं। इनको ताम्र सचय के मुख्य विशेषक निर्धारित करने की कसौटी निम्न है। पहला, तीनो ही हथियार साथ पाये जाते हैं अतः ताम्र सचय के अंतर्गत आने चाहिए। उदाहरणार्थ, बिसौली मे मानवाकृति व मत्स्य भाले, बिठूर मे मत्स्य भाले और शृंगिकाकार तलवार, तथा फतेहगढ़ से शृंगिकाकार तलवार और मानवाकृति साथ-साथ मिले हैं। द्वितीय, प्रकार-फलस्वरूप की दृष्टि से ये विशिष्ट प्रकार के हथियार हैं जो कि केवल दोआब से ही मिले हैं। ये दोआब मे 78° से 84° पूर्वीय देशांतर और 24° उत्तरी अक्षाश रेखाओ के मध्य मिले हैं। यह एक घना मानसूनी जगलो व नदियो का क्षेत्र था जहाँ कि पर्याप्त जानवर और मछली मिल सकती थी व सीमित मात्रा मे खेती भी हो सकती थी। मानवाकृति, तलवार तथा मत्स्य भाला वास्तव मे शिकारी जीवन के ही सूचक हैं। प्राप्त लगभग एक सहस्र उपकरणो के बीच एकभी पात्र का न मिलना, उनके अर्द्धयायावर जीवन का द्योतक है।

दक्षिणी-पूर्वी प्रदेश पठारी क्षेत्र के 24° उत्तरी अक्षांश के दक्षिण से ये विशिष्ट प्रकार उपलब्ध नही हुए हैं। इस क्षेत्र से केवल चपटी और स्कंधयुक्त कुल्हाडियो, छड-कुल्हाडियाँ और दोहरी धार वाली कुल्हाडियाँ मिली हैं। गुंगेरिया का महत्वपूर्ण स्थल इसी पठार पर पड़ता है। सिंहभूमि ताम्र (मौसा बिहू, राखा, मसोबनी आदि खानें) के निकट होने के कारण प्रारंभिक कबीलो
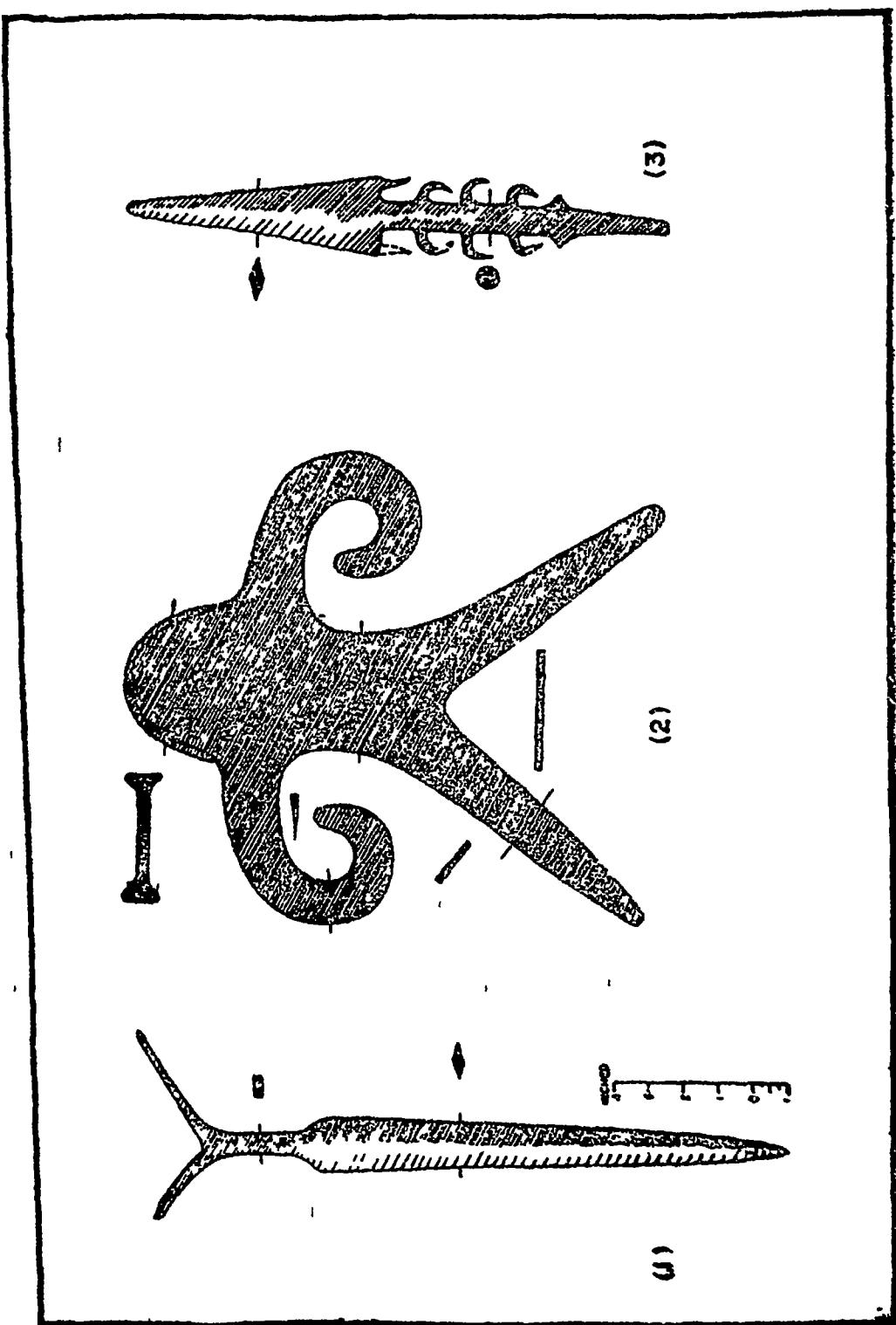
आरेख 14—ताम्र संचय सस्कृति के उपकरण प्रकार

का ध्यान इस ओर गया होगा। ताम्र अयस्क सभी खूब रंगीन होते हैं। कैल्कोपाइराइट का रंग सुनहरा, मैलाकाईट हरा और अज्युराइट नीले रंग का है। उत्सुकता, अचानक खोज व प्रयोगो के फलस्वरूप यह संभव है कि इस क्षेत्र मे धातुकर्म का विकास स्वतंत्र रूप से हुआ हो। जंगल वृक्षो से भरे थे जिनसे प्रगलन भट्टियो के लिए पर्याप्त ईंधन उपलब्ध था।

इन कबीलो के वे लोग जो धातु शिल्प मे सिद्धहस्त हो चुके थे आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र हो गये। फलत शायद वे कबीले के बंधनो को तोडकर यायावर लोहार बन गये। इन्ही कबीलो के शिल्पकर्मियो ने शायद दोआब के अनुकूल विशिष्ट प्रकार के उपकरण बनाये। इन धातुकर्मियों को दोआब में फैलने तथा उस पारिस्थितिकी के अनुकूल नये प्रकार के हथियारो को बनाने मे कितना समय लगा होगा, इसका केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। अभी तक यही कहा जा सकता है कि ताम्र संचय संस्कृति चित्रित धूसर मृद्भाड संस्कृति (लगभग 800 ई० पूर्व) से पूर्ववर्ती थी। ताम्र संचय संस्कृति का प्रारंभ निर्धारण करने के लिए अभी हमे अधिक उत्खननो की प्रतीक्षा करनी पडेगी। सेपाई (उ० प्र०) से कुछ उपकरण उत्खनन से मिले हैं, परंतु, वहाँ से कोई तिथि निर्धारण योग्य वस्तु नही मिली।

पठारी क्षेत्र के उपकरण चपटे और स्कंधयुक्त हैं जो कि जंगली पठार की आवश्यकतानुकूल थे। पटना संग्रहालय मे रखे इस क्षेत्र के उपकरणो का अध्ययन करने के पश्चात् अग्रवाल इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वे संभवतः खुले साँचे के प्रयोग के फलस्वरूप ही एक ओर चपटे व दूसरी ओर थोडे उन्नतोदर थे। परंतु कुछ गुंगेरिया प्रकार की चपटी कुल्हाडियाँ दोहरे साँचे के प्रयोग का आभास देती हैं। मत्स्य-भाले या बर्छी की जटिल ढलाई बंद साँचे मे ही हो सकती थी। यह प्रकार संभवत. यायावर लोहारो ने चट्टानों पर चित्रित लकडी के नमूनो की नकल करके बनाया था। राजपुर परसू के अलावा छड़-कुल्हाडी केवल पठारी क्षेत्र से ही मिली हैं।

प्रयोगात्मक व पारिस्थितिकी दृष्टि से अब हम महत्वपूर्ण उपकरणो के प्रकारो का वर्णन करेंगे।

अग्रवाल के अनुसार पटना संग्रहालय मे हामी की छड-कुल्हाडी आमतौर से एक ओर चपटी सी और ऊपर की ओर उन्नतोदर थी। उनकी धार ऊपरी किनारो को छाँट कर बनायी गयी है। वे काफी लंबी (2′ तक) और भारी हैं। हामी तथा गुंगेरिया से ऐसे अनेक नमूने मिले हैं। अग्रवाल के मतानुसार ये मोटे व लंबे होने के कारण सब्बल की तरह खुदाई के लिए प्रयुक्त होते होंगे।

इन पर लगे हुए निशानों से स्पष्ट होता है कि इनका उपयोग किसी कठोर तल पर किया जाता था। गुंगेरिया से प्राप्त एक छड़ कुल्हाड़ी की धार पर आरी की तरह क्षति बने थे।

प्रस्तर तथा ताम्र छड़-कुल्हाड़ी में समानता होने के कारण, लाल का मत है कि ताम्र छड़-कुल्हाड़ियाँ उनके प्रस्तर प्रतिरूपों की नकल हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि नौकाभजो, दान अमुरिया, मसान परगने, जमपुर, ठाकुरानी आदि में प्रस्तर उपकरण तो मिले हैं लेकिन ताम्र संचय उपकरण नहीं मिले। दानी के अनुसार पूर्वी प्रस्तर उपकरण, दक्षिणी पूर्वी एशिया के नमूनों के सदृश हैं। दक्षिणी पूर्वी एशियाई प्रस्तर उपकरणों के विस्तृत अध्ययन करने के पश्चात् वे इस निष्कर्ष में पहुँचे कि उनमें से बहुत से प्रकार जैसे स्कंधयुक्त प्रस्तर कुल्हाड़े और छड़-कुल्हाड़ी मलाया आदि से प्राप्त उपकरणों की बाद में नकल हैं। इससे यही स्पष्ट होता है कि धातु छड़ कुल्हाड़े भारत में प्राप्त प्रस्तर प्रतिरूपों से पूर्व ही प्रचलित थे।

लाल के मतानुसार कड़े भी ताम्र संचय संस्कृति की विशिष्टता है। लेकिन इन तथाकथित कड़ों को, भारी कंगनों से किस कसौटी पर अलग किया जाय यह निर्धारित करना कठिन प्रतीत होता है। कई स्थलों में प्राप्त संचय कड़े मोटे (लगभग 0 3″) तारों के सिरों को मिलाकर बनाये गये थे। जोर्वे से भी 12 मि० मि० मोटे तार के कड़े मिले हैं। देशपांडे के अनुसार उत्तर-कालीन सैंधव स्थल बड़गांव (जिला सहारनपुर) से एक छल्ला मिला है। पतले कड़े सर्वव्यापी हैं। अत उन्हें ताम्र-संचय संस्कृति के अंतर्गत वर्गीकृत करने की कसौटी उनका एक मानक तौल होना ही हो सकती है, जो कि यायावर लोहारों के लिए धातु तौल को साथ-साथ ले जाने के लिए सुविधा-जनक इकाई हो सकते थे। विभिन्न उपकरणों के बनाने के लिए कितने ऐसे कड़ों के भार के बराबर धातु लगेगा। यह विनिमय का एक आसान तरीका हो सकता था लेकिन जब तक उनको तोलकर यह संबंध स्थापित न किया जाय, यह एक अटकल ही रहेगी। इस दृष्टि से पोडी से प्राप्त 47 कड़े या छल्ले, इस अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण साबित हो सकते हैं।

शृंगिकाकार तलवार दो शृंगिकाओं की तरह हत्थे के बने होने के कारण ही शृंगिकाकार तलवार कहलाती है। यह प्रकार जिला रायचूर के कल्लूर के दूरस्थ स्थल को छोड़, केवल दोआब से ही मिलता है। ताम्राश्मीय उपकरणों के उपशीर्षक के अंतर्गत हम शृंगिकाकार तलवार और शृंगिकाकार कटार की विशेषताओं और भिन्नताओं का उल्लेख पहले कर चुके हैं। शृंगिकाकार

तलवार की असुविधाजनक द्विशाखीय मूठ के कारण, (प्रत्येक शाखा 4" लबी है ।) उनके युद्ध के लिए प्रयोग किये जाने मे सदेह है । अग्रवाल के मतानुसार ये बडे शिकार को मारने के लिए प्रयुक्त की जाती थीं । उनका अनुमान है कि शृ गिकाकार मूठ को भारी कच्ची डालो मे फसाकर, फलक को सीधा खड़ा कर, गढे मे रख दिया जाता था । गढे को पत्तियो से ढक कर शिकार को उस ओर भगाया जाता था । फलक पर भारी जानवर के गिरने पर, वह बिना मुडे उसके शरीर से बिंध जाता होगा ।

पुरातात्विक साहित्य मे मानवाकृति इस उपकरण को, साकेतिक रूप मे, उसके मानवाकार होने के कारण कहते हैं । इसका प्रयोग स्पष्ट न होने के कारण मानवाकृति सा लगने के कारण यह समझा जाता है कि यह किसी धार्मिक अनुष्ठान के लिए प्रयुक्त होती होगी । अनेको सग्रहीत मानवाकृतियो के अध्ययन के बाद उनकी तीन विशेषताएँ बतायी गयी हैं—(i) हथौडियाया हुआ और कुद सिरा, (ii) बाहर की तरफ तीखी और मुडी बाहें, तथा (iii) सादे कुद पाँव । एकसार ताम्र पत्तर को काट कर तथा पीट कर ये बनाये गये हैं । सिर की अपेक्षा बाँहें पीट कर पतली बनायी गयी, जबकि इसके सिर को पीट कर उसे अधिक मोटा बनाया गया । अग्रवाल ने इसका एक माडल बना कर इसे अस्त्र की तरह फेंकने पर पाया कि यह घूमता हुआ जाता है । उनके अनुसार यह इस प्रकार का बना है कि यदि उडती हुई चिडिया को गिराना हो तो यह तीन प्रकार से काम करता है—तीखी पैनी बाँहें यदि चिडिया के लगें तो उसे काटेंगी, मोटा सिरा लगने पर, वह उसे अचेत कर देगा, और यदि चिडिया घूमती हुई मुडी बाँहो में फँस जाती है तो वह इस अस्त्र के साथ ही नीचे आ गिरेगी । उनका कथन है कि इसका मोटा सिरा इसके गुरुत्व-केन्द्र को ऐसे सतुलित करता है कि यह अस्त्र संभवत बूमरेंग की तरह कार्य करता था । इस सदर्भ मे बूमरेंग के कार्य के विषय मे फैलिक्स के विचार उद्धरित करना उचित होगा । उसके अनुसार केवल आकार के कारण बूमरेंग के लौटने के विषय मे सोचना गलत होगा । मुख्य बात बाहो की बनावट है जो कि एक ओर दूसरे से अधिक उन्नतोदर हैं । ऐसी ही बनावट मानवाकृति की बाहो की भी है । चाहे किसी भी प्रकार यह अस्त्र प्रयोग किया जाता हो पर इसके अस्त्र के रूप मे प्रयोग किये जाने के विषय मे कोई तर्कपूर्ण शका नही की जा सकती ।

लोथल व दोआब के नमूनो की भिन्नताओ के विषय मे पहले ही लिखा जा चुका है । मत्स्य भाले, रीढदार भालाग्र की तरह है जिसमे मुडे काँटे लगे हो ।

इनकी मूठ पर प्राय छेद होता है । ये दो प्रकार के हैं । पहला प्रकार है—मोटी चादर से काटकर हथौड़िया कर बनाये हुए, द्वितीय दोहरे साँचे मे ढाले हुए । दूसरे की अपेक्षा प्रथम नमूने अधिक आदिम व भद्दे लगते हैं । स्तरीय प्रमाण ही यह निश्चित कर सकते है कि काटे हुए नमूने ढाले हुए प्रतिरूपो के पूर्वगामी हैं या नही । द्वितीय प्रकार के नमूने शिल्प कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं और इस बात के सूचक हैं कि ताम्र सग्रह लोहारो ने शुद्ध ताम्र की बन्द ढलाई की तकनीक सीख ली थी । यह बडे शिकार की मार के लिए भालाग्र की तरह प्रयोग किया जा सकता था, जैसा कि कोकबर्न ने भी दर्शाया है और बडी मछलियो को मारने के लिए काँटेदार बर्छी के रूप मे भी ।

उपर्युक्त तीनो ही शिल्प उपकरण, मत्स्य भाला, शृगिकाकार तलवार और मानवाकृति दोआब के विशिष्ट प्रकार हैं जो किसी भी अन्य सस्कृति मे उपलब्ध नही है ।

लाल के अनुसार स्कधयुक्त कुल्हाडियाँ हडप्पा सस्कृति मे प्राप्त नही हुई । प्राप्त प्रमाणो के अनुसार अग्रवाल का मत है कि चपटे व स्कधयुक्त प्रकारो मे कोई गुणात्मक अतर नही है । कुछ सैंधव उदाहरण वस्तुत स्कधयुक्त कहे जा सकते हैं । अग्रवाल के मतानुसार चपटी और स्कधयुक्त कुल्हाडियाँ बहुत सादे प्रकार की होने के कारण सर्वव्यापी हैं । अत ये किसी एक सस्कृति की विशिष्टता नही कही जा सकती । द्विमुखी कुल्हाडियाँ केवल उडीसा मे भागरापीर से ही मिली हैं । ये एक अडाकार चादर से गोलाकार टुकडे काट कर बनायी जाती थीं । इस कारण इनका विशिष्ट आकार है । तीन नमूनो का माप $18\frac{1}{2}'' \times 15\frac{3}{4}''$, $10'' \times 8\frac{1}{2}''$ और $10\frac{1}{2}'' \times 7''$ है । इनकी मोटाई $1/2''$ से $1/8''$ तक है । इनमें से दो कुल्हाडियो की दोनो धारें पैनी हैं, जबकि एक की केवल एक धार । इतने बडे आकार के, इतने पतले हथियार को कुल्हाडे की भाँति प्रयोग करने पर वह मुड जाता । अत इन्हें कुल्हाडियाँ कहना गलत ही होगा । वे सभवत भूमि अनुदान करने के पट्टो की तरह प्रयुक्त हुए होगे ।

कुछ विद्वानो के अनुसार लोथल की आयताकार कुल्हाडी (?), हडप्पा की बिना धार की द्विमुखी कुल्हाडी (?), हल्लूर के त्रिकोण फलक वाली कुल्हाडी, ताम्र सचयो की द्विमुखी कुल्हाडियो के प्रकार से सबधित है । केवल आकृति की दृष्टि से भी ये सब अपने मे विशिष्ट प्रकार हैं, जिनकी एक दूसरे से तुलना नहीं की जा सकती । यदि इन विभिन्न हथियारो के विशिष्ट प्रयोग का ख्याल न करें और केवल प्रकारात्मक दृष्टि से ही देखें तो ये ताम्र सचय, सैंधव और नवाश्मीय सस्कृतियो को एकजुट कर देती हैं, जो अतार्किक है । वस्तुत

भागरापीर की द्विमुखी कुल्हाडियाँ ताम्र सचय के साथ नहीं मिली, इन्हें ताम्र-सचय प्रकारो मे नही रखा जाना चाहिए ।

कांटेदार तलवार (Hooked Sword) फतेहगढ़, नियोरी सर्थोली, और बहादराबाद से मिली हैं । यह प्रकार दोआब के उपर्युक्त तीन विशिष्ट उपकरणो के साथ पाया जाता है । मोहनजोदडो से बिना काटे की रीढ़दार चार तलवारें मिली हैं, जिनकी जड अथवा फलक पर छेद हैं । नवदाटोली भी खडित रीढ़दार फलक का वर्णन पहले कर चुके हैं । ताम्र सचय की तलवार या भाले की जड़ के पास काटा है । यह काटा तलवार के साथ ढाल कर नही बनाया गया बल्कि इसकी डाल को छेनी से काटकर बनाया गया था । नवदाटोली के खडित फलक की चपटी रीढ़ के विपरीत इसकी रीढ अधिक ऊँची है । यह सामान्य प्रकार का हथियार है जो घोपने के काम आता होगा, अत. इसका अन्य सस्कृतियो से सबध स्थापित करने के हेतु इसका कोई तुलनात्मक महत्व नही है ।

परशु का अब तक केवल एक ही उदाहरण सारथोली के मत्स्य भालो के साथ मिला है । बहादराबाद से प्राप्त चपटे, पतले और लबे फलक भी उल्लेखनीय हैं । अग्रवाल के अनुसार उनकी केवल एक ओर की धार और सिरा ही पैने हैं । शायद वेदराट के रूप मे प्रयोग होते थे ।

ड. साराश

उपर्युक्त विवेचना मे हमने किन्ही इक्के-दुक्के प्रकारो को महत्व न देकर केवल विशिष्ट प्रकारो को ही ताम्र सचय सस्कृति का विशेषक माना है । हमने उनके प्रयोग पर अधिक बल दिया है । दोआब क्षेत्र के विशिष्ट हथियार शृगिकाकार तलवार, मत्स्य, भाले और मानवाकृति, यायावर शिकारी जीवन के अनुकूल हैं । समस्त ताम्र सचयो से अभी तक कोई भी पात्र नही मिला । दक्षिण क्षेत्र की विशिष्टता छड़-कुल्हाड़ी हैं । विविध प्रकार की कुल्हाडियाँ सभी स्थलो से मिली हैं । ताम्र-सचय स्थलो से पर्याप्त मात्रा मे धातु मिला है जो कि सैधव स्थलो की तुलना कर सकता है । मत्स्य भाला शुद्ध ताम्र की बन्द ढलाई का उत्कृष्ट नमूना है ।

ताम्र सचय व अन्य सस्कृतियो के मध्य धातु उपकरणो के बाह्य रूप के आधार पर सबध स्थापित करने के प्रयास तर्कपूर्ण नही लगते । ताम्र सचय हमारे देश के पुरैतिहासिक काल की एक अपूर्व व सभवत स्वतंत्र सस्कृति है । चित्रित धूसर मृद्भाड सस्कृति के लोगो द्वारा लौह उपकरणो के उपयोग से दोआब के जगलो के साफ होने से पूर्व, समवत यह दोआब के जटिल व घने

जंगलों की आदि जातियों की संस्कृति थी। छोटा नागपुर का पठार ताम्र अयस्कों से भरपूर व जंगलों से आच्छादित था। अतः यहाँ स्वतंत्र ढंग से इसका उद्भव दो सहस्र ई० पूर्व भी संभव था। घने जंगलों की पारिस्थितिकीय रुकावटों के कारण ही दोआब की यह संस्कृति अन्य पश्चिमी संस्कृतियों के संपर्क में शायद नहीं आ पायी।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि नवाश्मीय काल में पूर्वी भारतवर्ष का दक्षिणी पूर्वी एशिया से संपर्क था। स्याम से नवीन अनुसंधानों से ज्ञात हुआ कि नोननोकथा स्थल में ताम्र तकनीक का प्रारंभ, कार्बन तिथि के अनुसार, लगभग 2300 ई० पूर्व हुआ था। उन्नीसवें स्तर से प्राप्त ताम्र कुल्हाड़ियों और टोंटी की कार्बन तिथि TF-651, 2325 ±200 ई० पू० व GaK 956, 2290 ±90 ई० पूर्व है। इससे प्रतीत होता है कि संभवतः ताम्र संचय संस्कृति का प्रेरणा केन्द्र दक्षिण-पूर्वी एशिया रहा हो। लेकिन वर्तमान अपर्याप्त अनुसंधानों के आधार पर यह निश्चित नहीं किया जा सकता कि ताम्र संचय संस्कृति का प्रेरणा स्रोत दक्षिण-पूर्वी एशिया था या उसका उद्भव स्वतंत्र रूप से हुआ।

यद्यपि ताम्र संचयों के साथ कोई भी मृद्भांड नहीं मिले, तो भी गेरुए भांडों का संबंध इस संस्कृति से जोड़ा जाता है यद्यपि गेरुए भांडों की परिभाषा के विषय में भी विद्वानों में मतभेद है। शर्मा ने गेरुए भांडों का संबंध परवर्ती सैंधव व ताम्र संचय से भी जोड़ा है। देशपांडे के मतानुसार हड़प्पा के नमूने, बड़गाँव के गेरुए भांडों के सदृश हैं। देशपांडे ने बड़गाँव में कब्रिस्तान H का भी प्रभाव पाया है। गुप्ता के मतानुसार गेरुए भांडों का स्वतंत्र अस्तित्व है जिसका सैंधव संस्कृति से संबंध नहीं है। स्थानीय कबीलों द्वारा ताम्र संचय संस्कृति का पृथक् व स्वतंत्र उद्भव स्थापित करने का हमने ऊपर प्रयत्न किया। लाल और गुप्ता के अनुसार ये कबीले मुंडा लोगों के हो सकते हैं। ताम्र संचय मुंडा जाति के हो सकते हैं जो कि बिहार से गढ़वाल तक फैले और फिर वापस हो गये। पहाड़ी बोली-समूहों में मुंडा शब्दों की उपस्थिति और हिमालय क्षेत्र की आबादी में डोम और कोल्टा लोगों में प्रोटो ओस्ट्रोलाइड जातियों के लक्षण उक्त विचार को पुष्ट करते हैं। ग्रियर्सन और रिसले ने भी इस सिद्धान्त को माना है। अग्रवाल के अनुसार कुमाऊँ में आज भी डोम ही लोहार का काम करते हैं। यह उल्लेखनीय है कि पूर्वी ओस्ट्रेलेनाशियन कबीले, जो मोनखमेरों के पूर्वज थे व मुंडा भाषाओं से भी संबंधित थे, स्वतंत्र रूप से ताम्र-युग में पहुँच गये। यह समझा जाता है कि नवाश्मीय काल में उत्तर पूर्वी

भारत, दक्षिणी पूर्वीय एशिया का अभिन्न अग था। जैसा कि पहले ही बताया गया है कि स्याम मे धातु युग का प्रारभ पहले होने के कारण, धातु शिल्प का प्रसार ताम्र-सचय सस्कृति मे दक्षिण पूर्वीय एशिया मे होने की सभावना बढ जाती है।

च. निष्कर्ष

प्राग्हडप्पा संस्कृतिया धातु की दृष्टि से बहुत हीन हैं। ताम्र के प्रयोग के प्रमाण इतने थोडे मिले हैं कि यह कहा जा सकता है कि उन्हें या तो स्थानीय अयस्क खानो का पता न था या प्राग्हडप्पा सस्कृतियो का समाज पूरे समय धातुकर्म करने वाले लोहारो का निर्वाह नही कर सकता था। धातु-उपकरणो के आधार पर विभिन्न सह सबध स्थापित करने के लिए पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध नही हैं।

इसके विपरीत, सैंधव स्थलो मे हम एकाएक धातुकर्म का व्यापन देखते हैं। विविध प्रकार के धातु पात्रो से ज्ञात होता है कि उन्हें धसाने, उभाडने, जोडने आदि की तकनीको का ज्ञान था। ताम्र-संचय व ताम्राश्मीय स्थलो से कोई भी धातु पात्र नही मिले हैं। सैंधव व ताम्राश्मीय शिल्प उपकरणो से पता चलता है कि उनमे तापानुशीतन व धातु की ठडी ठुकाई की तकनीक क्यो प्रयुक्त होती थी। तापानुशीतन सभवत ताम्र सचय सस्कृति मे प्रचलित न था। सैंधव सस्कृति मे लुप्त मोम की ढलाई की तकनीक भी प्रयुक्त हुई है, वैसे खुले खांचो का प्रयोग सामान्य था। ताम्र-सचय के मत्स्य कांटे और गुगेरिया की कुल्हाडियो से बंद सांचो मे ढलाई का आभास होता है। शुद्ध ताम्र की ढलाई के लिए बद साँचो का प्रयोग एक कठिन तकनीक है। सभवत टिन की कमी तथा तथा धातु मिश्रण की कठिनाइयो के कारण ताम्र-संचय शुद्ध ताम्र के हैं। ताम्र-संचय तथा ताम्राश्मीय सस्कृतियो की अपेक्षा धातु की गढ़ाई की तकनीकें हडप्पा सस्कृति मे कही अधिक उन्नत हैं। हडप्पा तथा ताम्राश्मीय दोनो ही सस्कृतियो मे धातु मिश्रण का प्रयोग किया गया, जबकि ताम्र सचय से अभी तक कांस्य के निश्चित प्रमाण नही मिले हैं।

धातु निर्मित उपकरणो के विशिष्ट सैंधव प्रकार हैं, उस्तरे, बाणाग्र, मत्स्य काटे, मुड़े हुए फलक सभवत. सर्वप्रथम आरी व नालीवाला बरमा उन्होंने ही तैयार किया। ताम्र-सचय के विशिष्ट प्रकार हैं, मानवाकृति, शृगिकाकार तलवार और मत्स्य भाले। ताम्राश्मीय सस्कृति के प्रकार सामान्य हैं और वे अन्य सस्कृतियो मे भी मिलते हैं। इनकी अपनी कोई विशिष्टता नही है।

सैंधव, ताम्राश्मीय व ताम्र सचय संस्कृतियों को उपर्युक्त विवेचन के आधार पर स्वतंत्र समूहों मे ही रखा जा सकता है। चंदौली की शृंगिकाकार कटार व लोथल की मानवाकृति के तथाकथित सादृश्य की तकनीकी दृष्टि से कोई समानता नही है।

ताम्राश्मीय संस्कृतियों मे बनास संस्कृति की विशिष्टता इसमे लघु-अश्मों का अभाव और धातु-प्रगलन का ज्ञान है। मालवा संस्कृति की विशेषता लघु-अश्मो का उपयोग और जोर्वे की प्रस्तर कुल्हाड़ियाँ है।

धातु की बहुलता की दृष्टि से सैंधव सभ्यता के स्थल सबसे आगे हैं, तत्पश्चात् ताम्र सचय और अंत में ताम्राश्मीय स्थल आते हैं। यद्यपि ताम्राश्मीय संस्कृति उपर्युक्त दोनों संस्कृतियो से धातु की दृष्टि से बहुत पिछड़ी है, पर दक्षिण की नवाश्मीय संस्कृतियो से यही आगे है। स्थान, काल, प्रकारात्मक वैभिन्य व धातुकर्म की दृष्टि से इन संस्कृतियो मे कोई विशेष समानता नहीं है। संभवत सैंधव के पश्चात् ताम्राश्मीय और फिर ताम्र सचय संस्कृतिया विकसित हुईं। इन संस्कृतियो का भौगोलिक क्षेत्र भी अलग-अलग है और परिस्थितियां भी।

सैंधव की धातु संपन्नता का मुख्य कारण अतिरिक्त कृषि उत्पादन तथा स्थानीय खानो की खोज थी। किसी भी समाज मे अतिरिक्त उत्पादन के बिना धातुकर्मियो का जन्म संभव नहीं। सैंधव स्थलो से प्राप्त बड़ी संख्या मे उपलब्ध संकरी कुल्हाड़ियाँ और छेनियाँ कुदाल की भाँति प्रयोग की जा सकती थी। चारो ओर से घिसे और चिकने बहुत से चपटे फलक संभवत लकड़ी पर लगाकर कुदाल की तरह प्रयोग किये जाते थे। अतिरिक्त कृषि उत्पादन से समृद्ध अर्थव्यवस्था, धातुकर्म का ज्ञान, धातु स्रोतो की बहुलता तथा अनुकूल पारिस्थितिकी के फलस्वरूप ही सिंध की घाटी मे सैंधव नागरीकरण का इतनी तेजी से विकास हुआ।

ताम्र-सचय लोगो को भी धातुकर्म का ज्ञान था तथा धातु की बहुलता भी थी। इनकी अन्य संस्कृतियो से पृथकता तथा विशिष्टता इनके धातुकर्म के स्वतंत्र विकास की सूचक है। यद्यपि जगलो से भरा पठार व धातु की विद्यमानता धातुकर्म के अनुकूल थी, पर यहाँ की पारिस्थितिकी नागरीकरण में सहायक न हो सकी। इनके हथियार, शृंगिकाकार तलवार, मानवाकृति व मत्स्य भाले मानसूनी घने जगलो व नदियो में शिकार व यायावर जीवन के अनुकूल ही थे। उनके धातुकर्म से यह बात ज्ञात होती है कि उनके समाज मे यह कार्य घुमक्कड़ लोहारों द्वारा ही, जो कि अपने कबीले के बंधनो को

तोड़ कर मुक्त हो गये थे, सपन्न किया जाता था। धातु की बहुलता के होते हुए भी एक भी पात्र का न मिलना उनके यायावर जीवन का ही द्योतक है। उनके स्थलो से आबादी के टीलो का न मिलना भी इस मत की पुष्टि करता है। दोआब का उपनिवेशीकरण कालान्तर लौह तकनीक के ज्ञान तथा प्रचुर मात्रा में लोहे की प्राप्ति द्वारा ही सभव हुआ। ताम्र की अपेक्षा लोहे की महत्ता उसकी कठोरता न होकर उसकी प्रचुरता में है। ताम्राश्मीय सस्कृतियो का धातुकर्मी विकास, सभवत पारिस्थितिकी के प्रभाव और अयस्को की न्यूनता के कारण न हो सका, सँकरी गादयुक्त जलोढ पट्टियो से अतिरिक्त उत्पादन इतना नहीं हो सकता था कि वे धातु-कर्मियो व अन्य कारीगरों का निर्वाह कर सकते, न नागरीकरण के लिए यह पर्याप्त ही था।

अध्याय 6 सदर्भिका

इस अध्याय विषयक मुख्य ग्रन्थ

D. P. Agrawal	Copper Bronze Age in India, 1971 (Delhi)
J R Caldwell and S. M. Shahamirzadi	Tal-i-Iblis, 1966 (Spring field)
J. M Casal	· Fouilles de Mundigak, 1961 (Paris).
V. G Childe	New Light on the Most Ancient East, 1957 (New York).
G Clark and S. Piggott.	Prehistoric Societies, *1965 (London)*.
H H. Coghlan	History of Technology, Vol. 1, 1954 (Oxford)
E W Ehrich	Chronologies in World Archaeology, 1965 (Chicago).
G. Daniel	The Idea of Prehistory, 1964 (Harmondsworth).
V N Misra and M. S. Mate.	: Indian Prehistory 1964, 1965 (Poona)
E. J. H. Mackay	· Further Excavation at Mohenjodaro, Vol 1 & 2, 1937-38 (Delhi).
J Marshall	Mohenjodaro and the Indus Civilisation, 1921 (Kandu)

Sanahullah Khan : In Mohenjodaro and the Indus Civilisation, Led by J. Marshall 1931 (London).

M. L. Sethi : Mineral Resources of Rajasthan, 1956 (Jaipur)

L Aitchison · A History of Metals, Vol 1, 1960 (London).

मुख्य लेख

H. C Bharadwaj : Bharati, Bull. of the Col. of India, Vol 9, at. 2, p 57, 1965-66.

Lamberg-Karlovsky : American Anthropologist, Vol 69, p. 145, 1967.

D. P. Agrawal and Statira Guzder. : Paper presented at 28th I. O C Canberra, January 1971

E. Khan Pakistan Archaeology, 1964-65

Reports in : British Assoc. for the Advance of Sci Report from 1928 to 1938

J. A. Dunn : Bull of the Gel Survey of India, No 23, 1965 (Delhi)

G G. Majumdar and S N Rajaguru · Bull. of the Deccan Coll Res. Inst., Vol. 23 p-31, 1962-63.

S. P. Gupta · The Jour. of the Bihar Res Soc, Vol. 4, p-147, 1963.

R. Heine-Geldern : Jour of Ind. Soc. of Orient Art, No 4, p-87, 1936

B B Lal : Ancient India, No 7, p-20, 1951.

B B. Lal · Antiquity, Vol 46, p-282-287, 1972.

R Heine-Geldern · Man, Vol. 156, p-151, 1956

V. A Smith : Indian Antiquary, Vol 34, p 229, 1905

M N Deshpande : Indian Prehistory. 1964, (eds.) V. N. Misra and M. S Mate 1965 (Poona)

S P Gupta : —do—

अध्याय 7

उपसंहार

पिछले अध्यायो मे हमने विभिन्न ताम्राश्मीय व लौहकालिक संस्कृतियो की पुरातात्त्विक सामग्री, पारिस्थितिकी, तकनीकी स्तर और कालानुक्रम का अध्ययन किया । अब तक केवल आधार सामग्री को प्रस्तुत किया गया था, अब हम इन बहुमुखी अध्ययनो के आधार पर एकत्र हुई सामग्री का पुरैतिहासिक पुरातत्व के पुन निर्माण के लिए प्रयोग करेंगे ।

I प्राग्हड़प्पा और हड़प्पा काल

हमने देखा कि भारत-पाक उपमहाद्वीप के उत्तर-पश्चिम में, पाक-ईरान सीमा के क्षेत्र मे, किस प्रकार वहाँ के शुष्क पठारो के बीच छोटे-छोटे मरुद्यानो ने सास्कृतिक वैभिन्य को जन्म दिया । इस प्रकार का वातावरण अलगाव को बढ़ावा देता है । शायद यही कारण है कि हम इस क्षेत्र मे इतने प्रकार की संस्कृतियाँ पाते हैं । अफगानिस्तान मे हमने मुडीगाक का सांस्कृतिक अनुक्रम देखा । इसमे काल I हस्तनिर्मित मृद्भांडो से शुरू होता है और काल IV में पहुँच कर नागरीकरण का विकास दिखलाता है । हमने यह भी देखा कि बहुरगी अलकरण, उदाहरणार्थ नाल भाड, बलूचिस्तान के उच्च प्रदेश मे सीमित था । दूसरी ओर द्विरगी अलकरण, उदाहरणार्थ आम्री, गिरिपाद और मैदानी क्षेत्रो मे सीमित था । इन दो शाखाओ का विकास दो स्वतत्र परपराओ के रूप में हुआ । हड़प्पा सस्कृति की जन्मदात्री, एक प्रकार से यह द्विरगी भाडो की प्रथा ही रही । बलूचिस्तान मे हमने नाल, किलीगुल मोहम्मद दब सदात, बामपुर, पिराक, राना घुडई आदि का सास्कृतिक विकास देखा । सिंध मे आम्री और कोटदीजी और राजस्थान में कालीबगन I की प्राग्हड़प्पा सस्कृतियो का अध्ययन भी किया । डेल्स की चरण C सस्कृतियो (अजीरा II मुडीगाक I आदि) का पुरातात्विक काल-विस्तार 3300 से 3000 ई० पूर्व था, जबकि इन सस्कृतियो का कार्बन आधारित काल-विस्तार 3200 से 2800 ई० पूर्व था।
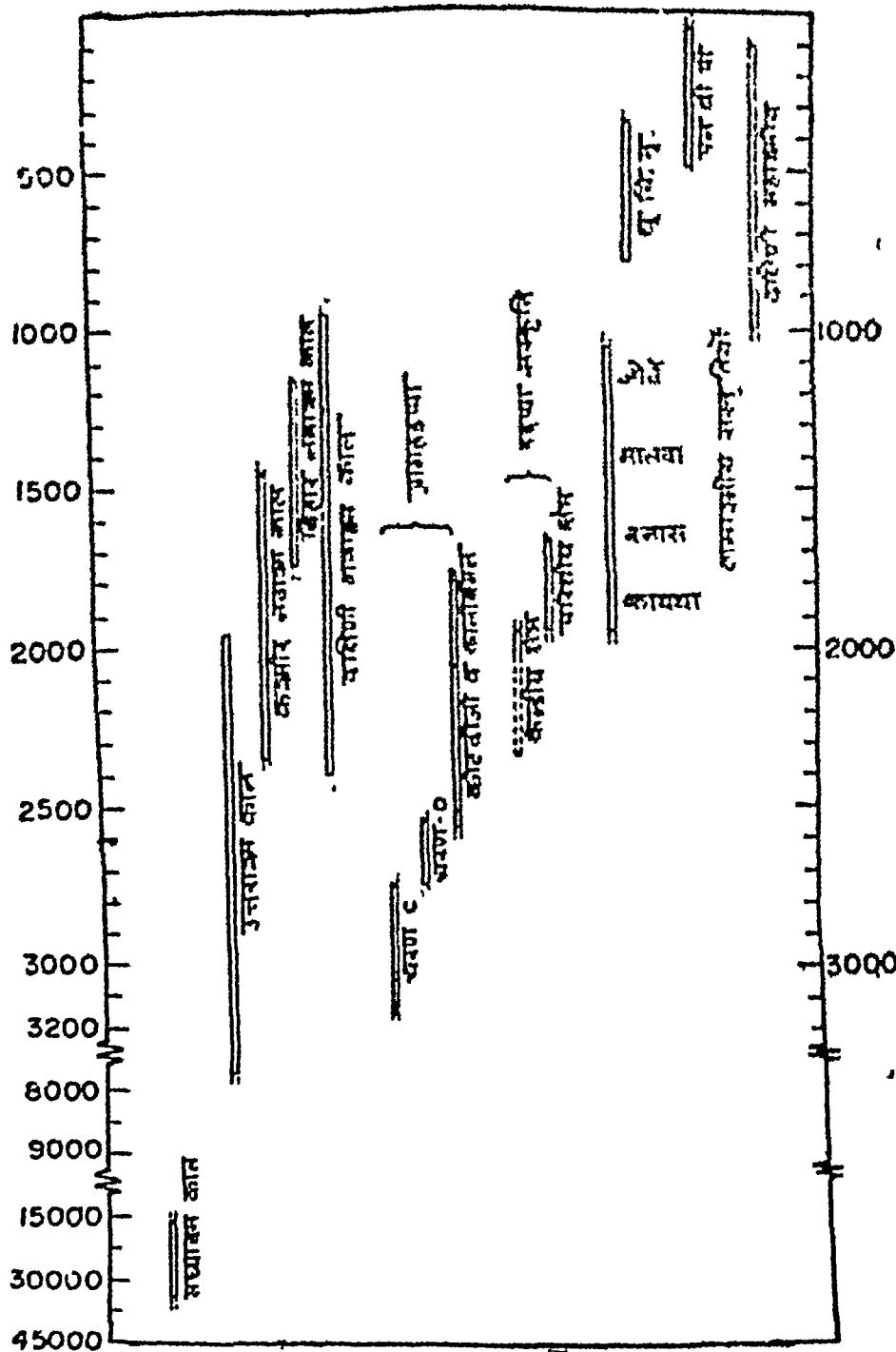
आरेख 15—भारत-पाक उपमहाद्वीप की समस्त पुरैतिहासिक एवम् लौहकालिक संस्कृतियों के कार्बन-तिथियों पर आधारित कालानुक्रम

चरण D संस्कृति (आम्री I व II मुंडीगाक II) आदि का पुरातात्विक काल-विस्तार 3000-2700 ई० पूर्व०, कार्बन आधारित कालानुक्रम 2800 से 2600 ई० पूर्व है। चरण E संस्कृतियाँ, जो कि सही मानो मे प्राग्हड़प्पा कालिक हैं, का पुरातात्विक काल विस्तार 2700 से 2400 ई० पूर्व और कार्बन आधारित 2600 से 2400 ई० पूर्व है।

हमने यह भी देखा कि सभवत धातुकर्म की उत्पत्ति ताल-ए-इबलिस मे हुई। मुंडीगाक मे हमने धातुकर्म तकनीको का त्वरित विस्तार देखा। परतु हड़प्पा सस्कृति मे धातुकर्म एकाएक अपने पूर्ण विकसित रूप मे प्रकट होता है। प्राग्हड़प्पा काल मे ताम्र बहुत न्यून है। मु डीगाक I में से कम टिन वाला कास्य मिला है और नाल से सीसे का मिश्रण मिलता है।

उत्तर-पश्चिम मे चरण E मे समस्त क्षेत्र की सास्कृतिक एकरसता संस्कृतियो के नागरीकरण की ओर अग्रसर होने की सूचक हैं। उदाहरणार्थ मुंडीगाक IV मे एक महल और एक बडा मदिर, कोटदीजी और कालीबगन 1 में क़िलेबदियाँ आदि नागरीकरण की प्रक्रिया के द्योतक हैं।

हड़प्पा सस्कृति उत्तर-पश्चिम मे एकाएक पूर्ण विकसित रूप मे उदित होती है। यह उल्लेखनीय है कि हड़प्पा संस्कृति एक अर्द्ध-शुष्क पारिस्थितिकीय क्षेत्र में, जो कि सप्तसिंधु से सिंचित होता था, फैली थी। इस सास्कृतिक और पारिस्थितिकीय समरसता मे एक प्रकार का साम्य है। राइक्स आदि ने इस क्षेत्र की बढ़ती हुई शुष्कता के सिद्धात का खडन किया है। दूसरी ओर सिंह के राजस्थान की झीलो पर पराग-आधारित अनुसंधानो ने दर्शाया है कि लगभग 3000 ई० पूर्व वहाँ एक आर्द्र जलवायु थी। लेकिन 1700 ई० पू० मे शुष्कता का दौर प्रारभ हो जाता है। इस संस्कृति का केन्द्रीय कालानुक्रम लगभग 2350 ई० पू० से 2000 ई० पू० तथा परिधीय क्षेत्रो का काल-विस्तार 2000 ई० पू० से 1700 ई० पू० था। इस प्रकार हम देखते हैं कि तीसरी सहस्राब्दी से 1700 ई० पू० तक सस्कृतियाँ यहाँ विकास पर थीं। 1700 ई० पू० के लगभग ये संस्कृतियाँ लुप्त होने लगी। पुरातात्विक और जलवायु सबधी प्रमाणो मे ऐसा तादात्म्य सिंह के निष्कर्षों का प्रतिपादन करता है।

तकनीकी क्षेत्र मे हमने देखा कि लगभग 70% सैंधव उपकरण शुद्ध ताम्र के थे। धातु मिश्रण ऊपरी स्तरो मे अधिक व्यापक था। स्पैक्ट्रमी विश्लेषण खेत्री के अयस्कों और सैंधव उपकरणो के बीच बहुत साम्य दर्शाता है। सैंधव लोग तरह-तरह के पात्र व उपकरण बनाते थे जिनके लिए विभिन्न प्रकार की तकनीकों का प्रयोग होता था। जैसे—हथौड़ियाना, तापानुशीतन, रिवेटिंग, बद

सांचों और लुप्त मोम प्रक्रिया का ढालने में उपयोग। हड़प्पा संस्कृति काल में पुरैतिहासिक ज्ञान भी उसके संग सम्भृत थी।

हमने कालानुक्रमों का विवेचन पुरातात्विक और कार्बन तिथिकरण के आधार पर अलग-अलग किया था जिसका सारांश निम्नलिखित है।

क. चरण C संस्कृतियाँ

(अंजीरा II, मुंडीगाक I, रानाघुंडई I आदि)
पुरातात्विक — लगभग 3300—3000 ई० पू०
कार्बन तिथियाँ— लगभग 3200—2800 ई० पू०

ख. चरण D संस्कृतियाँ

(आम्री I और II, मुंडीगाक II, अंजीरा III आदि)
पुरातात्विक — लगभग 3000—2700 ई० पू०
कार्बन तिथियाँ— लगभग 2800—2600 ई० पू०

ग. चरण E संस्कृतियाँ

(हड़प्पा से पहले की संस्कृतियाँ)
पुरातात्विक — लगभग 2700—2400 ई० पू०
कार्बन तिथियाँ— लगभग 2000—2400 ई० पू०

घ. हड़प्पा संस्कृति

पुरातात्विक — लगभग 2350—2000 ई० पू०
कार्बन तिथियाँ—
केन्द्रीय क्षेत्र — लगभग 2300 (या और पहले) से 2000 ई० पू०
परिधीय क्षेत्र — लगभग 2000—1700 ई० पू०

भारत-पाक महाद्वीप के उत्तर-पश्चिम में हमने देखा कि अनेक संस्कृतियाँ छोटे-छोटे क्षेत्रों में फैली हुई थीं। ताम्र का सीमित प्रयोग उन्हें ज्ञात था परंतु उस पारिस्थितिकी में कोई अतिरिक्त उत्पादन संभव नहीं था। इस कारण यह ग्राम संस्कृतियाँ नागरीकरण तक नहीं पहुँच सकीं। जो लोग सिंधु घाटी में उतर आये वे ही सभ्यता की ओर अग्रसर हो पाये। कूबड़ वाले सांड के डिजाइनों का प्राचुर्य यातायात और कृषि में चौपायों की शक्ति के उपयोग का ज्ञान दर्शाता है। समाज में अनेक प्रकार के परिवर्तन चरण E संस्कृतियों को नागरीकरण की दहलीज पर खड़ा कर रहे थे। धातुकर्म का विकास, कृषि

तकनीकों मे सुधार, पशुओं को पालतू बना कर उनकी शक्ति का प्रयोग और व्यापार आदि सब प्रक्रियाएँ इस सामाजिक परिवर्तन मे योगदान दे रही थी।

ससार की सभी आदि सभ्यताएं चाहे वह नील नदी की हो या चाहे दजला फरात की या सिंधु की, सभी अर्द्ध-शुष्क जलवायु मे और उर्वर जलोढ गाद पर पनपी। सिंधु उपत्यका मे भी अतिरिक्त उत्पादन ने बाजारो को जन्म दिया होगा जिन्हे नियत्रण मे रखने के लिए और शांति बनाये रखने के लिए नागरिक व्यवस्था का जन्म हुआ होगा। धातुकर्मी और विविध प्रकार के शिल्पियो को समाज अतिरिक्त उत्पादन के आधार पर पाल सकता था। बार-बार की बाढ़ो ने ऊँचे विशाल मचो पर स्थित पूर्वनियोजित नगरो के निर्माण के लिए किसी केन्द्रीय सत्ता को जन्म दिया होगा, जिसके नियत्रण के कारण समाज के हर क्षेत्र मे एकसरता और मानकीकरण व्याप्त हुआ होगा। इस केन्द्रीय शक्ति को सुदृढ़ बनाने मे दो और महत्वपूर्ण एकाधिकारो ने योग दिया होगा। यह एकाधिकार थे ताम्र अयस्को और रोहरी और सुक्कुर के चर्ट भडारो पर। इस सस्कृति के आयुध थोडे से और कमजोर बनावट के लगते हैं। यह तथ्य इस बात का द्योतक है कि युद्ध की आवश्यकता इस काल मे बहुत कम थी।

विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक शक्तियो जैसे नदी का प्रवाह, वायु, पशु शक्ति आदि का नाव और पहियो आदि के द्वारा प्रयोग से उत्पादन और यातायात मे क्रातिकारी परिवर्तन सभव हुए। मकरान और गुजरात के बदरगाहो से सामुद्रिक व्यापार होता था। शायद मेलुहा का तांबा राजस्थान से पश्चिम एशिया को निर्यात होता था।

हडप्पा सस्कृति एक बडे भू-भाग मे फैली हुई थी। इसका फैलाव एक विशेष प्रकार के पारिस्थितिकीय क्षेत्र मे हुआ था, परतु यह सस्कृति पूरे भू-भाग मे किसी एक ही समय पर साम्राज्य की तरह नही फैली थी। इसके केन्द्रीय क्षेत्र, परिधीय क्षेत्रो के मुकाबले कुछ पूर्ववर्ती थे।

सैंधव सभ्यता के अत के विषय मे कुछ निश्चित रूप से कहना अभी सभव नही है। राइक्स के विचार, हडप्पा सस्कृति के अत की व्याख्या करने की कोशिश मे उसके प्रादुर्भाव को ही असभव बना देते हैं। एक सस्कृति जो प्रारभ से ही निरतर बढ़ती हुई सर्वव्यापी कीचड की झील से जूझती रही हो, उसका नागरीकरण होना असभव ही था।

II ताम्राश्मीय संस्कृतियां

मध्य भारत और दक्षिण की अधिकतर सस्कृतिया सकरे जलोढ मैदानो

में पनपी थी, इस कारण कृषि उत्पादन पर एक सीमा बँध गयी थी। काली कपासी मिट्टी को बिना भारी लोहे के हलों के जोतना दुष्कर था। हाल में धवलीकर आदि ने इन स्थापनाओं को गलत बताया है। उनका भ्रम है कि आज की काली-कपासी मिट्टी जो ताम्राश्मीय स्थलों के पास पायी जाती है वह प्राचीन काल में भी ऐसी ही थी। हैग्डे ने दिखलाया है कि काली कपासी मिट्टी कुछ सौ सालों के अंदर भी बन सकती है। बहुत से ताम्राश्मीय काल के अलोह मैदान कालांतर में काली कपासी मिट्टी में परिवर्तित हो गये।

अध्याय चार में कालानुक्रमिक विवेचन के आधार पर हम निम्न निष्कर्षों पर पहुँचते हैं :—

उत्तर-पश्चिमी संस्कृतियां

(क) शाही टंप— लगभग 2000-1900 ई० पू० (पुरातात्त्विक)
(ख) झूकर — लगभग 1900 ई० पू० (पुरातात्त्विक)
(ग) झगर — लगभग 900 ई० पू० (पुरातात्त्विक)
(घ) कब्रिस्तान-लगभग 1750 से 1400 ई० पू० (पुरातात्त्विक)

मध्य व उत्तर भारत व दक्कन की संस्कृतियां

(क) कायथा	लगभग	2000-1800	ई० पू० (कार्बन तिथियां)
(ख) बनास	लगभग	2000-1400	ई० पू० (कार्बन तिथियां)
(ग) मालवा	लगभग	1700-1400	ई० पू० (कार्बन तिथियां)
(घ) जोर्वे	लगभग	1400-1100	ई० पू० (कार्बन तिथियां)
(ङ) गेरुए भांड	लगभग	1800-1400	ई०पू० (ताप सदीप्तिक तिथि)

ताम्राश्मीय संस्कृतियों में तांबा और लघ्वश्म दोनों ही का उपयोग होता था। केवल बनास संस्कृति ही ऐसी थी जिसमें लघ्वश्मों का प्रयोग नहीं के बराबर था। इन संस्कृतियों में धातु मिश्रण ज्ञात था और कांस्य बनाने के लिए 1-5% तक टिन का उपयोग होता था। सीसा 1-2% प्रतिशत तक प्रयोग होता था, लेकिन संखिया मिश्रण के कोई उदाहरण अभी तक नहीं पाये गये हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि अधिकतर खेत्री के आक्साइड ताम्र-अयस्क भंडारों का उपयोग हुआ था। ढलाई खुले सांचों में होती थी और तापानुशीतन तकनीक का भी इन लोगों को ज्ञान था। परंतु सैंधवों की सी विकसित तकनीकों का ज्ञान इन्हें नहीं था।

ताम्र-संचय संस्कृति के ताम्र उपकरणों में धातु मिश्रण के निश्चित आसार

नही हैं । यह लोग बंद साचो मे शुद्ध ताम्र की भी ढलाई कर सकते थे । धातु प्राचुर्य मे इनका स्थान केवल सैंधवो के बाद आता है ।

पहले यह ताम्राश्मीय सस्कृतिया सैधव सस्कृति से परिवर्त्ती मानी जाती थी । परतु कार्बन तिथिकरण ने यह दर्शाया है कि लगभग 2000-1700 ई० पू० तक के काल मे परिधीय सैधव और ताम्राश्मीय संस्कृतिया काल दृष्टि से अतर्व्यापी थी । बनास सस्कृति मे बडे-बडे सामूहिक चूल्हे, दीर्घाकार इमारतें और अनेक प्रकार के मृद्भाड मिलते हैं । इन ताम्राश्मीय सस्कृतियो पर सैंधवो का बहुत हलका प्रभाव तो नजर आता है, लेकिन सैंधव परंपरा का आकस्मिक अत बहुत स्पष्ट है । हो सकता है कि बनास और कायथा सस्कृति के लोग आर्य आक्रामक रहे हो । यह तो निश्चित ही है कि उनकी सस्कृति पर पश्चिमी एशिया का बहुत स्पष्ट प्रभाव था । ये सस्कृतियां कभी नागरीकरण प्राप्त न कर सकीं, जिसका कारण हमारे विचार से पारिस्थितकीय अवरोध था । संकरे जलोढ मैदान अतिरिक्त कृषि उत्पादन के लिए पर्याप्त नही थे ।

III ताम्र-संचय संस्कृति

ताम्र-सचय धातु उपकरण काफी प्रचुर मात्रा मे पाये जाते हैं । इनका क्षेत्र मुख्यत गगा की घाटी और उडीसा व चबल का प्रदेश है । ऐसा प्रतीत होता है कि इस सस्कृति मे सिंहभूमि के ताम्र अयस्क भडारो का उपयोग होने लगा था । ताम्र-संचय सस्कृति का प्रादुर्भाव संभवत. छोटा नागपुर के जगली पठार मे हुआ । वहा पर सादी, चपटी कुल्हाडियां और छड-कुल्हाडियां पायी जाती हैं । छड-कुल्हाडियो का उपयोग संभवत' अयस्क खदान मे होता था । अब दक्षिण-पूर्वी एशिया मे विकसित धातुकर्म का प्रारभ 2300 ई० पू० तक माना जाता है इसलिए ताम्र-संचय सस्कृति का उद्भव दक्षिणी पूर्वी एशिया के प्रभावो के अतर्गत भी हो सकता है । वैसे सभी परिस्थितिया स्वतत्र धातुकर्म के प्रादुर्भाव के लिए इस क्षेत्र मे ताम्र-संचय सस्कृति के लिए विद्यमान थीं ।

इनके उपकरण आखेट के लिए बहुत उपयुक्त जान पडते हैं । मानवाकृति चिडियो पर फेंक कर मारने के लिए, श्रृंगिकाकार-तलवारें बडे जानवरो को गढ्ढो मे भगा कर मारने के लिए और मत्स्य भाले मछली मारने के लिए बहुत उपयुक्त थे । दोआब के प्राचीन घने जगलो को काटने के लिए कुल्हाडियो का उपयोग होता होगा । यह आश्चर्यजनक है कि न तो इस सस्कृति के कोई आवासी टीले, न ही किसी प्रकार के पात्र मिलते हैं । सपूर्ण उपकरण एक यायावर, शिकारी आदिम जाति की संस्कृति का आभास देते हैं ।

ताम्र सचय अकसर गेरुये भांड सस्कृति के साथ जोड़े जाते हैं। पहली बार अब सेपाई से कुछ ताम्र-सचय उपकरण एक लाल स्लिप वाले भांडो के साथ मिले हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, गेरुये भांडो की तिथि 1800-1400 ई० पू० ताप सदीप्तिक तिथिकरण के अनुसार निश्चित की गयी है।

IV लौहयुगीन संस्कृतियाँ

सबसे पहले हम विभिन्न लौहकालीन सस्कृतियो के कालानुक्रम देंगे।

(क) स्वात कब्रें (गालीगाई काल V)—लगभग 1000 ई० पू० (कार्बन तिथि)

(ख) बलूची सगोरा कब्रें-लगभग 900-800 तक (पुरातात्त्विक)

(ग) पिराक लोह काल-लगभग 800 ई० पू० (कार्बन तिथि)

(घ) चित्रित धूसर मृत्भांड-लगभग 800-350 ई० पू० (कार्बन तिथि)

(ङ) एन० बी० पी० भांड-लगभग 550-50 ई० पू० (कार्बन तिथि)

(च) काले-लाल भाड-लगभग 700 ई० पू० (कार्बन तिथि)

(छ) दक्षिणी लोह काल का आरभ-लगभग 1000 ई० पू० (कार्बन तिथि)

(ज) विदर्भ लोह काल का प्रारभ-लगभग 600 ई० पू० (कार्बन तिथि)

(झ) महाश्म-लगभग 1000-100 ई० पू० (कार्बन तिथि)

लोहधातु करण का प्रसार हिट्टाइट सामाम्राज्य के विघटन के बाद लगभग 1200 ई० पू० प्रारभ होता है। ईरान मे पहले पहल लोहा निक्रोपोलीस A मे मिलता है। परन्तु इसका प्राचुर्य स्यात्क निक्रोपोलीस B मे ही दिखता है। स्यात्क B की तिथि गिर्शमान के अनुसार 900 ई० पू० है। स्वात घाटी मे लोहा 1000 ई० पू० से प्रकट होने लगता है। पिराक मे 800 ई० पू० काफी लोहा मिलता है। उत्तर पश्चिम की सगोरा कब्रो से भी काफी लोहा मिला है। इनकी स्यात्क B से सादृश्यता के कारण 900 800 ई० पू० तिथि मानी गई है।

राजस्थान में चित्रित धूसर भांड 800 ई० पू० प्रकट होते है। दोआब के दूसरे छोर मे सोनपुर, चिरांद और महिषदल मे भी लोह काल का प्रादुर्भाव 700 ई० पू० हुआ। परन्तु दक्षिण से केवल हल्लुर से 1000 ई० पू० की तिथि है। इस प्रकार उत्तरी भारत मे लोह कर्म का प्रसार सभवत उत्तर पश्चिम के भू-मार्ग से हुआ होगा। परन्तु शायद दक्षिण मे सामुद्रिक सपर्क द्वारा।

चित्रित धूसर भाड की अधिक प्राचीनता नये प्रमाणो के आधार पर तर्क-सगत नही लगती है। इसका तिथिकरण 1200 ई० पू० ठहराना तर्कों के

विपरीत जाता है। इसका काल प्रसार आठवी से चौथी शताब्दी ई० पू० ही माना जा सकता है। दोआब मे चित्रित धूसर भाड सस्कृति के लोगो ने जगलों को साफ करके कृषि उत्पादन का धीरे-धीरे विस्तार किया। परतु नागरीकरण एन० बी० पी० सस्कृति की ही देन है। जब बिहार के प्रशस्त लोह भडारो का उपयोग दोआब के घने जगलो मे कृषि उत्पादन के लिए हुआ तो प्रचुर अतिरिक्त उत्पादन ने दोआब के नागरीकरण को लगभग चौथी तीसरी सदी ई० पू० सभव बनाया।

महाश्मो का मुख्य क्षेत्र दक्षिण मे हैं, परतु ये आसाम से हिमाचल प्रदेश तक कही-कही पर पाये जाते हैं। प्राप्त पुरातात्विक सामग्री के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि महाश्मीय सस्कृति का सचरण दक्षिण से विदर्भ होता हुआ उत्तर प्रदेश मे हुआ।

साराश

पिछले अध्यायो मे हमने विभिन्न पुरैतिहासिक संस्कृतियो के अवशेषो, तकनीनी ज्ञान, धातु प्राचुर्य और कालानुक्रम का विवेचन उनके पारिस्थितिकीय परिवेश मे किया। भारतवर्ष मे एक ही काल मे, विभिन्न क्षेत्रो में तरह-तरह की सस्कृतियाँ पनपीं और फली फूली। विभिन्न क्षेत्रो का सामाजिक एव आर्थिक विकास की गतियाँ भिन्न थी, हमने यह भी देखा कि सस्कृतियो के विकास और ह्रास मे पारिस्थितिकी और तकनीकी ज्ञान का कितना महत्वपूर्ण योग होता है। भारत मे अब इस प्रकार के पुरातात्त्विक अध्ययनों के लिए बहुमुखी और बहु-आयामीय अनुसधानो की आवश्यकता है। आज विभिन्न भारतीय वैज्ञानिक केन्द्रो मे अधुनातन तकनीकें प्राप्त हैं जिनका पुरातात्त्विक अध्ययनो के लिए बहुत व्यापक प्रयोग हो सकता है। यह विशद कार्य कुछ व्यक्तियो के वश का नही, बल्कि किसी प्रगतिवादी, प्रबुद्ध संस्थान के लिए ही सभव है। हम यह आशा करते हैं कि हमारा यह प्रयास नयी और पुरानी दोनो पीढ़ियो को इस आवश्यकता का आभास करायेगा।

परिशिष्ट

कार्बन तिथियों की विश्वसनीयता

इधर हाल की खोजो से ऐसा प्रतीत होता है कि कार्बन तिथियो में सभवत कुछ सशोधन की आवश्यकता पडे। वृक्ष-काल विज्ञान (dendrochronology) पर आधारित तिथियो और कार्बन तिथियो की तुलना करने पर अपसारिता (divergence) का आभास होता है। हर साल वृक्षो के तनो मे एक वलय (ring) बढता जाता है। कैलिफोर्निया के पर्वतो पर कुछ वृक्ष ऐसे हैं जो चार-पाँच हजार साल तक जीवित रहते हैं, उदाहरणार्थ ब्रिसलकोन पीड, सिकोया आदि। इन वृक्षो के तने काटकर वृक्ष-वलय (tree ring) गिने गये और इस प्रकार वृक्ष-काल विज्ञान के आधार पर उनका तिथि निर्धारण किया गया। ऐसे वलय निकाल कर जब उनका कार्बन तिथिकरण किया गया तो उनमे परस्पर अपसारिता दृष्टिगोचर हुई। इस खोज के आधार पर इस अपसारिता की गणना की गयी और तदनुसार कार्बन तिथियो मे सशोधनार्थ समीकरण सुझाये गये। परिशिष्ट तालिका 1 मे हमने विभिन्न वैज्ञानिको द्वारा प्रस्तुत समीकरण दिये हैं और उनका प्रभाव सैंधव-काल-विस्तार (कार्बन आधारित) पर दर्शाया है। कुछ अमरीकी पुराविद् आजकल "मास्का-फैक्टर" (तालिका 1) लगाकर कार्बन तिथियाँ प्रकाशित करते हैं।

अग्रवाल ने मिस्र की सुनिश्चित पुरातात्त्विक सामग्री पर आधारित दूसरी व तीसरी सहस्राब्दी की कार्बन तिथियो को उनके सशोधित रूपो और पुरातात्त्विक तिथियो से तुलना करने पर पाया कि वृक्ष-काल निर्धारित तिथियाँ, पुरातात्त्विक तिथियो से कही पूर्ववर्ती हैं। इस तथ्य से यह आवश्यक हो जाता है कि वृक्ष-वलयों की और बारीकी से जाँच की जाय। चूँकि सारे वृक्ष-वलय कैलिफोर्निया के 10,000 फुट ऊँचे पर्वतो के वृक्षो से लिये गये हैं, कुछ विद्वानो का विचार है कि इस ऊँचाई पर कार्बन-14 के प्राकृतिक उत्पादन मे अतर हो सकता है जो काल-गणना मे प्रतिलक्षित होता है। वृक्ष-वलय प्रत्येक वर्ष बनते हैं और फिर वृक्ष के उपापचय (metabolism) मे भाग नही लेते।

परंतु हाल के अनुसधानो से ज्ञात हुआ है कि अनेक प्रकियाएँ हैं जो इस काल अपसारिता को जन्म दे सकती हैं, जैसे आतरिक कोशिका रस, काष्ठ-विदूषण लीसे आदि का त्रिज्य-सचरण (radial diffusion) आदि। 1954 के बाद आणविक-विस्फोटो के कारण वातावरण मे अप्राकृतिक न्यूट्रानो द्वारा जनित कार्बन-14, 1963 मे दुगना हो गया था। यदि त्रिज्य-सचरण न होता तो यह विस्फोट-जनित कार्बन-14,1954 से पुराने वृक्ष-वलयों में नहीं होना चाहिए। परतु यह 1954 से पहले के वलयो मे भी पाया जाता है जिसका अर्थ हुआ कि त्रिज्य-सचरण वृक्ष-वलयो के बनने के बाद तक होता रहता है। इस प्रकार वृक्ष-वलयो का कार्बन-तिथियो की विश्वसनीयता जाँचने के लिए विशेष महत्व नहीं रह जाता।

अभी तक की खोजों से प्रतीत होता है कि 2000 ई० पू० तक की कार्बन व पुरातात्त्विक तिथियाँ परस्पर सगत हैं। उसके बाद 2000 2500 ई० पू० तक कुछ संशोधन की आवश्यकता प्रतीत होती है क्योकि कार्बन-तिथियाँ पुरातात्त्विक तिथियो से कुछ परवर्ती लगती हैं। परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि ईराक और मिस्र के सुनिश्चित पुरातात्त्विक स्तरों से विश्वसनीय नमूनो का काल-निर्धारण करके इस बात का पता लगाया जाय कि अपसारिता यदि है तो कितनी है। तदनुसार ही संशोधन-समीकरण प्रस्तुत किये जायँ। इस अवस्था मे कार्बन-तिथियो का सशोधन विभ्रामक होगा। अभी अनेक अनिश्चितताएँ हैं जिनका हल पहले होना चाहिए। तब तक कार्बन तिथियो (अर्धायु 5730 वर्ष पर आधारित) को असशोधित रूप में ही प्रयोग करना चाहिए। "मास्का फैक्टर" आदि लगाने से सैंधव सस्कृति का मोहनजोदडो में अत 2400 से 2800 ई० पू० होता है जो असभव है। अक्काड के सार्गन और ईसिन-लार्सा काल के सैंधव सस्कृति के 2300-2000 ई० पू० के संपर्क अकाट्य हैं।

इस प्रकार हमारे विचार से अगले दशक तक रेडियो कार्बन तिथियों का अपना सवत् माना जाय और उन्हें संशोधित न किया जाय न ग्रिगरी (ईसाई) संवत् (Gregorian Calender) से मिलाया जाय। अगले 8-10 साल में आधारभूत समस्याएँ हल हो जायँगी और हम अधिक सुदृढ़ आधार पर संशोधन समीकरण, यदि आवश्यकता हुई तो, प्रस्तुत करेंगे।

परिशिष्ट तालिका 1

C = 1·4 R − 1100 ...(1)
C = 1 4 R − 900 .. (2)

C=1 26 R−700 ·(3)

C=112+0 152 ×10* − 7R² − 0 138× − 10⁻⁷R³ ···(4)

C=R+350 (2099-1700) ई० पू० काल के लिए &
C=R+450 (2499-2100) ई०पू० काल के लिए···(5) } MASCA FACTOR

(C=संशोधित तिथि R=कार्बन तिथि)

संशोधित काल-विस्तार-आधार	(1)	2900-2480 ई०पू०
संशोधित काल-विस्तार-आधार	(2)	3100 2680 ई०पू०
संशोधित काल-विस्तार-आधार	(3)	2705-2327 ई०पू०
संशोधित काल-विस्तार-आधार	(4)	2750-2400 ई०पू०
संशोधित काल-विस्तार-आधार	(5)	2750 2350 ई०पू०
असंशोधित काल-विस्तार		2300-2000 ई०पू०
पुरातात्त्विक काल-विस्तार		2350-1900 ई०पू०

यदि हम सैंधव संस्कृति के मोहनजोदड़ो के काल-विस्तार पर उक्त समीकरण संशोधनार्थ प्रयुक्त करें, तो उपर्युक्त काल-विस्तार प्राप्त होते हैं। स्पष्ट है कि असंशोधित कार्बन तिथियाँ पुरातात्त्विक काल विस्तार के निकटतम हैं।

परिशिष्ट सदर्भिका

समीकरण 1 के लिए

Stuiver, M and Suess, H E., 1965, on the Relationship, Between Radiocarbon 'dates and True Sample Age's Radiocarbon Vol 8, pp. 534-540.

समीकरण 2 के लिए

Stuiver, M, 1967, Origin and Extent of Atmospheric C-14 Variations during the past 10,000 years, in 'Radiocarbon Dating and Methods of Law-Level Coguting, Vienna, Int. At Energy Agency, pp 27-40

समीकरण 3 के लिए

Stuiver, M, 1970, Long Term C-14 Variations, in 'Radocarbon Variation and Absolute Chronology,' Ed Olsson, I U, 197-213.

समीकरण 4 के लिए

Wendland, W M, Donley, D L, 1971. Radiocarbon—Calender Age Relationship, Earth and Planetary Science Letters,' Vol 11, pp. 135-139.

समीकरण 5 के लिए

Michael, H W and Ralph, E K., 1970, Correction Factors Applied to Egyptian 'Radiocarbon dates from Era BeforeChrist in 'Radiocarbon Variation and Absolute Chronology,'(Ed) Olsson, I. U, pp 109-120.

अन्य सबन्धित ग्रन्थ व लेख

Agrawal, D P., 1971, 'The Copper-Bronze Age in India,' Munshiram Manoharlal, New Delhi

Berger, R, 1970 Ancient Egyptian Radiocarbon Chronology, 'Phil Trans. Roy Soc. Lond' A Vol. 269, p 23-36

Collis, J, 1971, Thoughts on Radiocarbon Dating in Machie, J, Collis, J, Ewer, D W, Smith, A, Suess, H. and Renfrew, C., 'Antiquity' Vol. 45, pp. 200-201

Jansen H S, 1970, Secular Variation of Radiocarbon in Newzealand and Australian Trees, in 'Radiocarbon Variation and Absolute Chronology,' (Ed) Olsson, I. U, pp 261-274

Olsson, I U, Klasson, M and Abd Mageed, A, 1972, Uppsala Natural Radiocarbon Measurements XI, 'Radiocarbon' Vol. 14 (1), pp 247-271.

Walton, A and Boxter, M S, 1968, Calibration of the Radiocarbon time Scale, 'Nature,' Vol. 220, pp. 475-476

●

शब्दावली

अ

अंगार-शलाका	Poker
अंगूठे के नख से उत्कीर्ण मृद्भांड	Thumb nail incised pottery
अतिनूतन	Pliocene
अधिकेन्द्र	Epicentre
अनगढ़	Coarse
—भांड	Coarse ware
—पत्थर	Rubble
अन्त्येष्टि कलश	Funerary vase
—पात्र	Funerary pot
अंतर्नत किनारा	Inverted rim
अंतर्वर्ती	Intermediate
—क्षेत्र	Transitional zone
अंतर्वेधी	Intrusive
अनलंकृत	Plain
—लाल मृद्भांड	Plain Red ware
अन्वेषक	Explorer
अननुमेय	Unpredictable
अनुष्ठान	Ritual
अपकर्ष	Degenerate
अपचयन	Reduction
अपरदन करना	Erode
अपशिष्ट शल्क	Waste flake
अपक्षरण	Weathering

अपसारिता, अपसरण	Divergence
अपेक्षित अलगाव का क्षेत्र	Area of relative isolation
अभ्रक	Mica
अभ्रकी	Micaceous
डिजाइन	Motif
अयस्क	Ore
—मल	Slag
अर्धचन्द्राकार	Crescent Shape
अर्ध यायावर	Semi nomadic
—शुष्क	Semi arid
अलगाव का क्षेत्र	Area of isolation
अल्प मूल्य रत्न	Semi precious stone
अलंकरण	Decoration
अवक्रमण	Devolution
अवठ किनारा	Rim
अवशेष	Remains
अवस्था	Stage
अस्तरीय	Unstratified
असादृश्यमूलक डिजाइन	Non-representational
अस्थि कलश	Urn
—भग शवाधान	Fractional burial
अक्षीय नलिका	Axial tube
आकड़े	Data
आक्साइड	Oxide
आडी (जाली)	Cross hatched
आघातवर्ध्यता	Malleability
आदिम	Primeval
आधारभूत सामग्री	Basic data
आरेख	Figure
आवास	Habitat
आवासी इमारत	Residential building

इ	
इतर	Non
—हड़प्पा	Non-Harappa
उ	
उत्कीर्ण	Incise
—अलंकरण	Incise decoration
उत्खनक	Excavator
उत्खनन	Excavation
उत्तर	Post
उद्गतहनुता	Prognathy
उर्ध्वस्थ	Vertical
उपकरण	Implement
उपनिवेशन	Colonisation
उपापचय	Metabolism
ऋ	
ऋतुप्रवास	Trans humance
ए	
एंटिमनी	Antimony
एन बी पी मृद्भाड	N B P ware
ऐरेंटाइन मृद्भाड	Arretine ware
एलाबास्टर	Alabaster
औ	
औजार	Tool
क	
कच्ची ईंट	Mud brick
कट्टम कट्टे	Criss cross
कड़ा	Bangle
कब्रगाह	Cemetry
करकेतन	Chalcidony
कलपुछ	Gazelle
काचली मिट्टी	Faience

काचित भाड	Glazed ware
काटेदार तलवार	Hooked sword
काल	Period
काल अनुक्रम	Period sequence
काल दोष	Anachronism
काला और दूधिया मृद्भाड	Black and cream ware
कालानुक्रम	Chronology
कालानुक्रमिक अभिलेख	Chronological record
काली कपासी मिट्टी	Black cotton soil
काली स्लिप पर लाल भूरा मृद्भाड	Red brown on dark slip
काले पर लाल मृद्भाड	Red on black ware
किलेबन्दी	Fortification
कुल्हड	Goblet
कुल्हाडी	Axe
कुल्हाडी-बसूला	Axe-adze
कूटक	Pounder
कूबडवाला साड	Humped bull
केन्द्रीय क्षेत्र	Nuclear region
केवेलिन	Keolen
केची वेग आक्सीकृत मृद्भाड	Kechi Beg Oxidised ware
केची वेग काले स्लिप पर सफेद मृद्भाड	Kechi Beg white-on-dark Slip ware
केची वेग बहुरंगी मृद्भाड	Kechi Beg Polychrome ware
केची वेग लाल मृद्भाड	Kechi Beg red ware
कोर, किनारा	Rim
क्रोड	Core
क्रेस्टेड गाइडेड रिज	Cicsed guided ridge
क्वेटा अभ्रकी मृद्भाड	Quetta Micaceous ware
—आर्द्र मृद्भाड	Quetta wet ware
—पाडु पर काला मृद्भाड	Quetta black on buff ware
क्षरण	Erosion
—चक्र	Erosion circle

ख

खंड/पट्ट	Panel
खनिज	Mineral
—शिरा	Mineral vein
खाँचेदार फलक	Notched blade
खान/खदान	Mine
खानेदार मोहर	Compartmental seal

ग

गढ़न	Moulding
गढ़ना (तपा कर)	Forge
गदासिर/गदाशीर्ष	Mace head
गर्तवृत्त	Pit circle
गरूडीय नाक	Acquiline nose

घ

घिसा कुल्हाड़ा	Ground-celt
घीया पत्थर	Soap stone
घोंघा	Zootecus insularis

च

चक्र	Disc
चक्र मनके	Disc bead
चकमक	Flint
—कल्कर उपकरण	Flint implement
—औजार	Flint tool
—कटार	Flint dagger
चक्रिक मनके	Whirl bead
चमकदार वर्तन	Glazed ware
चमकाना	Burnish
चमकाया लाल	Burnished red
चमकीला लाल मृद्भाड	Lustrous red ware
चर्ट	Chert
—के पतले फलक	Chert ribbon flak
—फलक	Chert blade

चिनाई	Masonry
चित्र बल्लरी	Frienze
चित्रित धूसर मृद्भाड	Painted grey ware
चूडी	Bangle
चूना पत्थर	Limestone
चूनेदार मिट्टी	Calcareous clay
छ	
छड-कुल्हाडी	Bar celt
छल्ला, वलय	Ring
छल्लाकार आधार वाले कटोरे	Ring based bowl
छिद्रित वर्तन	Perforated vessel
ज	
जगली शीशम	Dalbergin sissoo
जडना/जमाना	Encrusted
जनजातीय	Tribal
जमाये हुए अलकरणयुक्त भाड	Applique decorated ware
ज्यामितिक डिजाइन	Geometric design
जरदोजी का काम	Filigree work
जल-निकास-व्यवस्था	Drainage system
जलोढक	Alluvial
ज्वारनद मुख	Estuary
जालायित विन्यास	Trellis-pattern
जाली का काम	Lattice work
ट	
टीला	Mound
टेकदार कुल्हाडी	Trunnion axe
टोटीदार नलीवाला	Channelled spout
ठ	
ठीकरा	Sherd
ड	
ढकदार गेंद	Sling ball
	Dolerite

ढ

ढलाई	Casting

त

तकनीक	Technique
तकनीकी	Technical
तन्यता	Ductility
तनेवाले कटोरे	Stemmed bowl
तकुं चक्कर	Spindle whorl
तल/स्तर	Level
तापानुशीतन	Annealing
तापसदीप्ति	Thermoluminescence
तामड़ा पत्थर	Carnelian
ताम्र युग	Copper age
ताम्र सचय	Copper hoard
ताम्राश्मीय	Chalcolithic
तालिका	Table
त्रि-अरी	Chevron
—अस्थि	Chevron bone
त्रिज्य सचरण	Radial diffusion

थ

थाली	Dish

द

दहन की गयी हड्डियाँ	Cremated bones
दाँतेदार फलक	Serrated blade
द्विरंगी	Bichrome
—परपरा	Bichrome tradition
दीर्घीकरण	Elongation
दुर्ग	Citadel
दूधिया मृद्भाड	Cream ware

ध

धातु कर्म	Metallurgy
—कर्म सबधी	Metallurgical

धातु कर्मी	Metallurgist
—प्रगलन	Smelting
—मल	Slag
—मिश्रण	Alloy

न

नखाकार	Scalloped
नतिलंबी भ्रंश	Strike fault
नमूना	Sample
नवाश्म उपकरण	Neolith
नवाश्मीय	Neolithic
नाकेदार सूई	Eyed needle
नागरीकरण	Urbanisation
नालीदार (चषक या तश्तरी)	Corrugated
नितंबी स्तन	Pendulous breast
निरपेक्ष	Absolute
निर्मृद भांड	Aceramic
निवासी	Inhabitant
निक्षारित	Etched
—आकृति	Etched figure
निक्षेप	Deposit

प

पंजवई दूधिया सतही मृद्भांड	Panjawai cream surface
पट्ट/खंड	Panel
पट्टा/पट्टी	Band
परकोटा	Rampart
पर्णाकार फलक	Leaf blade
—बाणाग्र	Leaf shaped arrow-head
परत	Layer
परंपरा	Tradition
परवर्ती	Latter
परस्पर व्याप्त, अतिव्याप्त	Overlapping
परिष्कृत स्लिप मृद्भांड	Fine slip ware

पश्चप्रवण	Receding
पसलीदार	Ribbed
पांडु	Buff
—स्लिप पर काला मृद्भांड	Black on buff slip ware
—पर चाकलेटी मृद्भांड	Chocolate-on-buff ware
—गुलाबी लाल मृद्भांड	Orange red-on-buff ware
स्लिप मृद्भांड	Buff slip ware
पारिस्थितिकी	Ecology
पाश	Loop
पिंड	Cake
पुरातत्व	Archaeology
पुराविद्	Archaeologist
पुरैतिहासिक	Proto-historic
पुलिन	Beach
पूर्व राजवंश	Pre-Dynasty
पूर्वहड़प्पा	Pre-Harappa
पेस्ट	Paste
पोलिंग	Poling
प्रकार	Mode
प्रकाल	Phase
प्रतिरूप	Pattern
प्रतीक	Symbol
प्रमाण	Evidence
प्रवणित किनारा	Bevelled rim
प्रस्तर पात्र	Stone ware
प्रसार	Diffusion
प्राकृत अयस्क	Native ore
प्राकृतिक तल	Natural soil
प्राग्हड़प्पा	Proto-Harappa
प्राग्मृद्भांड	Pre pottery
प्रागैतिहासिक	Pre-history
प्रौढ़ सैंधव	Mature Harappa

फ	
फलक	Blade
ब	
बढती हुई शुष्कन	Progressive desiccation
बनत/डिजाइन	Design
बनत खड	Design panel
बस्ती	Settlement
बहिर्वेशन	Extrapolation
बहुरगी परपरा	Multi colour tradition
——	Poly chrome tradition
बहुस्तरीय	Multi-level
बहँगी	Yoke
बाँध	Gabar band
बाढ निर्मित मैदान	Flood plain
बादली पत्थर	Agate
बालुकाश्म	Sandstone
बाहर निकली गोल आँख	Goggle eye
बुर्ज	Bastion
बेलनाकार	Cylindrical
बेसाल्ट	Basalt
बोला पत्थर	Bola stone
ब्रिनेल	Brinell
भ	
भगुर	Brittle
भडार	Repertory
भाड	Ware
भालाग्र	Arrow head
भौतिक रचना	Physiography
म	
मडूरी रग	Ferruginous colour
मत्स्य काँटा	Fish hook
—भाला	Harpoon

मध्यनूतन	Miocene
मध्याश्म युगीन हथियार	Middle stone age tool
मनका	Bead
मर्तबान	Jar
मरगोल	Voluted
महाश्मीय	Megalithic
मानक	Standard
—विचलन	Standard deviation
मानकीकरण	Standardization
मानवाकृति	Anthropomorph
मानुस मोखा	Man hole
मिया घुंडई पांडु मृद्भाण्ड	Mian Ghundai buff ware
मुस्तफा मृदुकृत मृद्भाण्ड	Mustafa temper ware
मूषाएँ	Crucibles
मृण्मूर्ति	Terracotta
मृद्भाण्ड	Pottery
मृत्पिण्ड	Terracotta cake
मृत्तिका-शिल्प	Ceramic
मैवण्ड-लाल-सतह मृद्भाण्ड	Maiwand red surface ware
मोड़दार (कफोणि) फलक	Elbow blade
मोहर	Seal

य

यायावर	Nomad

र

रांगा	Nickel
रासायनिक विश्लेषण	Chemical analysis
रीढ़दार कटार	Dagger with midrib
—डांसवाली कटार	Tanged dagger with midrib
—फलक	Mid ribbed blade
रूढ़िबद्ध	Conventional
—भू-दृश्य	Formalised landscape
रूपांतरण	Transformation

रूलेटेड मृद्भांड	Rouletted ware
रेखाच्छादन	Hatching
रेखांकित	Graffitti
रेडियोकार्बन तिथि	Radio carbon date
ल	
लघु-अश्म	Microlith
— उद्योग	Microlithic industry
लहरदार अलंकरण	Wave decoration
लहरिया	Wavy lines
लक्षण	Character
लाजवर्द	Lapis lazuli
दूधिये पर काला मृद्भांड	Black on cream ware
लाल पर लाल तकनीक	Red on red technique
—स्लिप मृद्भांड	Red slipped ware
लुप्त मोम	Lost wax
लोहमय	Ferruginous
—वालुकाश्म	Ferruginous sandstone
लोलिंगाइट	Lollingite
लोह युग	Iron age
व	
वर्तुलाकार	Circular
वली रेतीला मृद्भांड	Wali sand ware
वासस्थान	Habitation
वाणाग्र	Arrow-head
विवर्तनीय उत्थान	Tectonic uplift
विशाल स्नानागार	Great bath
विशिष्ट संस्कृति	Distinct culture
विशेषता	Characteristic
विस्तारित शवाधान	Extended burial
वृक्ष काल विज्ञान	Dendrochronology
—वलय	Tree-ring
श	
शतरंजी पट्ट	Chequor band
शल्क	Flake
—फलक	Flake blade
शवपेटिका	Sarcophagus
शवाधान	Inhumation
शवोपासना	Funerary cult

शिल्प	Craft
—कार/शिल्पी	Crafts man
—कारिता	Craftmanship
—वैज्ञानिक	Technologist
शिलाखंड/गोलाश्म	Boulder
शिविर	Camp
शुष्कन	Desiccation
शृंगिकाकार तलवार	Antennae sword

स

सखिया	Arsenic
सग्रहालय	Museum
सगोरा	Cairn
—शवाधान	Cairn burial
सचयन पात्र	Storage vessel
सचारण	Transmission
सदूषित	Contaminate
सपिष्टमृद्/घुटी हुई मिट्टी	Levigated clay
सरचना	Structure
सकेन्द्रित	Concentric
सपिंडन	Consolidation
सपीठ थाली	Dish-on-stand
सभ्यता	Civilisation
समतल	Horizontal
सम्मिश्र	Complex
सरलरेखी	Rectilinear
सहस्राब्दि	Millenium
साख्यकीय	Statistical
साड	Bull
साचा	Mould
सास्कृतिक समरसता	Cultural uniformity
—सचय	Cultural assemblage
सादृश्य	Affinity
सादात एकरेखी मृद्भाड	Sadat single line ware
साधार कटोरा	Pedestalled bowl
साहुल पिंड	Plumb bobs
सिंदूरी मृद्भाड	Scarlet ware
सिंधु	Indus
सिल-बट्टा	Saddle quern
सिलिका	Silica

सिस्ट (पत्थर का ताबूत)	Cist
सीसा	Lead
सुराही	Carafe
सूती	Fresh water mussel
सेलखडी	Steatite
सैंधव	Harappan
स्कंधित कुल्हाडी	Shouldered celt
स्तर	Level
स्तरण	Stratification
स्तर प्रमाण	Stratigraphical-evidence
स्थल	Site
स्थानातर	Migration
स्लिप	Slip
स्पेक्ट्रमी	Spectroscopic
स्फटिक	Quartz
स्फोटगर्ती चट्टान	Vesicular rock
स्रोत	Source

ह

हड्डी की नोक (वेधनी)	Bone point
हत्थे के लिए छेदवाली कुल्हाडी	Shaft hole axe
हत्थेदार कटोरा	Bowl with handle
—चषक	Handled cup
हथौडियाना	Hammer
हरताल	Orpiment
हस्त निर्मित मृद्भाड	Hand made pottery

शब्दावली सदर्भिका

S J C. Bulcke — An English-Hindi Dictionary, 197 (Ranchi)

Standing Commission for Scientific and Technical Terminology — Scieace Glossary, 1964 New Delhi

Standing Commission for Scientific and Technical Terminology — Humanities Glossary I, 1966 New Delhi.

पुराविदो द्वारा प्रचलित तकनीकी शब्द भी प्रयुक्त किये गये ।